हम्मीर महाकाव्य
का
समालोचनात्मक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय–झाँसी

की

पीएच्0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

।। प्रस्तुतकर्ता ।।

भूपेन्द्रमणि पाण्डेय

।। निर्देशक ।।

डॉ0 मुरली मनोहर द्विवेदी
विभागाध्यक्ष संस्कृत
महामति प्राणनाथ महाविद्यालय
मऊ–चित्रकूट

2005

शोधकेन्द्र

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा, बाँदा (उ0प्र0)

प्राक्कथन

"जयन्ति ते सुकृतिनो रस सिद्धाः कवीश्वराः।

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।।"

संस्कृत साहित्य के आदि स्रोत वेदों में प्रथमतः ''कवि'' एवं काव्य दोनों शब्द उपात्त हैं। कविर्मनीषी परिभूःस्वयम्भूः आदि में आये कवि शब्द का अभिप्राय है– आदि कवि परमेश्वर। इसी प्रकार "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति" इस श्रुति में काव्य शब्द व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त है। परमेश्वरीय ज्ञान–लक्षण सम्पूर्ण वेद ही काव्य है। ये ही कवि एवं काव्य शब्द लौकिक संस्कृत वाङ्मय में एक विशिष्ट अर्थ मे प्रयुक्त होने लगे इन कवियों को काव्य कला की प्रेरणा निश्चय ही वेदों से प्राप्त हुई है। प्रतिभावान् कवि स्वतन्त्र प्रकृति का होता है। उसकी सहज अनुभूतियाँ एवम् उसके अन्तर्मन की संवेदनाएँ कविताओं के रूप में उसी प्रकार स्वतःनिर्गत होती रहती है, जिस प्रकार पर्वत श्रृंखलाओं से निर्मल जलधाराएँ स्वतः अनवछिन्न रूप से निकलती रहती है। जैसे पुष्परस– संचयन में प्रवृत्त भ्रमर स्वाभाविक रूप से अकारण गुञ्जायमान रहता है वैसे ही कवि स्वच्छन्दन्तः कविताओं का रचना करता है। काव्य की निष्पत्ति में काव्यशास्त्री आचार्यों ने शक्ति निपुणता तथा अभ्यास को समन्वित रूप से हेतु माना है किन्तु कवित्व बीज रूप संस्कार विशेष शक्ति, प्रतिभा को सभी ने एक मत से काव्य सम्पत्ति का प्रधान कारण स्वीकार किया है। वस्तुतः इस प्रतिभा तत्त्व के बिना काव्य का प्रादुर्भाव नही हो सकता; प्रादुर्भाव हो भी जाय तो उपहास योग्य ही होगा। जब कि प्रतिभा के आनन्त्य के कारण ही पूर्व कवियों द्वारा प्रतिपादित अर्थो से युक्त वाणी में नूतनता आ जाती है, वर्णनीय वस्तु परिमित है। प्राचीन कवियों द्वारा वर्णित हो जाने के बाद पुनः उस वस्तु के विषय का प्रतिभान तज्जातीय ही होता है किन्तु प्रतिभावान् कवि मूल वर्णनीय वस्तुओं का उपादान कर अन्य विभिन्न वर्णनीय वस्तुओं का समावेश करता हुआ एक अपूर्व सृष्टिकर डालता है। ऐसे प्रतिभाशाली कवि के विषय में ही यह बात सार्थक है कि उसकी वाणी ऐसी सृष्टि का निर्माण करती है; जो नियति द्वारा विहित नियमों से परे है। करुणादि रसों से युक्त होने पर भी जिसका पर्यवसान एक मात्र

आह्लाद में होता है; जो किसी निमित्त की अपेक्षा नही करती तथा च श्रृंगार आदि नौ रसों से युक्त होने के कारण षड्रसा ब्रह्म निर्मिति से भी उत्कृष्ट है –

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।

नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति।। का० प्र० कारिका

जब प्रतिभावान् कवि बिना कारण कलाओं के ही अपूर्व वस्तु का निर्माण करने लगता है तब पाषाण तुल्य जड़ जगत को अपने रसोद्रेक से आप्लावित कर रहा होता है। तभी उसके काव्य में उत्कर्षाधायक विभिन्न अलंकार गुणादि तत्वों का उपनिबन्धन स्वतः होने लगता है। प्रतिभाशाली कवि यह सोचकर कविता करने नही बैठता कि यहाँ अमुक अलंकार अमुक रस अमुक गुणादि का सन्निवेश करना है। मम्मट ने काव्य के यशः– प्राप्ति, धनागम, व्यवहार–ज्ञान, अकल्याण का विनाश काव्यास्वादसमनन्तर पर निर्वृत्ति एवं कान्तासम्मित उपदेश को मुख्य प्रयोजन स्वीकार किया है। वस्तुतः काव्य निर्माण के उद्देश्य की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज के अन्य जनों के लिये उसकी मनः प्रवृत्ति के अनुकूल ही काव्यों का निर्माण किया जाता है। कालिदास, भास, अश्वघोष, आदि की कविताओं में जो सरलता, स्वाभाविकता, विद्यमान है, मानवीय अनुभूतियों का जो सहज सजीव चित्रण है वह परवर्ती कवियों में उपलब्ध नहीं होता। परवर्ती कवियों नें कालिदास की सरल मनोहारिणी कविताओं की शैली से विमुख होकर अपने काव्यों को दुरुह, बोझिल एवं रूक्ष बना डाला तथा पाण्डित्य प्रदर्शन किया है। उस समय विद्वत्–समाज में इस तरह के काव्यों का आदर हुआ होगा तभी इनका निर्माण सम्भव हो सका है। इन कवियों ने स्वतः स्वीकार किया है कि हमारे काव्य दुरूह है, इन्हें व्याख्या के द्वारा ही समझा जा सकता है, तथा प्रखरमति विद्वान ही इनका रसास्वादन कर सकते है। अल्पमति वाले व्यक्तियों की तो बुद्धि ही वहाँ तक नहीं पहुँच सकती–
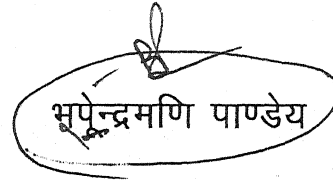
व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सवः सुधियामलम्।

हता दुर्मेधसस्तत्र विद्वत प्रियतया मया।।

इसी व्याख्यागम्य शैली से हम्मीर महाकाव्य भी लिखा गया है, जिसकी साहित्यिक विशिष्टताओं को खोजने का मैने प्रयास किया है फिर भी महाकवि नयचन्द्र ने इस काव्य में कलापक्ष को सवांरने में भावपक्ष की अवहेलना नहीं की है।

संस्कृत विषय के अध्ययन में मेरी रुचि प्रारम्भ से ही थी। मैने इण्टरमीडिएट परीक्षा संस्कृत विषय के साथ राजकीय इण्टर कालेज बरगढ़, चित्रकूट से उत्तीर्ण की। संस्कृत विषय में रूचि बढ़ती गई। अन्य विषयों की अपेक्षा मुझे सदैव संस्कृत विषय में (परीक्षाओं में) अच्छे अंक प्राप्त होते थे। संस्कार रूप में आरोपित संस्कृत भाषा पल्लवित होती रही। जटिल समस्याओं का सामना करते हुए मैंने बी0ए0 की परीक्षा संस्कृत विषय के साथ महामति प्राणनाथ महाविद्यालय मऊ, चित्रकूट से उत्तीर्ण की । बी0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मैने एम0ए0 में पोस्ट ग्रेजुएट कालेज अतर्रा, बाँदा में प्रवेश लिया तथा एम0ए0 में संस्कृत विषय का चयन किया। एम0ए0 पूर्वार्ध की कक्षाओं में पूज्यपाद श्री राजाराम दीक्षित विभागाध्यक्ष जी से सत्प्रेरणायें मिलती रहीं है। मैं जब भी गाँव में श्री सत्यनारायण त्रिपाठी (अवकाश प्राप्त जिला कृषि अधिकारी) से मिलता तो वे मुझे सदैव पी0एच0डी0 करने के लिए प्रेरणा दिया करते थे। वे गाँव के हर अध्यवसायी छात्रों को पढ़ने के लिए हमेशा प्रेरित करते है। एम0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद पूर्व प्रेरित भावना ने शोध कार्य करने के लिये मुझे उन्मुख किया। तब मै अपने गुरूदेव डॉ0 मुरली मनोहर द्विवेदी जी से मिला और अपने निर्देशन में शोध कार्य कराने हेतु उनसे आग्रह किया। गुरू जी ने सहज भाव से जैन कवि नयचन्द्र सूरि कृत "हम्मीर महाकाव्य का समालोचनात्मक अध्ययन" विषय पर कार्य करने का परामर्श देकर मुझे अनुगृहीत किया। मै गुरू जी के सत्प्रयास एवं उदारता का सतत फल प्राप्त करता रहा। मुझे सहायक पुस्तकों के लिये कभी अन्यत्र नहीं जाना पड़ा। पूज्य गुरू देव ने मुझे पुस्तकीय सहायता दी, उन्होने मेरी जटिल समस्याओं पर दृष्टिपात करते हुए मुझे कार्य करने के लिए अपना अमूल्य समय दिया। मध्य–मध्य में शोध कार्य में मुझे डॉ0 रोहिताश्व कुमार शर्मा प्रवक्ता हिन्दी एवं प्राचार्य महामति प्राणनाथ महाविद्यालय मऊ से भी प्रेरणा मिलती रही है। शोध कार्य के मध्य में ही मेरे पूज्य पिता

जी का आकस्मिक निधन हो गया जिससे मेरा शोध कार्य कुछ समय के लिये प्रभावित रहा किन्तु गुरुदेव जी की छाया में मैने अपना शोधकार्य पूर्ण किया यह कृति उन्ही के आशीर्वादों का प्रतिफल है; मै उनका आभारी हूँ। श्री सत्यनारायण जी त्रिपाठी, डॉ० दयाशंकर द्विवेदी विभागाध्यक्ष गाँधी महाविद्यालय, उरई से भी मुझे सत्–प्रेरणा मिली। श्री श्याम नारायण शुक्ल, श्री राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय (एडवोकेट), श्री गुलाब चन्द्र केशरवानी जी ने भी अपनी शुभ कामनाओं से मुझे वंचित नहीं रखा वे भी श्रृद्धा के पात्र है। मैं उनका भी आभारी हूँ। ग्रन्थ की टंकण में ग्लोबल कम्प्यूटर एजूकेशन एवं आधुनिक कम्प्यूटर प्रिंटिंग, मऊ–चित्रकूट सेन्टर के श्री मुकेश कुमार गुप्ता जी ने भी बहुत रुचि दिखाई आप भी धन्यवाद के पात्र है।

भूपेन्द्रमणि पाण्डेय

विषय – सूची

प्रथम अध्याय

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचन्द्र सूरि–व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कवि परिचय

नयचन्द्र सूरि अपने समय के एक प्रसिद्ध जैनचार्य थे । इनके पूर्वगुरुओं ने राजस्थान के नागौर आदि अनेक आदर्श स्थानों की जनता को धार्मिक आचारों में प्रवृत्त किया। इनके सदुपदेशों के कारण लोकोपयोगी अनेक देवस्थान निर्मित हुये । नयचन्द्र सूरि के प्रगुरु महेन्द्र सूरि थे, जिनका मुसलमान शासक भी बड़ा सम्मान करते थे। उनके उपदेश से दीन और दुखी जनों की सहायता के लिये प्रतिवर्ष एक लाख दीनार (सोना मुहर) व्यय किये जाते थे। इन महेन्द्र सूरि के पट्टधर आचार्य जयसिंह सूरि हुये, जिनके पट्टधर प्रसन्न–चन्द्रसूरि थे। नयचन्द्र सूरि के दीक्षागुरु तो प्रसन्न–चन्द्रसूरि थे, परन्तु विद्या गुरु जयसिंह सूरि ही थे। ये जयसिंह सूरि बड़े विद्वान् और वाद–विद्या में पारंगत थे, इन्होने षड्भाषा कवि चक्रवर्ती ऐसे सारंग नामक विद्वान् को वाद विवाद में परास्त कर दिया था। ये स्वयं त्रैविध वादिचक्रवर्ती थे। इन्होने, न्यायशास्त्र के सुप्रसिद्ध प्राचीन ग्रन्थ भा–सर्वज्ञकृत न्यायसार पर बड़ी पाण्डित्यपूर्ण टीका लिखी। एक स्वतन्त्र नया व्याकरण ग्रन्थ बनाया। कवित्व कला का निदर्शक 'कुमार पाल–चरित्र' नामक बड़ा काव्य ग्रन्थ बनाया। नयचन्द्र सूरि अपने इन त्रैविध विद्यागुरु की साहित्योपासना का अध्ययन–मनन करते रहते थे और उनको सहयोग भी देते थे। उक्त 'कुमारपालचरित्र' का प्रथमादर्श याने मूल रचना की प्रथम शुद्ध प्रतिलिपि नयचन्द्र सूरि ने अपने हाथ से की थी। इस सहयोग के लिये जयसिंह सूरि ने अपने काव्य में इनकी इस प्रकार से प्रशंसा की है –

अवधानसावधानः प्रमाण निष्ठः कवित्वनिष्णातः ।

अलिखन् मुनिनयचन्द्रो गुरुभक्त्याऽस्याधादर्शम् ।।

अर्थात् अवधानविद्या में निपुण, प्रमाणशास्त्र में प्रवीण और कवित्व प्रणयन में निष्णात ऐसे नयचन्द्रमुनि ने, गुरु–भक्ति के कारण इस ग्रन्थ का प्रथम आर्दश (पहली प्रतिलिपि) लिखा।

जय सिंह सूरि के इस संक्षिप्त उल्लेख से नयचन्द्र मुनि (उस समय वे सूरि नहीं बने थे) की प्रतिभा–शक्ति का परिचय मिल जाता है। नयचन्द्र उत्तम कोटि के कवि तो थे ही, जो प्रस्तुत हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन से सुनिश्चित है; पर वे प्रमाणशास्त्र अर्थात् न्यायशास्त्र के भी उत्तम पण्डित थे और कई प्रकार के अवधान–प्रयोग करने में भी बड़े निपुण एवं प्रतिभाशाली समझे जाते थे। इस प्रकार नयचन्द्र सूरि एक उत्कृष्ट विद्वान् एवं श्रेष्ठ कवि थे।

हम्मीर महाकव्य के कर्ता नयचन्द्र सूरि का व्यक्तित्व और कर्तृत्व भिन्न प्रकार का है। वह निःस्पृह, धर्मोपदेष्टा, बहुजन सम्मानित, सहित्योपासक, संस्कृतिप्रिय, तपः संयम–पूत, तेजस्वी तथा त्यागी है। उन्हें किसी प्रकार के धन की प्राप्ति की कोई आकाक्षां नहीं है; न वे किसी के सम्मान के भूखे है, न वे राज्याश्रित पण्डित है और न चौहान वंशीय किसी व्यक्ति विशेष से सम्मानित या पोषित है। उस वंश के साथ उसका कोई ऐहिक सम्बन्ध नहीं है कि जिससे उस वंश के पूर्व – पुरुषों का गुण–गान करने में कोई ऐहिक भावना उसके लिये कारणी भूत बने। वह अपने काव्य नायक हम्मीर से लगभग 100 वर्ष बाद उसके यश का वर्णन करने में प्रवृत्त हुये। इसका मुख्य कारण, उस सत्त्वशील, देश–भक्त वीर की जन–प्रसिद्ध पराक्रमपूर्ण, प्राणविसर्जन की पावन कथा है। नयचन्द्र सूरि उसकी ऐसी लोकोत्तर कीर्तिकथा पर मुग्ध होकर, उसको अपनी भावपूर्ण वाणी द्वारा काव्यबद्ध करते है। उसके अन्तर की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ही उसको इस सत्कीर्तन करने में प्रेरित करती है। माता भारती का वह सत्त्वानुरागी सुपुत्र है। वाग् देवी ने उसको उत्तम कवित्व शक्ति प्रदान की है। इस कवित्व शक्ति का सर्वोत्तम फल प्राप्त करने के लिये उसने हम्मीर जैसे उत्तम सत्त्वशील नर–श्रेष्ठ को अपना आदर्श नायक (मोडेल) बना कर उसके उज्जवल यश का गुणगान करना पसन्द किया है। हम्मीर के वीर जीवन की तरह नयचन्द्र सूरि का यह कवि जीवन भी पूर्ण सफल हुआ।

पृथ्वीराजविजय और हम्मीर महाकाव्य की रचना का मूल उद्देश्य तो एक ही है। दोनों काव्य चौहान वंश के प्रतापी वीरों के यश का गुणगान करते है। ये चौहान वीर

भारत की राष्ट्रीयता और संस्कृति की रक्षा के लिये केवल अपने बाह्य सुखोपभोगों को ही नहीं, प्रियतम आत्मीय जनों का और स्वयं प्राणों का भी बलिदान करने में सदा उत्सुक और तत्पर रहे। चौहान वंश का भूतकालीन इतिहास इस विषय में बहुत अधिक प्रेरणादायक और प्रशंसनीय रहा है। इस वंश के ऐसे अनुपम शूर–वीरों की यशोगाथा को काव्यबद्ध करने की कामना से प्रेरित होकर वाग्देवी के उपासक कवि जयानक और कवि नयचन्द्र सूरि ने क्रमशः इन दोनों महाकाव्यों की विशिष्ट रचनायें की; यद्यपि दोनों कवियों का काव्य लक्ष्य समान है; तथापि दोनों के प्रेरक तत्त्व कुछ भिन्न है। जयानक कवि की कवित्व शक्ति किसी ऐहिक आकांक्षा से प्रेरित है, जबकि नयचन्द्र सूरि की वाग्भारती केवल परमार्थित भावना से अनुप्राणित है। जयानक पृथ्वीराज का राज्याश्रित एवं राजसभा–सम्मानित कवि था, उसको पृथ्वीराज से धन और सम्मान मिला था; इसलिये उसका (पृथ्वीराज) का गुण गान का गुम्फन करना सापेक्ष था। पृथ्वीराज वीर था, अपने पूर्वजों की भूमि और कीर्ति का रक्षण करने में वह सन्नद्ध था, पर साथ में वह विलासमय जीवन का उत्कृष्ट अनुरागी था। कवियों द्वारा की जाने वाली सत्य या मिथ्या स्तुति का वह अभिलाषी था। अतः कवि जयानक द्वारा किये गये उसके गुणों का गान एक आश्रित कवि का साभिलाष प्रशस्ति गान पाठ है। जबकि हम्मीर महाकाव्य का कर्त्ता नयचन्द्र सूरि एक निःस्पृह अराज्याश्रित, मिथ्यास्तुति से रहित, सत्त्वशील, यथार्थ का उद्घाटक कवि है।

इस प्रकार पृथ्वीराज–विजय के निर्माण में लौकिक आकाक्षां की सापेक्षता हेतुभूत है और हम्मीरमहाकाव्य के प्रणयन में विशुद्ध सात्त्विक एवं राष्ट्र–भक्ति पूर्ण निराकांक्षा हेतुभूत है। जयसिंह सूरि ने कुमारपालचरित्र काव्य की रचना विक्रमी सम्वत् 1422 में पूर्ण की, अतः उसकी प्रथम लिपि करने वाले नयचन्द्रसूरि जो स्वयं उस समय बड़े विद्वान् बन चुके थे, अवस्था की दृष्टि से कम से कम 25 वर्ष के तो रहे ही होगें। नयचन्द्रसूरि ने हम्मीर महाकाव्य के रचे जाने के समय का कोई संकेत नहीं किया। इससे इसकी रचना कब हुई ? यह निश्चत पूर्वक नहीं कहा जा सकता, तथापि कुछ अनुमान किया जा सकता है। जैसा कि नयचन्द्रसूरि सूचित करते है – इस काव्य के रचने की प्रेरणा,

ग्वालियर के तोमर–वंशीय नृप वीरम की राज सभा के कुछ विद्वानों के कथन को सुनकर हुई थी। उस तोमर वंशीय वीरम नृप के ई0 सन् 1422 तक विद्यमान होने का प्रमाण शिलालेख से ज्ञात होता है। पर उस समय वह बहुत वृद्ध हो चुका था। अतः उसका राज्यकाल 1382 से सन् 1422 तक माना जाता है। इस विचार से उसके राज्य के मध्यकाल में अर्थात सन् 1400 के आस पास नयचन्द्रसूरि द्वारा हम्मीर महाकाव्य की रचना किया जाना अनुमानित किया जा सकता है। नयचन्द्रसूरि उस समय 50 वर्ष जितनी परिपक्व आयु के अवश्य रहे होगें ।

वीर हम्मीर की मृत्यु सन् 1301 मे हुई थी। यदि उपर्युक्त कल्पना के अनुसार इस काव्य की रचना सन् 1400 के आस पास मान ले तो, हम्मीर की मृत्यु का उस समय लगभग 100 वर्ष पूरे होते है। इस दृष्टि से आधुनिक प्रणाली के अनुसार, हम इस महाकाव्य को उस राष्ट्रवीर की प्रथम शताब्दी की पूर्णता का सूचना एक शाश्वत, सारस्वत, पुण्यस्मारक कह सकते है।

नयचन्द्र कवि का यह काव्य संसार में एक अद्भुत रसायन है। इसका आस्वाद सज्जन ही ले सकते है और श्री हर्ष कवि जैसी इस काव्य में वक्रोक्तियाँ है। इस प्रकार नयचन्द्र कवि के काव्य में ये दोनों अलौकिक गुण वर्तमान है।

ग्रन्थ परिचय (ऐतिहासिक)

पृथ्वीराज–विजय काव्य के समान ही चौहान वंश के वीरों का यशो–वर्णन करने वाला प्रस्तुत 'हम्मीर महाकाव्य' दूसरा संस्कृत काव्य–ग्रन्थ है। पृथ्वीराज विजय की अपेक्षा इतिहास की दृष्टि से यह काव्य बहुत महत्त्व का है। एक तो यह कि इसमें पृथ्वीराज के चरित्र की मुख्य ऐतिहासिक घटना का भी विस्तृत वर्णन मिलता है और दूसरा इसमें उस पृथ्वीराज के ही वंश के अन्तिम परन्तु अप्रतिम श्रेष्ठ वीर पुरुष का यशोवर्णन है जो पृथ्वीराज से भी कई अंशो में अधिक गुणवान् और आदर्श पुरुष था। यह वीर नर हम्मीर पृथ्वीराज से प्रायः एक शताब्दी बाद उसकी सातवीं पीढ़ी में हुआ।

हम्मीर महाकाव्य एक उत्तम कोटि का राष्ट्र काव्य है। इस कोटि का और ऐसे उदात्त भावों का आलेखन करने वाला संस्कृत महाकाव्य हमारे विचार से और कोई नहीं

है। यह कोई पौराणिक कल्पित कथा का चित्रण करने वाला सामान्य शृङ्गार रस पोषक काव्य नही है। यह एक विशुद्ध ऐतिहासिक राष्ट्रवीर की पावन कथा द्वारा अत्यन्त उदात्त और प्रेरणा–परिपूर्ण भारतीय भावना को उद्दीपित करने वाला वीराङ्क महाकाव्य है। इस काव्य में उस राष्ट्र–नरवीर का यशो–वर्णन है, जिसने अपने राष्ट्र, धर्म, कुल और उच्च संस्कृति की रक्षा के निमित्त केवल अपने समय के ही नही, अपितु संसार के इतिहास के एक बहुत बड़े शक्ति शाली, महाक्रूर, धर्म–ध्वसंक और नृशंसतम मुसलमान आक्रान्ता के दुष्टतम आक्रमण को और नीचतम आमंत्रण को बल और वचन से दुतकार दिया था। उस राष्ट्र–वीर एवं धर्म–शूर ने, भारतीय संस्कृति के सुवर्णमय शरीर और धर्मपरायण हृदय को अपने क्रूरातिक्रूर डंक द्वारा विषाक्त कर, राष्ट्र को प्राण शेष करने के लिये प्रबल बेग से धंसे आने वाले यवन भुजंग को, कठोर दण्ड प्रहार द्वारा उछाल कर रणथम्भौर के दुर्ग से अपमान के गर्त मे फेंक दिया था। भारत के भाग्य–विधाता विराट् पुरुष ने, राष्ट्र के गौरव और धर्म की रक्षा के लिये अपने सर्वस्व का उल्लास–पूर्वक बलिदान करके प्राणों का भी उत्सव के साथ उत्सर्ग कर देने वाले, उत्कृष्ट प्रतीक के रूप मे उस महावीर का निर्माण किया था। वह अपने विराट के निर्माण को सफल करता हुआ परमधाम को चला गया। सम्राट विराट ने स्वर्ग मे उसका जय–जय कार किया और उसके ऐसे अद्भुत उज्ज्वल यश को एक महाकाव्य द्वारा चिरस्थायी बनाने के लिये, राष्ट्रकवि नयचन्द्र सूरि को दिव्य आदेश दिया। विराट के पुण्य प्रदायक पावन आदेशं का श्रद्धा और भक्ति पूर्वक पालन करते हुए कवि शिरोमणि नयचन्द्र सूरि ने वीर हम्मीर के शतवार्षिक श्राद्धस्वरूप तर्पण कार्य में अपनी यह भव्य काव्य–कुसुमाञ्जलि समर्पित की।

हम्मीर महाकाव्य में हमारे राष्ट्र के ऐतिहासिक वीरों की राष्ट्र–रक्षात्मक कीर्ति–कथा का गुण गान है, अतः यह एक राष्ट्रीय महाकाव्य है।

यह हम्मीर महाकाव्य एक विपुल काव्य है। इसमें 14 सर्ग हैं, जो संस्कृत के विविध छन्दों में गुम्फित है। इसकी कुल पद्य संख्या 1476 है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में

किसी न किसी तरह 'वीर' शब्द का प्रयोग किया गया है, अत: संस्कृत की काव्य पद्धति के अनुसार यह वीरांक काव्य है।

कवि नयचन्द्र क्यों उस हम्मीर के गुणों पर मुग्ध हैं और क्यों इस काव्य के करने में प्रवृत्त हुआ है, इस विषय में वह काव्य के प्रारम्भ में अपने मनोभाव बड़े स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए कहता है, कि "पूर्व काल में मान्धाता, सीतापति राम और कंक (युधिष्ठिर) आदि पृथ्वी में कितने राजा नहीं हो गये पर उन सब में अ ने सत्व गुण के कारण यह हम्मीर एक अद्वितीय स्तवार्ह (स्तुति करने लायक) पुरूष है। इस सत्वैक–वृत्ति पुरूष ने विधर्मी मनुष्यों तक को न देने के लिये राजलक्ष्मी, सुखविलास और अपने जीवित तक को तृणवत् समझ कर उसका त्याग कर दिया। इसलिए राजन्य जनों के मनों को पवित्र करने की इच्छा से, मैं उस वीर के उन–उन गुणों के गौरव से प्रेरित होकर थोड़ा सा चरित्र–वर्णन करना चाहता हूँ। कहाँ तो इस राजा के वह अतिमहान चरित्र और कहाँ मेरी अणु समान अल्प बुद्धि इसीलिये मेरा यह कार्यमोह के वशीभूत होकर, एक हाथ से महासमुद्र तैरने जैसा है, तथा गुरू जनों की कृपा से, उस पुरूष के जीवन में वृत्त का स्तवन करने में शक्तिमान होना चाहता हूँ। क्या चन्द्रमा की गोद की शरण लेकर हरिण आकाश में नहीं खेल रहा है। यहाँ पर कवि की विनम्रता, उनकी सहज निरभिमानता एवं विद्या व्यसनिता को प्रकट करती है। उसकी यह विनम्रता संस्कृत साहित्य के कवि–कुल गुरु कालिदास के रघुवंश के वर्णन से पूर्व प्रकटित निरभिमानता से तुलनीय है; जिसमे कहा गया है– कि कहां मेरी अल्प बुद्धि और कहां उच्चकुल रघुवंश का वर्णन करना (अतिकठिन कार्य) मैं छोटी सी नौका से दुस्तर समुद्र को तैरने की इच्छा कर रहा हूँ। अतः मैं उसी तरह उपहास का पात्र बनूंगा जिस तरह कोई वौना लम्बे हांथो से प्राप्त करने योग्य फलों को प्राप्त करने के लिये अपने छोटे हाँथ उठाये हुये उपहास का पात्र बनता है।

यहाँ देखने योग्य बात यह है कि कवि कालिदास छोटी सी नौका से दुस्तर समुद्र तैरने की बात कही है तो नयचन्द्राचार्य ने एक हांथ से समुद्र तैरने की बात कह कर विनम्रता में कालिदास से भी एक कदम आगे निकल गये है।

1. क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं क्वैषा पुनर्मे धिषणाऽणुरूपा।

ततोऽतिमोहाद्भुजयैकयैव मुग्धस्तितीर्षामि महासमुद्रम्।। ह0 म0 1/11

2. क्व सूर्य प्रभवो वंशः क्व चाऽल्प–विषया मतिः मोहाद्डुपेनास्मिसागरम्। रघुवंश म0

हम्मीर चाहमान–वंश का शिरोमणि वीर नर था, इसलिये कवि ने प्रारम्भ मे उस वंश के पूर्व पुरुषों का ऐतिहासिक वर्णन करना महत्त्वपूर्ण समझा है। यह वर्णन उक्त पृथ्वीराज–विजय काव्य मे वर्णित शैली का है। इसमें उसी ढ़ंग से वंश के मूलपुरुष चाहमान की उत्पत्ति बतायी गयी है। उसके बाद उत्पन्न होने वाले वासुदेव, नरदेव, चन्द्रराज, सिंहराज, वप्पराज, विग्रहराज, वल्लभराज, दुर्लभराज, विशालदेव, आनलदेव और सोमेश्वरदेव तक के कोई 29–30 राजाओं के नाम गिनाये गये है और उनके द्वारा समय–समय पर किये गये म्लेच्छों के आक्रमणों का प्रतिरोध आदि कार्यो के संक्षिप्त वर्णन हैं। पृथ्वीराज–विजय काव्य की तरह ही इन वर्णनों में भी मुख्यतः म्लेच्छों द्वारा किये गये उपद्रवों और विप्लवो का सामना करते हुये अपने राष्ट्र और धर्म की रक्षा के निमित्त चाहमान वंशीय वीरों ने जो बड़ा शौर्य कर्म किया, उसी का चित्रण अंकित है। इसी वर्णन मे प्रसंगानुसार चाहमानों के मूल निवास–स्थान शाकंभरी, सपादलक्ष देश और अजय–मेरु–नगर आदि की स्थापना–सम्बन्धी बातों का उल्लेख किया गया है। पृथ्वीराज विजय की अपेक्षा इसमें वंश के पूर्व पुरुषों की नामावलि में कुछ न्यूनाधिकता भी है। कुछ ऐसे भी म्लेच्छ आक्रान्ताओं के नाम आदि दिये गये है, जो पृथ्वीराज–विजय में नहीं मिलते है।उदाहरणार्थ– वप्रराज के पुत्र हरिराज ने किसी शकाधिप को जीतकर उसका मुग्धपुर छीन लिया था। हरिराज के पुत्र सिंहराज ने हेतिम नामक शकपति को मारा और उसके चार मस्त हाँथी युद्ध मे पकड़ लिये, चामुण्ड राज ने हेजिमदीन नामक किसी मुसलमान आक्रान्ता का वध किया। दुर्लभराज ने सहाबद्दीन नामक किसी शासक को पराजित किया। इत्यादि ऐसे उल्लेख मिलते है, जो पृथ्वीराज–विजय में नहीं है।

अजमेर के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज का वर्णन इसमें बहुत विस्तृत है। लगभग 100 पद्यों मे पृथ्वीराज के चरित्र का वर्णन किया है। ये 100 पद्य एक प्रकार से

पृथ्वीराज–विषयक स्वतंत्र खण्डकाव्य–स्वरूप है। कवि नयचन्द्र के इस वर्णन मे भी पृथ्वीराज के देश–रक्षा–निमित्त किये गये सहाबुद्दीन के साथ के युद्धों का चित्रण मुख्य है। पृथ्वीराज की कुछ राजनीतिक असावधानता और अनुचित आत्म–विश्वास के कारण उसकी पराजय हुई और म्लेच्छों ने भारत की मुख्य भूमि की स्वत्व छीनकर दिल्ली में अपने साम्राज्य की नींव डाली, यह इस वर्णन की अतिस्वरात्मक अन्तर्ध्वनि है। साथ में, इस वर्णन में पृथ्वीराज के प्रजाप्रिय, शौर्यशाली और राष्ट्राभिमानी होने का सुन्दर वर्णन भी, संक्षेप में परन्तु बहुत प्रशस्त शब्दों मे किया गया है।

पृथ्वीराज की मृत्यु के साथ, चाहमान वंश के पराक्रमों के मूलकेन्द्र स्थान (राजधानी) अजयमेरु पर म्लेच्छों का स्थायी अधिकार हो गया और उसके साथ उस वंश द्वारा अधिष्ठित भारत की मुख्य राजधानी दिल्ली भी मुसलमानों के अधिकार में चली गई। एक प्रकार से चाहमान वंश का मूल राज्यसिंहासन नष्ट हो गया पर इस वंश मे, अभी एक और सर्वश्रेष्ठ वीर पुरुष, 100 वर्ष बाद उत्पन्न होने वाला था। कवि नयचन्द्र ने उसी के यश का वर्णन करने के लिये, यह नव्य और भव्य काव्य रचा है। इसलिए उसने प्रारम्भ के तीन सर्गों मे ही पृथ्वीराज तक के वीर पुरुषों का वर्णन समाप्त करके, चौथे सर्ग से रणथंभौर के अधिष्ठाता राजवंश का वर्णन प्रारम्भ किया है। हम्मीर इस वशं का सर्वान्तिम परन्तु सर्वोत्तम वीर नर है।

पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद उसके पुत्र गोविन्दराज ने रणथंभौर में अपनी नयी राज्यगद्दी स्थापित की। उसकी सातवीं पीढी मे महावीर हम्मीर उत्पन्न हुआ। काव्य के बाद के 11 सर्गों में हम्मीर का वर्णन किया गया है। हम्मीर का पिता जैत्रसिंह था। नयचन्द्र ने गोविन्दराज से लेकर जैत्रसिंह तक के राजाओं का संक्षिप्त परिचय देकर, चौथे सर्ग के अन्तिम भाग में हम्मीर के जन्म का उल्लेख किया है। बाद के 4 सर्गो मे (5 से 8 तक) काव्य की परम्परा का अनुसरण करते हुये वसन्तादि–ऋतुओं, जल–क्रीड़ा, श्रृंगार रस पोषक सुरत आदि प्रसंगो का काव्यात्मक वर्णन किया है।

गोविन्दराज से लेकर जैत्रसिंह तक के राजाओ पर दिल्ली के मुसलमानों के सतत आक्रमण होते रहे। रणथंभौर का दुर्ग सैनिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के स्थान पर

स्थित था। दिल्ली के नजदीक वही सबसे दुर्गम दुर्ग था। चाहमान जैसे मुसलमानों के सबसे प्रबल वैरिवंश की अवशिष्ट सन्तानों ने उस पर अपना अधिकार कर रखा था इसीलिये दिल्ली के मुसलमान शासकों को अपने सिर पर लटकती हुई तलवार जैसी वह सत्ता खतरनाक लगा करती थी। अतः दिल्ली के मुसलमान शासको ने उस सत्ता को नष्ट करने का सतत प्रयत्न चालू रखा। बारंबार वे रणथंभौर पर आक्रमण करते रहे, चाहमान भी उनका सामना अपने पूर्वजो के समान वैसा ही करते रहे। वे कभी हारते कभी जीतते–पर संघर्ष सदा चालू रखते। वे अपनी तलवार को सिरहाने रखकर कभी सुख की नींद नही सोते थे। नयचन्द्र कवि ने इस संघर्ष काल का यथोचित उल्लेख किया है।

हमारा उद्देश्य यहाँ पर उन सब ऐतिहासिक प्रसंगो का वर्णन करना नहीं है, केवल काव्यगत वस्तु का निर्देशात्मक संकेत– मात्र सूचनि करना है।

काव्य के आठवें सर्ग में हम्मीर के राज्याभिषेक का वर्णन है। वि0स0 1339 की पौष शुक्ल पूर्णिमा के शुभ मुहूर्त में हम्मीर राज्यसिंहासन पर अधिष्ठित होता है। बाद में उसके पिता का स्वर्गवास हो जातः है। फिर हम्मीर शक्ति और सत्ता प्राप्त करने की दृष्टि से अपने सीमावर्ती समीप के देशों पर दिग्विजय करने निकलता है। इसी नवें सर्ग में दिल्ली के सुल्तान का भी वर्णन आता है। वह रणथंभौर के हर्म्मीर वीर के शौर्य से क्षुब्ध होकर उस पर आक्रमण करने की कुटिल नीति का प्रयोग चालू करता है। बाद के 10–11–12–13, इन चार सर्गों में अलाउद्दीन के साथ होने वाले संघर्षों का वर्णन है। इन्ही संर्घषों में हम्मीर द्वारा प्रदर्शित की गई वीरता का, शरणागतवत्सलता का और कुल–मर्यादा की रक्षा का विशद वर्णन है। अन्तिम सर्ग में रणथम्भौर के पतन और हम्मीर के प्राणोत्सर्ग का वर्णन है। कवि नयचन्द्र द्वारा आलेखित यह वर्णन भारतीय साहित्य की एक अद्भुत वीरगाथा है। ऐसा भव्य, उदात्त और प्रशस्त वर्णन संस्कृत भाषा के किसी भी काव्य में दुर्लभ है।

अलाउद्दीन भारत के तत्कालीन इतिहास में एक प्रलयकाल का सर्जक था। भारतीय संस्कृति और समृद्धि का सामूहिक सर्वनाश करने का उसका जीवन लक्ष्य था।

भारत के तत्कालीन सब राज्यों के दुर्गों और नगरों को उद्ध्वस्त कर, उनके स्वामी और प्रजाजनों पर अत्यन्त अमानुष अत्याचार कर, भारत की राष्ट्रीयता का समूल नाश करने के लिए, उसने सर्वत्र दारूण दावानल सुलगा दिया था। इस दावानल में एक के बाद एक भारत के जन–जीवन रूप नन्दन वन भस्म हो रहे थे। उन्हीं नन्दन वनों में रणथम्भौर भी एक विशिष्ट स्थान रखता था। अतः उसको भी अपनी लपेट में लेने के लिए अलाउद्दीन की क्रूर दृष्टि की दाहक ज्वाला का उस पर फैलना स्वाभाविक था। हम्मीर महाकाव्य में इस ज्वाला का भंयकर स्वरूप यथेष्ठ चित्रित है। राष्ट्र व्याप्त इस प्रचण्ड ज्वाला को बुझाने के लिए हम्मीर के पास वैसी असाधारण शक्ति नहीं थी। वह एक छोटे से राज्य का स्वामी था। उसकी धन एवं जनात्मक शक्ति बहुत सीमित थी, अतः इस ज्वाला में उसके राज्य और सामर्थ्य का भस्मीभूत होना अनिवार्य था।

अलाउद्दीन के शासन काल में भारत के विभिन्न भागो में मुस्लिम राज्य का शीघ्रता से विस्तार हुआ। सर वुल्सेले हेग का कथन है कि इसके साथ सल्तनत का साम्राज्य काल आरम्भ होता है, जो लगभग आधी शताब्दी तक चलता रहा। 1297 ई0 में अलाउद्दीन नें गुजरात के हिन्दू राज्य को जीतने के लिये अपने भाई उलुग खाँ तथा अपने वजीर नसरत खाँ के अधीन एक बलवती सेना भेजी। गुजरात को कई बार लूटा गया था, परन्तु यह अविजित ही रहा था। उस समय वहाँ का शासक राय कर्णदेव द्वितीय था, जो एक वघेल राजपूत था। आक्रमणकारियों ने सारे राज्य को रौंद ड़ाला और कर्णदेव द्वितीय की रूपवती रानी कमला देवी को पकड़ लिया। राजा तथा उसकी पुत्री देवल्ल देवी ने देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव के यहाँ शरण ली। उन्होंने गुजरात के समृद्ध बन्दरगाहों को भी लूटा और विशाल परिमाण में लूट का माल तथा काफूर नामक एक युवक हिजड़े को ले आये। विपुल सम्पत्ति, कमला देवी और काफूर के साथ दिल्ली लौटे। कमला देवी बाद में अलाउद्दीन की प्रिय पत्नी बनी। काफूर आगे चल कर राज्य का सबसे प्रभावशाली सरदार हुआ तथा अलाउद्दीन की मृत्यु के पहले और बाद कुछ समय तक इसका असली स्वामी भी बन बैठा। रणथम्भौर, जिसे कुतबुद्दीन तथा इल्तुतमिश ने जीता था, राजपूतों द्वारा लौटा लिया गया और इस समय वीर राजपूत राजा हम्मीर देव के अधीन था। उसनें कुछ असन्तुष्ट नव–मुस्लिमों (नये मुसलमानों) को शरण दी थी, जिससे अलाउद्दीन क्रुद्व हो गया। 1299 ई0 में सुल्तान ने अपने भाई उलुग खाँ तथा नसरत खाँ (जो उस समय क्रमशः बियान एवं कड़ा के जागिरदार थे) के अधीन दुर्ग जीतने के लिए सेना भेजी। उन्होने झाइन को जीतकर, रणथम्भौर के सामनें पडाव डाल दिया परन्तु राजपूतों नें शीघ्र ही उनको पराजित कर दिया। नसरत खाँ एक पाशिब तथा गर्गज के निर्माण की देख भाल करते समय दुर्ग मगरिबी (मंजनीक, ढेलमास) से छूटे हुए एक पत्थर से मारा गया। अपनी सेना की इस पराजय की खबर सुनकर अलाउद्दीन स्वयं रणथम्भौर की ओर बढ़ा। जब वह गढ़ की राह में अपनें कुछ ही अनुचरों के साथ तिलपत में शिकार कर रहा था, तभी उसके भतीजे आफत खाँ ने कतिपय "नये मुसलमानो" के साथ मिलकर उसकी प्रतिरक्षा रहित अवस्था में उस पर आक्रमण कर, उसे आहत कर दिया। परन्तु वह विश्वास घाती शीघ्र ही पकड लिया गया और अपने मित्रों के सहित मार डाला गया।

अल्लाउद्दीन को सिंहासनच्युत करने के निमित्त किये गये अन्य षड्यन्त्रो का भी शमन कर दिया गया। उसने जुलाई 1301 ई0 मे रणथम्भौर के गढ़ को एक वर्ष तक घेरा डालने के बाद बड़ी कठिनाई से जीत लिया। हम्मीरदेव तथा "नये मुसलमानों" को जिन्हें उसने शरण दी थी, मार डाला गया। अमीर खुसरों ने गढ़ के घेरे का मनोरंजक विवरण देते हुये लिखा है "एक रात राय ने पहाडी के शिखर पर अग्नि जलायी अपनी स्त्रियों और परिवार को धधकती हुई अग्नि मे फेंक दिया।"

अपने कुछ अनुरक्त अनुयायियो के साथ शत्रु पर टूट पड़े और निराशा मे अपने प्राण न्यवछावर कर डाले। हम्मीर के मंत्री रणमल्ल को, जो अपने स्वामी के साथ विश्वास घात कर बहुतेरे दूसरे साथियो के साथ शत्रु से जा मिला था, अपने विश्वाम्घात का उचित बदला मिला सुल्तान की आज्ञा से उसे फॉसी दे दी गयी। अलाउद्दीन ने, रणथम्भौर को उलुग खॉ के अधीन छोड़ कर दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। किन्तु सुल्तान के जाने के पाँच महीने बाद उलुग खॉ की मृत्यु हो गई। (भारत का बृहद इतिहास–भाग[2])

हम्मीर महाकाव्य का लेखक हम्मीर की मृत्यु का एक दूसरा ही विवरण देता है। उसके लेखानुसार हम्मीर की पराजय का कारण उसके दो सेना पतियों रतिपाल और कृष्णपाल का उसका साथ छोड देना था। जब बुरी तरह घायल होने पर हम्मीर ने महसूस किया कि मेरा अन्त समीप है, तब उसने आक्रमणकारियो की अधीनता स्वीकार करना खराब समझ, अपनी ही तलवार से अपना सिर काट डाला।

(ईश्वरी प्रसाद, मेडीवल इडिया, पृ0 195, पाद–टिप्पणी।)

इतिहास की दृष्टि से विवेचन

काव्य की दृष्टि से यह सफल कृति है। श्री नयचन्द्रा चार्य के एक शिष्य के शब्दों मे इसमे 'अमर का–सा लालिव्य और हर्ष की–सी वक्रिमा है। 'यह व्यर्थ के शदाम्बडर से शून्य और अर्थालंकारो से परिपूर्ण है। इसका काव्य–सौष्ठव स्वतः अच्छा विवेच्य विषय है, किन्तु अभी हम इसका केवल इतिहास की दृष्टि से विवेचन कर रहे है। यह सर्वतो भावेन ऐतिहासिक महाकाव्य है। नयचन्द्र ने कई शब्दों का ऐसे अर्थो मे प्रयोग किया है जिन्हे वर्तमान इतिहासविद् शायद ठीक से समझ न पाये। मुसलमानो के लिये उसने शक, तुरुष्क, और यवन म्लेच्छ आदि शब्दों का प्रयोग किया है। मुगलों को वह घटैक– देशीय या षर्प्पर पद से अभिहित किया है। मुसलमानी नाम अशुद्ध रुप में है, चाहे उन्हें पहिचानना कठिन हो। सहाबदीन या सहाबद्दीन, जल्लालदीन, अल्लावदीन, उल्लूखान, महिमासाहि,

गर्भरुक,तिचरवैचर, निसुरतखान आदि शब्द क्रमशः शिहाबुद्दीन, जलालुद्दीन, अलाउदीन, उलुगखान, मुहम्मदशाह, कामरु, यलचक, बर्क और नुसरतखान हैं। दिल्ली और योगिनीपुर दिल्ली के पुराने नाम हैं। हम्मीर महाकाव्य को पढ़ते समय पाठक शुद्ध नामों को ध्यान में रख सकते हैं। हमने प्रायशः नयचन्द्र सूरि द्वारा प्रयुक्त नामों को ही दिया है।

भारत का वृहद इतिहास में भी उलुग खाँ, नसरत खाँ, रतिपाल. रणमल्ल, रणथम्भौर आदि नामें का उल्लेख मिलता है जो हम्मीर महाकाव्य के पात्रों से पूर्णतया मिलते हैं। (मेल खाते हैं) किन्तु घटना क्रम में अन्तर देखने को मिलता है। प्रथम और द्वितीय सर्ग की कथा कुछ अंश में पृथ्वीराज–विजय की कथा से मेल खाती है। पृथ्वीराज– विजय में भी चाहमान के सूर्यमण्डल से अवतरण की कथा के समान ही इसमें भी वर्णित चाहमान राजा वासुदेव की कथा वर्णित हैं। किन्तु उसके बाद का हममीर महाकाव्य का वंशक्रम कुछ अस्त–व्यस्त है। हर्षनाथ का शिलालेख (वि0सं0 1030) बिजोल्या का शिला लेख (सं0 1226) और पृथ्वीराज विजय लगभग (स0 1248) के आधार पर ठीक वंशावली निम्नलिखित रुप में की जा सकती है–
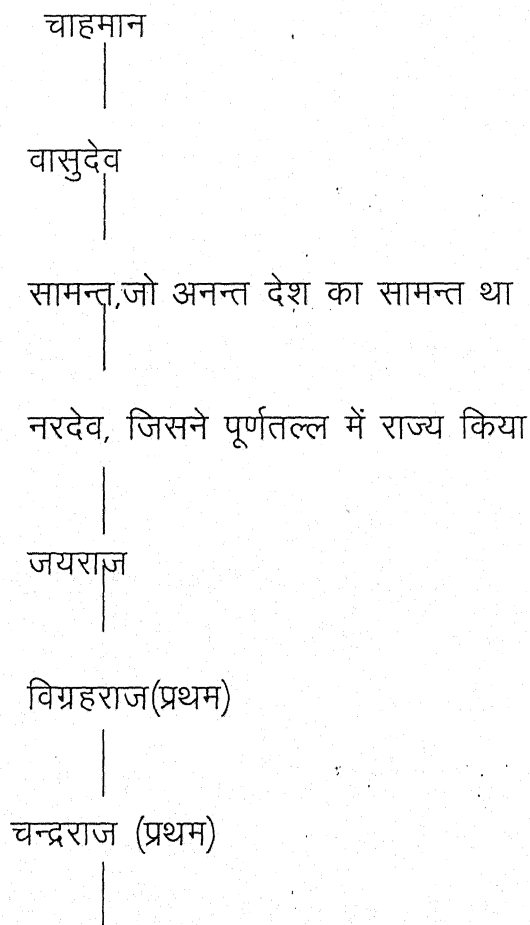
गोपेन्द्रराज

दुर्लभराज (प्रथम) जिसकी सेना गंगा सागर तक पहुँची

गूवक(प्रथम) यह नागभट्ट द्वितीय काव्यख्याति प्राप्त सामन्त था। हर्षनाथ का मन्दिर प्रथमतः इसी ने बनवाया था।

चन्द्रराज (द्वितीय)

गूवक (द्वितीय) जिसने अपनी बहिन कलावती का विवाह कान्यकुब्ज के सम्राट (भोज प्रथम) से किया।

(महाराज) वाक्पतिराज (वप्पराज) जिसने 188 युद्धों में विजय प्राप्त की।

(महाराजधिराज)सिंहराज (जिसका वि0स01013का थाँवले का लेख प्राप्त है)इसने तंवर राजा सलवण का वध किया। हर्षनाथ का जीणोद्धार इसके समय में हुआ।

परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर विग्रहराज (द्वितीय) जिसने गुर्जरराज मूलराज को हराया।

दुर्लभराज(द्वितीय) जो दुर्ल्लध्यमेरू के नाम से प्रसिद्ध था और जिसने नाड़ोल के राजा महेन्द्र को अभिभूत किया।

गोविन्दराज–इसकी पदवी बैरिघरट्ट थी।

(1) वाक्पतिराज (द्वितीय) जिसने आघाट के स्वामी अम्बा प्रसाद को युद्ध में मारा।

(2) वीर्यराज जो परमार राजा भोज के हाथों मारा गया।

(3) चामुण्ड़ राय

दुर्लभराज(तृतीय) जो मातंगों से युद्ध करता काम आया।(यह मातंगाधिराज सम्भवतः गजनी का शासक इब्राहीम था।)

विग्रहराज (तृतीय) जिसकी सहायता से उदयादित्य परमार ने कर्ण चालुक्य को पराजित किया (बीसल देव रासो का बीसल शायद यही हो।)

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर पृथ्वीराज (प्रथम) जिसके राज्य का वि0 स01162 का एक अभिलेख प्राप्त है। इसने गजनी के अमोर की सेना को हराया।

अजयराज–जिसने मालवराज नरवर्मा को हराया, गजनी के मातंगो को पराजित किया, अजमेरू(अजमेर) नगर बसाया और अपनी तथा अपनी रानी सोमल्ल देवी के नाम से मुद्राएं चलाई।

अर्णोराज– जिसने मुसलमानों को अजमेर के निकट परास्त कर उस युद्ध के मैदान में आनासागर झील खुदवाई। मालवे के राजा नरवर्मा को हराया। सिन्धु और सरस्वती तक धावा किया और हरियाने के तवरों को हराया। द्वयाश्रय काव्य से हमें ज्ञात है कि वह गुजरात के राजा कुमार पाल से हारा।
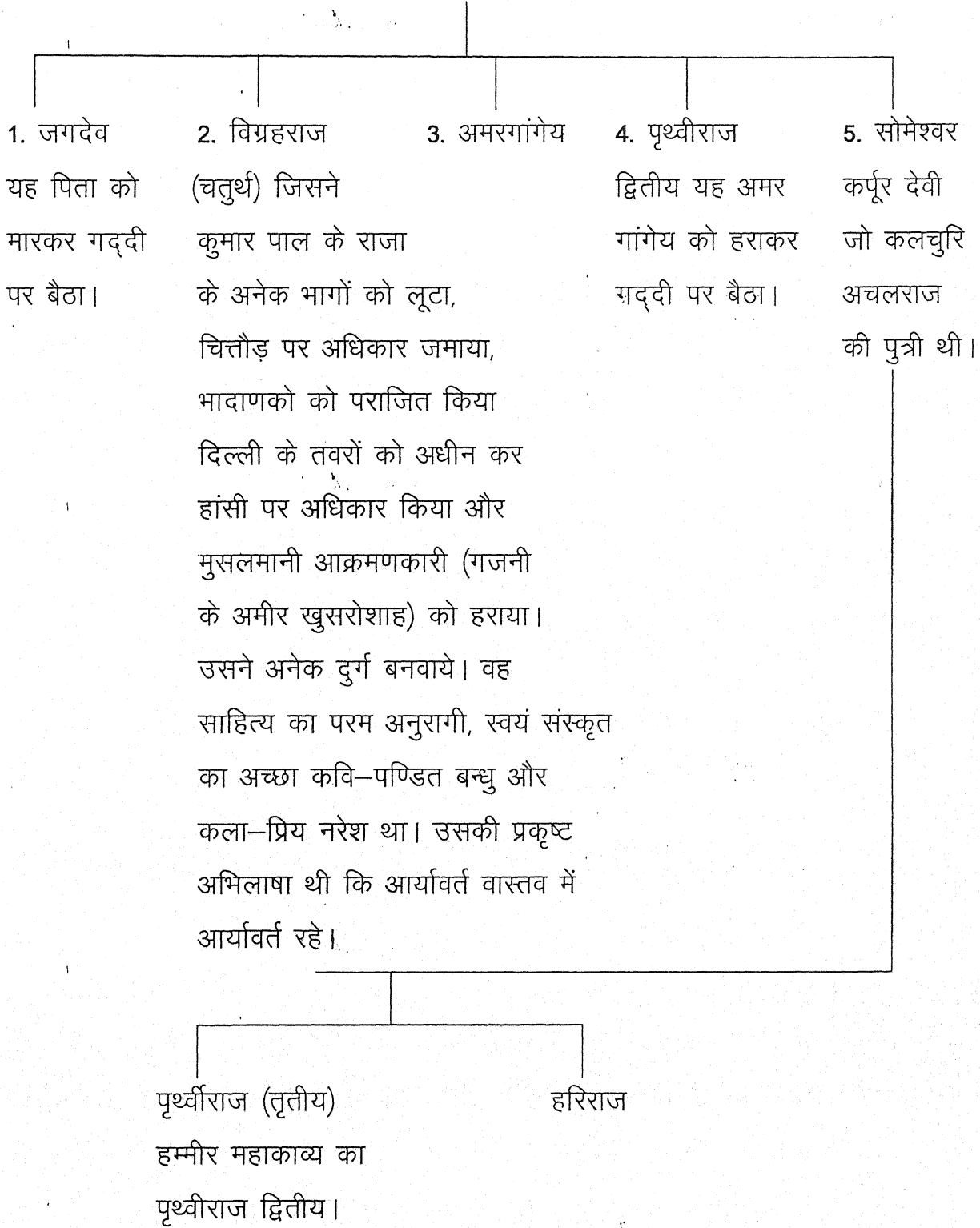
इस वशांवली के आधार पर 'हम्मीर महाकाव्य' की अशुद्धियाँ और कमियाँ किसी अंश मे पूरी की जा सकती। चक्री जयपाल को अजयमेरु का संस्थापक मानने मे नयचन्द्र ने भूल

की है। वास्तव मे इस नगर के निर्माण का श्रेय अर्णोंराज के पिता अजयराज को है जिसका देहान्त वि0स0 1190 से कुछ पूर्व हुआ। जयराज चक्री नाम के राजा का विजोल्या अभिलेख और पृथ्वीराज विजयादि के वर्णन मे अभाव है। सांभर से नमक निकालने का भी श्रेय पृथ्वीराज–विजय के आधार पर वासुदेव को मिलना चाहिये, वप्रराज या वप्पराज को नही है। वप्रराज के पुत्र हरिराज को हम कल्पित न माने तो यह विजोल्या के विन्ध्यनृपति का दूसरा नाम हो सकता है; किन्तु उसका शकाधिराज को हराकर मुग्धपुर पर अधिकार करना निरी कल्पना है। सिंहराज प्रतापी राजा था; किन्तु नयचन्द्र का यह कथन कि उसके प्रयाण ढक्का के वादन से कर्णाट अंगादि देशों के राजा कॉंप उठते थे, अतिशयोक्ति मात्र है। हेतिम नामके शकाधिराज की सत्ता भी जन मानस की निरी कल्पना ही प्रतीत होती है।

शाकम्भरी में चार विग्रहराज या बीसल हुए है। नयचन्द्र ने उनकी घटनायें उल्टी–सीधी कर दी है। वास्तव में विग्रहराज द्वितीय ने मूलराज द्वितीय को हराया, मारा किसी ने भी नही है। विग्रहराज तृतीय या विश्वल का सम्बन्ध शायद मालवे से रहा हो। म्लेच्छों को पराजित करने वाला विग्रहराज चतुर्थ था। चामुण्डराज का विरोधी हेजिमदीन इतिहास को अज्ञात है। चामुण्डराज का पुत्र दुर्लभराज तृतीय मुसलमानों के हॉंथों मारा गया है, उसने स्वयं किसी शिहाबुद्दीन नामके मुसलमानी शासक को नही पकडा। इन दो सर्गो के पढ़ने से स्पष्ट है कि पृथ्वीराज से पूर्व के चांहमान राजाओ का नयचन्द्र को कुछ विशेष ज्ञान न था। उनके विषय मे जैसा सुना, वैसा उसने लिख दिया। इससे उनके वर्णन मे सत्य और असत्य, दोनो को ही स्थान मिला है।

तीसरे सर्ग मे हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज के बारे मे कुछ ऐसी बाते दी है जो अन्यत्र नही मिलती है। कुछ ऐसी भी है, जो नयचन्द्र से छूट गई है। पृथ्वी राज के भादान को, चालुक्यों और गुडपुर के नागार्जुन से युद्धो का वर्णन इसमें नही है। किन्तु मुल्तान के आस–पास के राजाओ का खर्प्परेश के पास सहायता के लिए पंहुचने का मतलब शायद यही हो कि सन् 1191 ई0 मे पृथ्वीराज से पराजित होकर शिहाबुद्दीन ने अपने बड़े भाई गीर नरेश अलाबुद्दीन से युद्ध सामग्री की प्रार्थना की हो। मुसलमानी इतिहासों से यह समर्थित है कि पृथ्वीराज के गले मे धनुष की प्रत्यंचा डालकर ही एक मुसलमान सैनिक ने उसे पकड़ा था। गौड सामन्त उदयराज भी ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होता है।

चतुर्थ सर्ग मे वर्णित घटनाये प्रायः ठीक है। हरिराज का अन्त वास्तव मे दयनीय था। उसके बाद चौहान राज्य रणथम्भौर मे चलता रहा। गोविन्द को पृथ्वीराज का पौत्र और

हरिराज का पुत्र लिखकर कवि ने कुछ अड़चन पैदा कर दी। गोविन्द सम्भवतः पृथ्वीराज का पुत्र रहा हो। राज्यारुढ होने के समय उसकी अवस्था भी कुछ अधिक नही रही होगी।

गोविन्द से हम्मीर तक 'हम्मीर–महाकाव्य' रणथरंम्भौर के इतिहास का मुख्य आधार है। इसके लिये नयचन्द्र सूरि के पास पुष्कल सामग्री रही होगी। हमने काव्य मे वर्णित अनेक घटनाओं को मुसलमानी इतिहासकारों के कथन से तुलना करने पर सर्वथा सत्य पाया है। नयचन्द्र ने वाग्भट के प्रताप युक्त राज्य का वर्णन किया है। मुसलमानी तारीखों से हमे ज्ञात होता है कि वह वास्तव मे अपने समय का सबसे प्रतापी उत्तर भारतीय राजा था।
आठवें सर्ग मे वाग्भट के पौत्र हम्मीर के राज्याभिषेक का सम्वत् नयचन्द्र ने सं0 1339 दिया है जो प्रबन्ध कोश के अन्त मे दी हुई राज–सूचियों की तिथि सं0 1342 से भिन्न है। दोनो की संगति तबही हो सकती है जब हम यह माने कि हम्मीर को अभिषिक्त करने के बाद जत्रसिंह तीन वर्ष तक जीवित रहा है। जम्बूमार्ग महादेव जिसके लिये जैत्रसिंह ने प्रस्थान किया था सम्भवतः पार्वती और चम्बल नदियो के संगम पर स्थित थे। बृह्मविद् बीजादित्य का नाम जिसने जैत्रसिंह की मृत्यु पर हम्मीर को धैर्य बंधाया, हमें बलबन के शिलालेख से भी ज्ञात है।

नवे सर्ग की दिग्विजय की कथा अधिकाँश मे ठीक है। किन्तु यह सम्भव है कि कवि ने एक से अधिक विजय यात्राओं को मिलाकार दिग्विजय का स्वरूप दिया हो। अमीरखुसरों ने हम्मीर के एक सेनानी का ज़िक्र किया है; जिसने मालवा और गुजरात तक धावे किये थे। सम्भवतः वही हम्मीर महाकाव्य का सेनानी भीमसिंह है, जो बनास के निकट वाली घाटी की लड़ाई मे काम आया। हम्मीर के वि0स0 1345 के शिलालेख मे भी विशेष रूप से अर्जुन को पराजित कर मालव देश की लक्ष्मी के ग्रहण का वर्णन है। अन्य विजित स्थानों मे से कुछ की पहिचान कठिन है। किन्तु भीमरस शायद मालवे मे रहा होगा। उसके राजा अर्जुन से हम्मीर ने चार हाँथी छीने थे। मण्डलकृत की पहचान माण्डलगढ़ से हो सकती है और माण्डू से भी। माण्डू शायद ठीक हो। यहीं से बढकर हम्मीर ने धाराधीश भोज पर आक्रमण किया था। नयचन्द्र के वर्णन के अनुसार हम्मीर ने उज्जयिनी मे महाकाल का पूजन कर मुड़ते समय चित्तौड़ और आबू से कर वसूल किया। चित्तौड़ का सम सामयिक राजा समर सिंह और आबू का प्रताप सिंह परमार था। वर्धनपुर बदनौर है और चंगा इसी नाम का मेरों का दुर्ग है। महाराष्ट्र, मरोठ, चम्पा, चाटसू और खंडिल्ल खंडेला है। कर्कराला तहनगढ़ के यादवों का दुर्ग था।

हम्मीर–महाकाव्य में एक ही कोटि यज्ञ का वर्णन किया है। हम्मीर के वि0स01345 के शिलालेख मे दो कोटि–यज्ञों का उल्लेख है। यज्ञ के साथ ही कवि ने अलाउद्दीन का प्रसंग भी रख दिया। किन्तु वास्तव मे उस समय दिल्ली के सिंहासन पर पहले कैकुवाद और बाद मे जलालुद्दीन खल्जी बैठा और इसी जलालुद्दीन के समय से ही रणथम्भौर पर खल्जी आक्रमण शुरू हुए। जिस खल्जी आक्रमण में भीमसिंह मारा गया वह वास्तव मे जलालुद्दीन खल्जी का आक्रमण था और जैसा हम ऊपर लिख चुके है यही 'सेनानी भीमसिंह' अमीर खुसरों के 'मिफूता' उलफूतृह का 'साहणी' था, जो हिन्दू नही अपितु लोहेका पहाड था।

मुहम्मद शाह और उसके भाइयों की रणथम्भौर मे शरण लेने की कथा नयचन्द्र ने नही दी है। कारण शायद यह हो कि उसके समय बच्चा–बच्चा इस बात से परिचित था। बात यह थी कि गुजरात और सौराष्ट्र की विजय के बाद जब उलुग खाँ दिल्ली वापस जा रहा था तो जालोर–राज्य के सिराणा गाँव के निकट उसने सैनिको को लूट का सब माल वापस करने के लिये विवश किया। इसी से क्रुद्ध होकर कमी जो (हम्मीर महाकाव्य के काम्बोज कलीन) मुहम्मद शाह, कामरू, यलचक्र और बर्क रात को उलुग खाँ के तम्बू में जा घुसे थे। किन्तु भाग्यवशात उलुग खाँ बच गया। अनेक स्थानो पर शरण लेने का प्रयत्न करने के बाद उन्होने हम्मीर के दरबार मे शरण प्राप्त की। इन्हे अपने दरबार मे रखना हम्मीर और अलाउद्दीन के संघर्ष का तात्कालिक कारण बना। वैसे भी इन उच्चाभिलाषी और स्वाभिमानी शासकों का संघर्ष अवश्य भावी था। बिना हम्मीर को पराजित किये कौन ऐसा शासक था ? जो आर्यावर्त का सम्राट होने का दावा कर सके।

हम्मीर की पराजय के अनेक कारण थे। नयचन्द्र सूरि ने उसकी राजनीतिक भूलो का तो उल्लेख किया ही है, साथ ही जनता को रुष्ठ करने वाली उसकी आर्थिक नीति का भी उसने अच्छा वर्णन किया है। धर्मसिंह ने राजा को उल्टे रास्ते डाल कर अपने अपमान का भयंकर बदला लिया। नयचन्द्र के कथनानुसार जैत्रसिंह ने राज्य त्याग करते समय हम्मीर से कहा था, प्रजा से इस तरह कर लेने चाहिये जिससे उन्हे पीड़ा न हो। क्या पुष्प चुनने वाली पुष्पो को इस तरह नही चुनती कि उन्हे बाधा न हो? सर्वस्व नाश होने पर भी मनुष्य कुल में विरोध उत्पन्न न करें । कुल के विरोध ने क्या दुर्योधन को नष्ट नहीं कर दिया । राज माता के समान प्रजा का हितकर है। नियोगी वर्ग सपत्नी के तुल्य है। माँ उसके हाँथ यदि सन्तान को सौंप दे तो उसकी कहाँ से वृद्धि और कहाँ से जीवन हो सकता है ? जिसका पहले

अपकार किया हों उसे कभी प्रधान पद न दो, ऐसा व्यक्ति युगान्तर में भी विराध भाव को नही छोडता।

यह उपदेश जैत्र सिंह ने दिया हो या न दिया हो, घटनायें तो वास्तव मे इसी रूप मे घटित हुई। हम्मीर ने अपकृत धर्मसिंह को फिर प्रधान पद दिया। अपने ही कुल के खड्गधर भोज से उसने विरोध किया। नियोगी वर्ग ने उसके समय में काफी मनमानी की। प्रजा करो के बोझ से पीडित हुई। हम्मीर विषयक अन्य ग्रन्थों को देखने से भी इसी धारणा की परिपुष्टि होती है कि हम्मीर के अन्तिम समय प्रजा बहुत–कुछ उससे विरक्त हो चुकी थी।

दसवे सर्ग मे वर्णित खज्जी सेना की हार और मुगल भाइयों द्वारा जगरा की लूट का वर्णन मुसलमानी तवारीखों मे नही मिलता। किन्तु इसे असत्य या कल्पित मानने के लिये कोई सबल कारण नही दिया सकता।

ग्यारहवे सर्ग की कथा प्रायशः हिन्दू और अहिन्दू लेखकों द्वारा समर्थित है। इमामी ने लिखा है, कि हम्मीर ने उलुग खाँ और नुसरत खाँ के दूत से कहा था जो मेरी शरण में आचुका है; मैं उसे किसी प्रकार हानि नही पंहुचा सकता, चाहे, प्रत्येक दिशा से इस किले पर अधिकार जमाने के लिये तुर्क एकत्रित क्यों न हो जायें? हम्मीर–महाकाव्य का सा विशद गढरोध का वर्णन अन्यत्र प्राप्य नही है। किन्तु इसका एक–एक शब्द मुसलमानी तवारीखो और हिन्दू काव्यों के वर्णन से समर्थित है। गढ के रोध में संलग्न अपने अनुज नुसरतखाँ की मृत्यु के बाद मुसलमानी सैन्य का हौंसला बढ़ाने के लिये यह आवश्यक हुआ कि स्वयं अलाउद्दीन यह कार्य अपने हाँथ में लें।

बारहवे सर्ग में विवेच्य वस्तु कुछ नही हैं। युद्ध में मारे हुये यवन योद्धओ की संख्या को 85000 बताना अत्युक्ति हैं।

तेरहवें सर्ग में नर्तकी धारादेवी के मरण की कथा हैं। यह हम्मीरायण आदि काव्यों में भी प्राप्य है। इस कथा की वास्तविकता के बारे में कोई निश्चित मत देना कठिन हैं। प्रायः ऐसी ही कथा कान्हडदे प्रबन्धन में भी हैं।

जिस वीरता से किले वालों ने मुसलमानी हमलों का उत्तर दिया उसका वर्णन हम्मीर महाकाव्य के अतिरिक्त अनेक अन्य काव्य और मुसलमानी तवारीखो में भी प्राप्त हैं। फुतूहुस्सलातीन से भी हमे ज्ञात है कि मुसलमानी सैनिकों ने चमड़े और कपड़े के थैले बनाकर खाई को पाटने का प्रयत्न किया था। तारीखे फरिश्ता में भी ऐसा ही वर्णन हैं। और

राजस्थानी कवि भाण्डउ ने तो परिखा को भरनें का बडा मनोरंजक दृश्य उपस्थित किया हैं । जिसे स्थानाभाव के कारण या विस्तार भय के कारण यहाँ नही दिया जा रहा हैं । अमीर खुसरो के कथनानुसार मुसलमानी सेना रजब से जीकाद (मार्च से जुलाई) तक किले को घेरे रही है। किले से बाणो की बर्षा होने के कारण पक्षी भी न उड सकते थे । इस कारण शाही बाज भी वहाँ तक न पहुँच सकते थे ।

अन्ततः अलाउद्दीन सफल हुआ। इस के दो कारण थे, दुर्ग में अन्न की कमी रतिपालादि का विश्वासघात। नयचन्द्रसूरि ने केवल दूसरे कारण पर बल दिया है। किन्तु हिन्दू और अहिन्दू सभी लेखकों के प्राप्य अवतरणों की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि –

1. घेरे से दुर्ग की स्थिति विषम हो चली थी, तो भी हम्मीर ने लगातार युद्ध किया और मुसलमानों को गरगचों तथा पाशेबों के प्रयोग से गढ़ न लेने दिया।
2. दुर्ग में दुर्भिक्ष की स्थिति वास्तव में उत्पन्न हो गई थी। किन्तु बर्नी आदि के कथनानुसार मुस्लिम सेना घेरे से तंग आ चुकी थी। अलाउद्दीन को आन्तरिक स्थिति का पता न चलता तो दुर्गस्थ लोगों को आशा थी क़ि सुल्तान घेरा उठा लेगा।
3. इस स्थिति में सुल्तान ने कूटनीति का प्रयोग किया। उसने रतिपाल, रणमल्ल आदि को फोड़ लिया। उन्ही से दुर्ग की आन्तरिक स्थिति का उसे ज्ञान हुआ।
4. दुर्ग का पतन 10 जुलाई, सन् 1301 के दिन हुआ।

चतुर्दश सर्ग में वर्णित घटनाये भी तथ्यमयी है। इस अन्तिम युद्ध मे केवल नौ व्यक्ति हम्मीर के साथ थे। तारीखे फरिश्ता और तबकाते–अकबरी में मुहम्मद शाह के वीरोचित उत्तर का उल्लेख है। अलाउद्दीन ने क्रुद्ध होकर उसे हाथी से कुचलवा दिया परन्तु अच्छी तरह दफनाया।

स्वामी भक्ति की वह कद्र करता था। रणमल, रतिपाल और उनके साथियों को सुल्तान ने मरवा दिया । फरिस्ता के शब्दों में अलाउद्दीन का विचार था कि जो लोग अपने चिरंतन स्वामी को धोखा देते है, वे किसी दूसरे के नही हो सकते है। जाजा का चित्र भी जिन ओजस्वी शव्दों में नयचन्द्र सूरि ने प्रस्तुत किया है वह उनके योग्य था। हम्मीर की तरह जाजा भी जनमानस में अमर है।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध होता है कि भारतीय ऐतिहासिको में हम नयचन्द्र सूरि को अच्छा स्थान दे सकते है । पहले दो सर्गो में वर्णित घटनाओं में अवश्य अनेक

ऐतिहासिक त्रुटियां है इसका कारण यह है कि कवि कई सदियों के बाद हुआ और उसे ऐसे साधन उपलब्ध न थे जिनसे ऐतिह्य से प्राप्त (देखे 1,13) सामाग्री का वह परीक्षण कर सके। किन्तु रणथम्भैार के लिए तो उसने सम्वत्सर, मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्रादि भी दिये है। घटनाओं में कारण और कार्य के सम्बन्ध को प्रदर्शित कर तो कवि ने ऐतिहासिकों के ह्रदय में और भी अधिक सम्मान का स्थान प्राप्त किया है। रणथम्भैार के दुर्ग का भंग उसके लिए मानवी घटना है। उसने उसे मानवी घटना के रूप में प्रदर्शित किया है। देवी– देवताओं और अमानुषी घटनाओं के लिये उसके वर्णन में स्थान नही है।

इस काव्य की रचना के लिये कवि ने दो कारण दिये है –

1. कवि जनोचित यह अभिलाषा कि सर्वत्र यह प्रसिद्ध हो कि उस समय कोई ऐसा कवि है जिसका काव्य प्राचीन महाकाव्यों से टक्कर ले सके।
2. राजन्य –पुपूषा

इन दो लक्ष्यों में कवि को असामान्य सफलता मिली है। कवि ने तत्कालीन समाज और उनके आदर्शों का भी ऐसा सजीव चित्र प्रस्तुत किया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। नयचन्द्र सूरि के कवित्व के लिये हम्मीर उपयक्ततम नायक था तो हम्मीर के लिए नयचन्द्र भी ऐसा ही उपयुक्ततम कवि था, जिसने अपनी कृति द्वारा हम्मीर को अमर कर दिया है। वह तो यह मानने के लिए ही तैयार नही है कि सामान्य जनों की तरह हम्मीर अपनी इह लीला का संवरण कर चुका है–

लोको मूढतया प्रजल्पतुतमां यच्चाहमानः प्रभुः
श्री– हम्मीर–नरेश्वरः स्वरगमाद् विश्वैकसाधरणः।
तत्वज्ञत्वमुपेत्य किंचन वयं ब्रूमस्तमाँ स क्षितौ
जीवन्नेव विलोक्यते प्रतिपदं तैस्तैर्निजैविक्रमैः। ह0म014 / 15

हम्मीर महाकाव्य में ऐतिह्य सामग्री

संस्कृत के इतिहास साहित्य में हम्मीर–महाकाव्य का स्थान बहुत ऊँचा है। प्रारंभिक भाग में कुछ अशुद्धियाँ अवश्य है, किन्तु ऐसा होना स्वाभाविक ही है। विश्वसनीय ऐतिह्य सामग्री के अभाव में यह असम्भव है कि कोई कवि या इतिहासकार अपने से अधिक पूर्ववर्ती इतिहास का सर्वथा समीचीन रूप से निर्माण कर सके।

हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज तृतीय के पूर्वजो की वंशावली इस प्रकार दी है।

सूर्य मण्डल से उत्पन्न .... चाहमान
|
दीक्षित वासुदेव
|
नरदेव
|
चन्द्रराज
|
चक्रीजयपाल
|
जयराज
|
सामन्त सिंह
|
गूयक
|
नन्दन
|
सांभर में शाकाम्भरी देवी को प्रकट करने वाला...................................... वप्रराज
|
शकराज को मारकर मुग्धपुर जीतने वाला.. हरिराज
|
अपने प्रयाण से कर्णाट, लाट, चोल, गुर्जरादि नृपों को त्रस्त करने वाला और शकपति हेतिम को मारकर चार

मस्त हाथी ग्रहण करने
वाला ....
सिंहराज
सिंहराज का भाई
भीम
मूलराज को हराकर गुर्जरदेश को
लूटने वाला ....
विग्रहराज
श्री गुंद देव
बल्लभराज
राम
युद्ध में शकाधिराजहेमजदीन को
मारने वाला......................
चामुण्डराज
सहाबदीन को हराकर पकड़ने वाला...
दुर्लभराज
कर्ण को युद्ध में मारने वाला..............
दुःशल
सहाबुदीन को युद्ध में मारने वाला......
विश्वल
पृथ्वीराज
आल्हण
पुष्कर को खुदाने वाला....................
आनल्लदेव
जगदेव
(इसने राज्य नही किया)
विश्वल
अजयपाल
श्री गंगदेव
सोमेश्वर–कर्पूर देवी
पृथ्वीराज

विझोली के शिलालेख (स0 1226) और पृथ्वीराज – विजय से तुलना करने से प्रतीत होता है कि वास्तविक वंशावली और घटनायें इससे कुछ भिन्न थी –

1. चन्द्रराज नरदेव का पुत्र नहीं, पौत्र था।
2. जयराज चन्द्रराज का पौत्र नही, पितामह था।
3. चन्द्रराज के पुत्र का नाम दुर्लभराज था, न कि जयपाल चक्री।
4. सामन्त सिंह नरदेव का पिता था।
5. गूवक प्रथम दुर्लभराज का पुत्र था, न कि सामन्त सिंह का गूवक के पौत्र का नाम भी गूवक था।
6. नन्दन वास्तव में गूवक द्वितीय का पुत्र चन्दन है। सम्भव है कि हम्मीर–महाकाव्य का शुद्ध पात्र चन्दन ही हो।
7. वप्पराज वप्पराज का दूसरा रूप है; किन्तु शाकम्भरी देवी को प्रकट करने वाला वासुदेव था, न कि वप्पराज।
8. हरिराज नाम का कोई राजा, वप्पयराज के ठीक बाद सांभर की गद्दी पर नहीं बैठा, किन्तु यह सम्भव है कि विध्य–नृपति हरिराज का ही नाम हो।
9. सिंहराज वप्पयराज का पुत्र था, न कि पौत्र शिलालेखों के आधार पर नहीं कहा जा सकता कि उसने हेतिम नाम के किस शकाधिराज का वध किया था।
10. सिंहराज का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विग्रहराज था, न कि उसका भ्रातृत्व भीम।
11. विग्रहराज (द्वितीय) ने गुर्जराधिराज मूलराज को केवल परास्त किया, उसे मारा नहीं।
12. गुन्ददेव या गोविन्दराज विग्रहराज (द्वितीय) के भाइ दुर्लभराज (द्वितीय) का पुत्र था।
13. वल्लभ के स्थान में वाक्पति (द्वितीय) होना चाहिये।
14. चामुण्डराज वीर्यराम का भाई था, न कि पुत्र। उसने शायद ही किसी शकाधिराज से युद्ध किया हो।
15. दुर्लभराज ने किसी सहाबदीन (शहाबुद्दीन) नाम के शासक को नहीं पकड़ा, प्रत्युत वह स्वयं म्लेच्छों से युद्ध करता हुआ मारा गया।
16. दुःशल ने कर्ण को न युद्ध में मारा और न परास्त ही किया; गुर्जराधिराज कर्ण को हराने वाला वास्तव में विग्रहराज तृतीय था।
17. आनल्लदेव, आनाक या अर्णोराज ने आनासागर खुदवाया था, पुष्कर नहीं।
18. अजयराज बीसल का पुत्र नहीं, पितामह था,।

हम्मीर के समय के आस–पास रचित प्रबन्धकोश की कई प्रतियों में प्राप्त चाहमान वंशावली हम्मीर–महाकाव्य की वंशीवली से अधिकांश में मिलती है। इससे स्पष्ट है कि नयचन्द्र के समय

हम्मीर महाकाव्य मे दिया हुआ पृथ्वीराज तृतीय का वर्णन कुछ विशेषता रखता है। उसके अनुसार सहाबदीन (शहावुददीन गोरी) के आक्रमणो से त्रस्त पश्चिमी राजाओं ने गोपलचन्द्र के पुत्र चन्द्रराज के नेत्रत्व मे पृथ्वीराज के द्वार पर जाकर रक्षा की प्रार्थना की । पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को पकड़ने की प्रतिज्ञा कर शकराज शहाबुद्दीन के देश पर आक्रमण किया। युद्ध में मूसलमानी सेना पराजित हुई और पृथ्वीराज ने द्वन्द युद्ध कर शहाबुद्दीन को पकड़ लिया । इसी प्रकार चाहमान सम्राट ने शहाबुद्दीन को सात बार परास्त और सात बार मुक्त किया । आठवी बार षर्परेश से बहुत बड़ी सेना प्राप्त कर शहाबुद्दीन ने अकस्मात दिल्ली पर अधिकार कर लिया। अपनी पुरानी विजयो के गर्व पर पृथ्वीराज बहुत थोड़ी सेना लेकर शकराज का सामना करने के लियें रवाना हुआ। शहाबुद्दीन ने चाहमान के अश्वपाल और बाजे वालो को अपनी ओर मिला लिया और प्रातः काल से कुछ पूर्व पृथ्वीराज के शिविर पर उसने आक्रमण किया। अश्वपाल ने पृथ्वीराज को नाटारम्भ नाम के घोड़े पर चढ़ा दिया। नाटारम्भ तो केवल नृत्य करना जानता था। युद्ध के बाजे बजते ही वह नाचने लगा। विवश होकर पृथ्वीराज घोडे से उतरा और युद्धकरता हुआ बंदी बना लिया गया। कुछ दिन बाद शहाबुद्दीन ने उसे एक किले में चिनवा दिया। गौड़ वंशीय उदयराज ने इसी बीच में दिल्ली पर घेरा डाला और एक महीने लगातार युद्धकर पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद लड़ाई में काम आया।

पृथ्वीराज का यह वर्णन इतिहास की दृष्टि से कहाँ तक तर्कसंगत है या ठीक है ? यह कहना कठिन है। चन्द्रराज सम्भवतः ऐतिहासिक व्यक्ति था,शायद वह कुरूक्षेत्र के निकटस्थ किसी प्रदेश का राजा रहा हो। पृथ्वीराज रासो में चन्द्रपुण्डीर नामक एक सामन्त का वर्णन है। क्या यह गोपाल चन्द्र का पुत्र चन्द्रराज हो सकताहै ? मुसलमान इतिहासकार केवल दो युद्धो का वर्णन करते है, सात का नही है। रासो आदि पुस्तकों में इक्कीस युद्धो तक का वर्णन है। अतः यह मानना ही शायद उचित होगा कि पृथ्वीराज और मुहम्मद गोरी का सामना केवल दो युद्धो मे ही हुआ, बाकी में दोनो तरफ के सामन्त लड़ते रहे। ये पारस्परिक सीमा–प्रांतीय छेड़छाड़ थी जिन्हे हिन्दुओ नें अत्यधिक और मुसलमानों ने अत्यल्प महत्व दिया है। अन्तिम युद्ध के वर्ण्न में नयचन्द्र की निम्न लिखित बातें सर्वथा ठीक है या प्रतीत होती है –

1. मुहम्मद गोरी ने अकस्मात् ही प्रातः काल से कुछ पूर्व चाहमान शिविर पर आक्रमण किया था।
2. पृथ्वीराज युद्धमें मारा नही गया, बन्दी हुआ[2]।
3. सम्भवतः मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज के कुछ अधिकारियोंको अपनी ओर मिला लिया था, किन्तु, केवल नाटारम्भ को पृथ्वीराज की पराजय का कारण मानना कवि कल्पना मात्र है। पृथ्वीराज की पराजय के कारण इससे कही अधिक गम्भीर थे।
4. पृथ्वीराज के भाई एवं उत्तराधिकारी हरिराज के विषय में हम्मीर महाकाव्य में दो बाते मिलती

है–

(1)उसने अपना समय गुर्जरेश्वर द्वारा प्रदत्त वेश्याओं के साथ आनन्द में बिताया ।

(2) शकेश्वर के हमला करने पर वह स्त्रियों सहित अग्नि में जलकर मर गया।

इतिहास की कसौटी पर कसने से दोनो बातें प्रायः ठीक उतरती है। यद्यपि पहली बात के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नही है, तथापि यह असंभव प्रतीत नही होती। पृथ्वीराज किसी हद तक विलासी था, उसका छोटा भाई उससे कुछ बढ़कर हो तो आश्चर्य क्या है? अजमेंर–दुर्ग के रक्षको की अग्नि में जलकर मरनें की कथा समसामयिक ग्रन्थ ताजुल मासिर मिलती है।[4]

हरिराज के बाद रणथम्भौर राज्य की कथा आरम्भ होती है। इसके लिए हम्मीर –महाकाव्य ही मुख्य ऐतिहासिक साधन है। हम्मीर के पूर्वज गोविन्द से लेकर हम्मीर के पिता जैत्रसिंह तक की कथा का विश्लेषण इस प्राकार किया जा सकता है।

सर्ग श्लोक 23–31

रणस्तम्भ पुर में पृथ्वीराज का पुत्र गोविन्द राज्य करता था। पृथ्वीराज ने उसे अजमेर से निकाल दिया था। हरिराज की मृत्यु के बाद मन्त्रियों ने उसका आश्रय लिया।

सर्ग श्लोक 32–41

गोविन्द के उत्तराधिकारी वाल्हण के दो पुत्र थे प्रह्लादन और वाग्भट् । वाल्हण ने प्रह्लादन को गद्दी पर बैठाया और वाग्भट को मंत्री का पद दिया।

सर्ग श्लोक 43–78

शेर का शिकार करते हुए प्रह्लादन बुरी तरह घायल हुआ। अपने को दुश्चिकित्स्य जान कर उसने अपने पुत्र वीरनारायण को अभिषिक्त किया और वाग्भट को उसका संरक्षक बनाया।

सर्ग श्लोक 79–106

वीरनारायण जवान होने पर आम्रपुर (आमेर) के कत्सवाह(कछवाह) की पुत्री से विवाह करने के लिए आमेर गया। शकराज जलालुद्दीन के आक्रमण करने पर वह रणथम्भौर वापिस चलाआया। जब जलालुद्दीन बल से रणथम्भौर न ले सका, तब उसने मैत्री का प्रस्ताव किया और वीरनारायण को मिलने के लिए दिल्ली बुलवाया। वाग्भट के विरोध करने पर भी, वक्षःस्थलपुर के राजा विग्रह से बदला लेने की इच्छा से वीरनारायण दिल्ली चला गया। शकेश ने उसका अच्छी तरह स्वागत किया किन्तु कुछ दिन बाद उसे विष देकर मार डाला। वाग्भट तिरस्कृत होकर मालवे चला गया था। इसलिए रणथम्भौर आसानी से मुसलमानों के हाथ आ गया था।

4. 107–130

मालवा के राजा ने शकेश की प्रेरणा से वाग्भट को मारने का प्रयत्न किया किन्तु वाग्भट ने मालुम होते ही,मालेश्वर को मार कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और शक राज्य पर षर्परों

को आक्रमण का समाचार सुनते ही रणथम्भौर को जा घेरा। भूख और प्यास से व्याकुल होकर लगभग तीन महीनो के बाद मुसलमान दुर्ग छोड़कर भाग गये। वाग्भट रणथम्भौर का स्वामी हुआ और उसने 12 वर्ष तक राज्य किया।

4. 131 —

वाग्भट के बाद उसका पुत्र जैत्रसिह गद्दी पर बैठा। हम्मीरदेव उसकी रानी हीरादेवी का पुत्र था। जैत्रसिह के पुत्र और थे जिनमें एक का नाम सुरत्राण और दूसरे का नाम वीरम था।

8. 36—131

कुमार हम्मीर देव को सर्वथा राज्य योग्य देखकर जैत्रसिह ने उसे अभिषिक्त करने का विचार किया। हम्मीर देव जैत्रसिह का ज्येष्ठ पुत्र न था, इसलिए उसने राज्य लेने से आना कानी की, किन्तु राजा के यह कहने पर कि यह भगवान विष्णु की आज्ञा है, उसने पिता की आज्ञा मानी और संवत् 1339 माघ शुक्ल पुर्णिमा रविवार के दिन वृश्चिक लग्न एवं पुष्य नक्षत्र में हम्मीर का राज्याभिषेक हुआ। रोग के कारणअपना देहावसान निकट जान कर जैत्रसिह ने हम्मीर को नीति पूर्ण शिक्षा दी और स्वयं चम्बल नदी पर स्थित पत्तन तीर्थ के लिए प्रस्थान किया। यहाँ जंबूपथ में सार्थवाही भगवान का मन्दिर था।[2] रास्ते में ही पल्लीनामक ग्राम में राजा का देहावसान हो गया। हम्मीरदेव को अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु वीजादित्यादि विद्वानों के समझाने पर उसने धैर्य धारण किया।

सुर्जन चरित्र के इसी प्रसंग को देखने से ज्ञात होता है कि तीर्थ का नाम पत्तन था, श्री आश्रम नही।

समसामयिक इतिहास ग्रन्थों और शिलालेखों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि हम्मीर महाकाव्य के उपरिलिखित वर्णन में सत्य की पर्याप्त मात्रा है। गोविन्द ने मुसलमानों की अधीनता स्वीकार कर वास्तव में रणथम्भौर में अनेक वर्षो तक राज्य किया। उसका पुत्र वाल्हण शमसुद्दीन अल्तमश के अधीन था। इसी सुल्तान ने सन् 1226 ई0 में रणथम्भौर पर अधिकार कर लिया। यही नयचन्द्र का शकधिराज 'जल्लालदीन है। बहुत सम्भव है कि सुलतान ने किला लेने में छल का प्रयोग किया हो। वीरनारायण का विरोधी वक्षःस्थलपुर का विग्रह कौन था ? यह बतलाना कठिन है।

वाग्भट ने जिस मालवेश का वध किया वह सम्भवतः देवपाल हो सकता है। संवत् 1292 के बाद उसका कोई लेख नहीं मिलता, किन्तु यह कहना कि वाग्भट ने उसके सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया अतिशयोक्ति पूर्ण है। मालवे पर परमार ही राज्य करते रहे यद्यपि उसके कुछ अंश आस—पास के राजाओं ने दबा लिये। वाग्भट के पुत्र जैत्रसिंह को मालवराज परमार जयसिंह से युद्ध करना पड़ा था।

रणथम्भौर विजय की कथा प्रायः सत्य है। नयचन्द्र ने षर्पर शब्द का प्रयोग अनेकशः मुगलों के लिये प्रयोग किया है। सं0 1290 के आस–पास मुगल–तुर्क, ख्वारिज्मी आदि भारत में अवश्य आ चुके थे, किन्तु इनमें शायद ही कोई रणम्थभौर तक पहुंचा हो। अतः इस दुर्ग की विजय का वास्तविक श्रेय स्वयं वाग्भट्ट को है। मुसलमान इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि बुरी तरह से घिर जाने के कारण रजिया के राज्य के आरम्भ में मुसलमानों को रणथम्भौर छोड़ना पड़ा।[1]

जैत्रसिंह की कथा में कोई ऐसी बात ही नहीं है जिसे अनैतिहासिक कहा जा सके। हम्मीरदेव के प्रति जैत्रसिंह की शिक्षा अवश्य ही कुछ कवि–कल्पना प्रसूत है।

हम्मीर महाकाव्य के अंतिम 'सर्गो में हम्मीरदेव की कथा है। इसका कितना भाग ऐतिहासिक है और कितना अनैतिहासिक, यह बतलाने के लिये यहाँ इन सर्गों का विषय–विश्लेषण किया जाता है –

सर्ग श्लोक– 9. 1–98

राज्यारोहण के कुछ समय बाद हम्मीरदेव ने चतुरंगसेनां सहित दिग्विजय के लिये प्रयाण किया। भीमरस नगर पहुँच कर उसने अर्जुन राजा को वशीभूत किया, इसके बाद मण्डलकृत (मण्डलगढ़) से कर लेकर वह धारा गया। वहाँ उसने परमारराज भोज को हराया और फिर उज्जयिनी होता हुआ वह चित्तौड़ पहुँचा। तदनंतर उसने अर्बुदा चल में निष्पक्षभाव से अनेक तीर्थो में अवगाहन किया और अनेक देवी– देवताओं की पूजा की। अभिमानी अर्बुदेश्वर ने उसे खूब धन दिया। फिर वर्धनपुर और चंगा को लूटता हुआ, वह पुष्कर पहुँचा। वहाँ स्नान कर वह शाकम्भरी को गया। उसने महाराष्ट्र, खंडिल्ल और चम्पा को लूटा और ककराल में त्रिभुवनाद्रि के अधिपति ने उसकी अधीनता स्वीकार की। इस प्रकार दिग्विजय कर वह वापिस आया और कुछ दिन वाद पुरोहित विश्वरूप के कहने पर उसने कोटि यज्ञ किया।

सर्ग श्लोक– 9 99–150

कोटि यज्ञ के बाद हम्मीर ने एक मास का मुनिव्रत स्वीकार किया। इसी समय अलाउददीन ने अपने भाई उल्लूखान (उलूगखाँ) को रणथम्भौर देश नष्ट–भ्रष्ट करने के लिये भेजा। उसने बनास नही के किनारे डेरा डाला और देश को लूटना आरम्भ किया। राजा मौन था। अतः प्रधान धर्मसिंह की सलाह से सेनापति भीमसिंह ने मुसलमानों पर आक्रमण किया। मुसलमान्नो को हराकर भीमसिंह वापस लौटा। उलूगखाँ ने छिपकर उसका पीछा किया। धर्मसिंह को यह पता न था। अतः भीमसिंह को अकेला छोड और लूट का सारा सामान लेकर वह रणथम्भौर चला गया। घाटी में घुसते ही समय भीमसिंह ने खुशी के मारे मुसलमानों से छीने हुये बाजे बजवा दिये। मुसलमान इसे अपनी जय का संकेत समझकर एकत्र हो गये और भीमसिंह युद्ध मे काम आया। इसके बाद उलूगखाँ दिल्ली वापिस चला गया।

सर्ग श्लोक– 151–188 धर्मसिंह भीमसिंह को पीछे छोड़कर आगे बढ़ गया था। इससे अप्रसन्न होकर "तू हिजड़ा है" ऐसा कहकर राजा ने उसे वास्तव मे हिजड़ा करवा दिया और उसका पद अपने दासी जात भाई खड्गग्राही भोज को दे दिया, किन्तु भोज अच्छा अर्थ मंत्री न था। वह राजा के धन और घोड़ो की मांग को न पूर्ण कर सका। इसलिये धर्मसिंह की शिष्या नर्तकी धारादेवी की सिफारिश से धर्मसिंह फिर राजमंत्री बना दिया गया। उसने प्रजा पर अनेक कर लगाकर कोश भर दिया, पर प्रजा इससे असन्तुष्ट हुई। सिखा –बुझाकर उसने राजा को भोज के विरुद्ध भी कर दिया राजा ने उसका प्रायः सबधन जब्त कर लिया। अन्त में राज–तिरस्कार से दुःखी होकर उसने काशीयात्रा के बहाने अपने भाई पीथसिह सहित रणथम्भौर छोंड दिया। राजा ने प्रसन्नता पूर्वक दण्डनायक के पद पर रतिपाल को अभिषिक्त किया ।

सर्ग श्लोक– 10. 1–88

तिरस्कृत भोज सिरोह होता हुआ दिल्ली पहुँचा। अलाउद्दीन ने उसका अच्छी तरह स्वागत किया और जगरा नाम के स्थान की जागीर दी। भोज की सलाह से फसल कटने से पूर्व ही उलूग खाँ बड़ी सेना सहित भेजा गया। मुसलमान सैन्य हिन्टूवाट पहुँच चुका था चारो ओर अंधकार ही अंधकार था। उस समय वीरम, जाजदेव, रतिपाल, रणमल्ल, महिमासाहि (मुहम्मद शाह) और उसके भाइयो ने मुसलमान–शिविर पर आक्रमण किया। मुसलमान हारकर भाग गये, कुछ समय बाद मुहम्मद शाह और उसके भाइयों ने जगरा पर छापा मारा और भोज के भाई और कुटुम्व को कैद कर रणथम्भौर ले आये। इन बातों से क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन ने शीघ्र ही हम्मीर को नष्ट करने की प्रतिज्ञा की।

सर्ग श्लोक– 11–103

मुसलमान सम्राट ने चारो तरफ से फौजे इकठ्ठी की और उन्हे उल्लूखाँ (उलूग खाँ) और निसुरतखाँ (नसरत खाँ) की अध्यक्षता मे हम्मीर को जीतने के लिये भेजी।घाटियों में प्रवेश करना आसान न था। उलूग खाँ को अपना पहला अनुभव याद था, इसलिये उसने मोल्हण को संधि के बहाने हम्मीर के पास भेजा, हम्मीर के सैनिको ने भी यह सोचकर उसकी उपेक्षा की कि घाटी में घुसने पर यह सुख साध्य होगा। मुसलमान सेनापतियों ने घाटियाँ पार कर ली और जैत्रसर आदि पर अपने डेरे डाले। मोल्हण ने हम्मीर के सामने ये शर्ते पेश की– "हे हम्मीर ! यदि तुम्हे राज्य करने की इच्छा हो तो लाख मोहर, चार हाँथी, तीन घोड़े और अपनी बेटी देकर हमारी आज्ञा स्वीकार करो या चाहो तो केवल मेरी आज्ञा भंग करने वाले चार मुगलो को मुझे सौप सकते हो। हम्मीर ने इन शर्तो को अत्यन्त तिरस्कार पूर्ण उत्तर दिया और किले की रक्षा की तैयारी की। मुसलमान तीन महीने तक घेरा डाले युद्ध करते रहे । एक दिन एक गोले का टुकडा चटककर नसरत खाँ के मस्तक पर लगा और वह मर गया उलूग खाँ नसरत खाँ का मृत शरीर दिल्ली

भिजवाया और साथ ही अपनी स्थिति भी कहला भेजी।क्रोध और शोक से झल्ला कर अलाउद्दीन स्वयं हम्मीर से लड़ने के लिये आया।

सर्ग श्लोक– 12. 1–6

अलाउद्दीन को आया हुआ सुनकर हम्मीर ने किले पर सूप बंधवा दिये और अलाउद्दीन के पूंछने पर उसने कहला दिया कि भरी गाड़ी में सूप का भार कुछ विशेष नही होता। तुम्हारा आकर सेना में मिलना भी वैसा ही है। अलाउद्दीन ने प्रसन्न होकर – हम्मीर से जो इच्छा आये माँगने के लिये कहा किन्तु वीर हम्मीर ने केवल दो दिन के लिये युद्ध ही माँगा।

सर्ग श्लोक– 12. 7–59

दूसरे दिन शाम तक दोनो सेनाओं में अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ।

सर्ग श्लोक–12. 60–88

प्रातःकाल फिर युद्ध आरम्भ हुआ और इस समर में 85000 मुसलमान योद्धा काम आये। इसके बाद दोनो पक्षो ने कुछ दिनो तक युद्ध बन्द किया।

सर्ग श्लोक– 13. 1–38

एक दिन हम्मीर ने नाच और गान का प्रबन्ध किया उसमें सभी सामन्तादि सम्मिलित हुए। धारा देवी नाचने लगी। उसकी तिरस्कार पूर्ण चेष्टाओं से क्रुद्ध होकर अलाउद्दीन ने अपने आदमियों को उस पर निशाना लगाने की आज्ञा दी और उड्डान सिंह नाम के एक धनुर्धर ने अपने बाण से उसे किले की दीवार से उपत्यका मे गिरा दिया। महिमासाहि (मुहम्मद शाह) ने अलउद्दीन को बाण का निशाना बनाकर इसका बदला लेना चाहा किन्तु हम्मीर ने "यदि तुम इसे मार दोगे तो मै किससे लडूँगा" ऐसा कहकर उसे रोक दिया। उड्डान सिंह को मारकर ही मुहम्मद शाह को सन्तोष करना पड़ा । इस जबरदस्त निशानेबाजी से डरकर मुसलमान तालाब की दूसरी ओर अपना शिविर ले गये।

सर्ग श्लोक– 13. 39–68

इसके बाद मुसलमानो ने सुरंग लगाई और खांई को पूलो से, मिट्टी से और पत्थरो से भरना शुरू किया । जब ये दोनो काम पूरे हो गये तो मुसलमानो ने फिर युद्ध के लिये तैयारी की। हम्मीर ने यह सुनते ही खाँई को अग्नि के गोलो से जला डाला और सुरंग में गर्म लाख और तेल फेकवाया। मुसलमान योद्धा बुरी तरह से जल गये। शकाधीश ने जिन शको से सुरंग खुदवायी थी, उन्ही के कलेवरों से हम्मीर ने उसे भर दिया। अलाद्दीन के अनेक प्रयत्न विफल हुए । ग्रीष्म ऋतु बीत गई और वर्षा आ गई। यथा तथा संधि करने की इच्छा से अलाउद्दीन ने हम्मीर के दण्डनायक रतिपाल को बुला भेजा और हम्मीर ने कौतुकवश उसे जाने की आज्ञा प्रदान की।

सर्ग श्लोक– 13. 69–89

अलाउद्दीन ने मान और दान दोनो से ही रतिपाल को वशीभूत किया । सभासदो में से अपने भाई के शिवाय सब को दूर कर सुल्तान ने रतिपाल के सामने पल्ला पसार कर केवल जय की याचना की । अन्तःपुर में ले जाकर उसने रतिपाल को भोजन कराया और अपनी बहिन के हाँथ से मदिरा पिलाई । इस आशा में कि शकेश जय के बाद अपने वचनानुसार उसे किला दे देगा, रतिपाल हम्मीर के पास पहुँचा और उसे झूठ–झूठ कहा हे देव ! शकेश ने कहा है– मूर्ख हम्मीर मुझे अपनी पुत्री नही देता है । यदि मै उसकी रानियों को भी न लूं तो मुझे उलाउद्दीन न समझना। रणमल्ल हम्मीर का अच्छा योद्धा था। वह इस बात से नाराज था कि शकेश से संधि की बात हो रही है। हम्मीर को रणमल्ल से लड़ाने कि लिए रतिपाल ने कहा, ''आज रणमल्ल किसी कारण से अप्रशन्न हो गया है । आप पाँच–सात आदमियों सहित उसे मनावें''।

सर्ग श्लोक– 13. 90–104

रतिपाल हम्मीरदेव के भाई वीरम के पास से होकर जब निकला तब शराव की दुर्गन्ध से वीरम समझ गया कि दुष्ट रतिपाल शुत्र से मिल गया है। हम्मीर को भी संशय हुआ किन्तु उसकी इच्छा न हुई कि रतिपाल के वध के कारण उसे अपयश का भागी बनना पडे।

सर्ग श्लोक– 13. 105–129

इधर जब रानियो को मालुम हुआ कि शकेश केवल पुत्री ही माँगता है। तो उन्होने शिखा–बुझाकर देवल्लदेवी को हम्मीर के पास भेजा। उसने पिता से प्रार्थना की कि वह उसे शकेश को देकर कुल की रक्षा करे। अपने कुल और धर्म के विरुद्ध इस बात का कोध एवं ओज पूर्ण शब्दों मे हम्मीर ने तिरस्कार किया ।

सर्ग श्लोक– 13. 130–134

उधर रतिपाल ने रणमल्ल को कहा ''भाई! भागने की तैयारी करो। हम्मीर तुम्हे पकड़ने के लिये आ रहा है। जब रणमल्ल नेयह बात न मानी तब उसने कहा, ''यदि सायंकाल पाँच–सात आदमियो सहित हम्मीर इधर आये तो मेरा विश्वास करना।'' राजा को उसी तरह आता हुआ देखकर रणमल्ल डर गया और शुत्र से जा मिला।

सर्ग श्लोक– 13. 135–168

रतिपाल भी दुर्ग से उतर कर शत्रु से जा मिला। इन बातों से खिन्न होकर राजा ने जाहड़ से पूछा, "कोश में अन्न कितना हैं? यदि मैं कहूँ कि अन्न नही हैं, तो अवश्य सन्धि हो जायेगी" यह सोचकर जाहड़ ने उत्तर दिया अन्न है ही नही। हम्मीर खिन्न होने लगा था। चारों तरफ धोखे बाजी से उसे मुगल (मुहम्मद शाह आदि) भाइयों पर संदेह होने लगा, इसलिये दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही उसने मुहम्मद शाह से कहा, "तुम विदेशी हो ,अपत्ति के समय तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नही

है। तुम जहाँ जानो चाहो नैं तुम्हे वही पहुँचा दूँ। "इन वचनों को से मर्मविद्ध होकर मुहम्मद शाह घर पहुँचा और उसने अपने सब कुटुम्ब का कत्ल कर दिया। फिर आकर वह राजा से कहने लगा, "तुम्हारी भाभी जाने से पूर्व तुम्हारे दर्शन करना चाहती है, जिसकी कृपा से हम इतने दिन आनन्द से रहे, उसके दर्शन किये बिना जाने से उसे सदैव दुःख होगा। राजा मुहम्मद शाह के घर पहुँचा। चारों तरफ खून की नदी में स्त्रियों और बच्चों के सिर तैरते हुये देखकर वह मूर्छित हो गया और पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसे अत्यन्त पश्चाताप हुआ, पर अब हो ही क्या सकता था?

सर्ग श्लोक– 13. 169–189 वहाँ से वापिस आकर हम्मीर ने कोश को अन्न से परिपूर्ण देखा। उसे जाहड़ की बुद्धि पर अत्यन्त क्रोध आया और खजाने को पद्मसर तालाब में डलवाने के बाद वीरम ने जाहड़ को प्राण–दण्ड दिया। स्थिति गम्भीर थी। इसलिये नगरवासियो के लिये मुक्ति द्वार खोल दिया गया। रंगदेवी आदि रानियों ने और हम्मीर की परमप्रिय पुत्री देवल्लदेवी ने अग्नि–प्रवेश किया।

सर्ग श्लोक– 13. 190–225

वीरम ने जनापवाद के भय से राज्य ग्रहण नही किया। इसलिये राजा ने जाजदेव को गद्दी दी और नौ वीरों सहित युद्ध में प्रवेश किया। हम्मीर आ गया, यह सुनकर शकराज भी युद्ध के लिये आ पहुँचा। राजा से पूर्व वीरम ने स्वर्ग को प्रस्थान किया। मुहम्मद शाह के मूर्च्छित होने पर स्वयं हम्मीर ने वीरता पूर्वक युद्ध किया और अन्त मे शत्रुओं के बाणों से जर्जर होकर उसने स्वयं अपने हाँथो अपना प्राणांत किया। उसे यह सह्य न था कि वह जीवित ही शत्रु के हाथ आये।

सर्ग श्लोक– 14. 1–21

राजा की मृत्यु के बाद जाज ने दो दिन तक और युद्ध किया। मुहम्मद शाह अलाउद्दीन की सभा मे (सिर झुका कर नही, वल्कि) पदतल दिखाता हुआ घुसा। जब अलाउद्दीन ने पूछा "यदि तुम जीवित रहो तो तुम मेरे साथ कैसा व्यवहार करोगे"? उसने उत्तर दिया, ''वही जो तुमने हम्मीर से किया है।'' रतिपाल ने संग्राम–भूमि में अपने पदतल से हम्मीर का शिर दिखाया। पूंछने पर उसने हम्मीर की अनेक कृपायें भी स्वीकार की। अलाउद्दीन ने उसकी खाल निकलवा कर उचित ही किया, अन्यथा कौन स्वामी से द्रोह न करेगा?

हम्मीर की जीवनी के लिये हमें अनेक अन्य साधन भी प्राप्त है। हम्मीर महाकाव्य की कथा उनसे कही मिलान खाती है और कही–कही नही। कौन किस स्थान पर ठीक है, हम इस बात का यहाँ विचार करेगे।

नयचन्द्र ने हम्मीर की दिग्विजय का काफी अच्छा वर्णन किया है। किन्तु इसकी पूर्ण सत्यता में हमे सन्देह है। दिग्विजय के अन्त मे एक कोटि–यज्ञ किया गया था।

इसका जिक्र हम्मीर के पौराणिक एवं मंत्री बैजादित्य द्वारा रचित सं0 1345 के एक शिला लेख मे

भी है। उसमें लिखा है कि हम्मीर ने दो कोटि–होम किये, मालवा के राजा अर्जुन को युद्ध मे हराया, अनेक हाँथी छीने और रणथम्भौर मे पुष्पक नाम का महल बनाया शिलालेख मे कोटि–होमों का जिक्र होने से यह निश्चित है कि यह हम्मीर की तथाकथित दिग्विजय के बाद लिखा गया था; किन्तु इसमें केवल मालवा के राजा अर्जुन पर विजय का वर्णन है, किसी दिग्विजय का नहीं। अतः क्या यह मानना उचित नही होगा कि या तो हम्मीर ने कोई दिग्विजय ही नही या संवत 1345 के बाद मालव–विजय के अतिरिक्त समय–समय पर अन्य कुछ विजय प्राप्त की जिन्हे कवि ने अपनी कल्पना से एक स्थान पर ग्रथित कर दिया है; किन्तु इस बात का ध्यान देते हुए कि न केवल हम्मीर–महाकाव्य का दिग्विजयान्त कोटि होम सं0 1345 से पूर्व हो चुका था, अपितु नयचन्द्र ने मालव–राज के अतिरिक्त किसी राजा का नाम ही नही दिया है, हमे दूसरे विकल्प की संभावना अधिक युक्ति–युक्त प्रतीत नही होती।

नयचन्द्र ने अलाउद्दीन के अनेक आक्रमणों का वर्णन किया है। इनमे पहले दो आक्रमणों का वर्णन मुसलमान इतिहासों मे नही है; किन्तु उनका कथा से इतना अधिक सम्बन्ध है और उनका सब वर्णन इतना व्यवरेवार है कि उन्हे असत्य मानना सम्भवतः केवल धृष्टता–मात्र या हिन्दू इतिहासकारों के प्रति व्यर्थ अश्रद्धा का सूचक होगा। हाँ यह बहुत सम्भव है कि भीमसिंह की मृत्यु अकस्मात् या केवल मुसलमानी बाजे बजाने से न हुई हो। मुसलमानी सेना पतियों की अनेक बार यह नीति रही है कि वे शत्रु के आक्रमण करते ही या तो पीछे हटते है या बिखर जाते है और फिर शत्रु के असावधान होने पर उस पर आक्रमण करते है। तरावड़ी के युद्ध मे मुहम्मद गोरी ने इस नीति का अनुसरण किया था। बहुत सम्भव है कि उलूग खॉ भी इसी नीति द्वारा भीमसिंह का वध करने मे समर्थ हुआ हो। दूसरा खिल्जी आक्रमण मुसलमानों के लिये कोई विशेष कीर्ति की चीज नही थी। सम्भव है, इसी कारण मुसलमान इतिहासकारों ने उसका जिक्र न किया हो अमीर खुसरो ने केवल एक आक्रमण चार या उससे भी अधिक हुये थे।

हम्मीर के अंतिम दिनों में प्रजा किस तरह दुःखी हुई और किस प्रकार क्रोध और लोभ प्रतिहिंसा की मूर्ति धर्मसिंह के वशीभूत होकर हम्मीर ने अनेक अनुचित कार्य किये इन सबके ज्ञान का एक मात्र साधन तो केवल हम्मीर महाकाव्य ही है इसके अभाव में हम्मीर के पतन के वास्तविक एवं आभ्यन्तरिक पतन के कारणों का संभवतः कभी पता न चलता। खड्गधारी भोज की सत्यता या असत्यता जाँचने के लिये हमारे पास कोई बाह्य साधन नहीं है किन्तु उसमें कही असत्यता प्रतीत नहीं होती है।

अलाउद्दीन के तीसरे और चौथे आक्रमणों के वर्णन का मिलान मुसलमान इतिहासकारों के वर्णन से किया जा सकता है। दोनों में प्रायः एक सा ही वर्णन है। नसरत खाँ की मृत्यु और मुसलमानों की अस्थायी पराजय का जिक्र फरिश्ता, बर्नी आदि के पृष्ठों में भी उतना ही स्पष्ट है।

जितना हम्मीर महाकाव्य में। चौहानों ने सुरंगों में मुसलमानों को किस प्रकार जला दिया यह खजाइन उलफुतूह में पढ़ा जा सकता है।

धारादेवी की कथा के बारे में कुछ नहीं का जा सकता, यद्यपि यह असम्भव प्रतीत नहीं होती है। रतिपाल के षड़यंत्र का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता, किन्तु यह असंदिग्ध रूप में कहा जा सकता है कि ऐसा षड़यंत्र अवश्य हुआ था। फरिश्ता को इस बात का ज्ञान था। उसने लिखा है कि "राजा का मंत्री रणमल एक मजबूत दल सहित सुल्तान से जा मिला था। सुल्तान ने यह कहते हुए "जिन आदमियों ने अपने सच्चे स्वामी को धोखादिया है वे किसी के लिये सच्चे नहीं हो सकते"।

रणमल और उसके आदमियों को मरवा डाले। रतिपाल इन्ही साथियों के अन्तर्गत था। सुल्तान उसे अंतःपुर में ले गया, उसके सामने अंचल पसार कर याचना की आदि कथाएं सर्वथा कल्पित प्रतीत होती है। यदि ऐसा हुआ भी हो, तो भी नयचन्द्र के पास कौन सा साधन था जिससे वह यह मालूम कर सके ?

जौहर की कथा भी सर्वथा सत्य है। मुसलमान सिपाहियों तक ने चिताग्नि की ज्वालाओं को दूर से देखा था। अंतिम युद्ध में नयचन्द्र के कथनानुसार हम्मीर के साथ जो साथी थे उनके सम्बन्ध में अमीर खुसरों ने केवल "एक या दो काफिर लिखा है"।

मुहम्मदशाह की वीर मृत्यु का वर्णननयचन्द्र ने जानकर छोड़ दिया है। केवल उत्तर का ही वर्णन किया है। हिन्दू और मुसलमान केवल सच्ची वीरता का ही सम्मान करते है और उसको नही भुलाते , तब काते अकबरी के निम्नलिखित उद्वरण से सुस्पष्ट एवं प्रतीत हो सकेगा

"मुहम्मदशाह घायल पडा था, सुल्तान की दृष्टि उस पर पडी और उसने दयार्द्र होकर कहा, "यदि मै तुम्हे इस खतरे से बचा लूँ तो तुम क्या करोगे और उसके बाद तुम्हारा व्यवहार कैसा होगा 'उसने उत्तर दिया, यदि मैं घावों से ठीक हो जाऊ तो, मैं तुम्हें मारकर हम्मीर देव के पुत्र को सिंहासन पर बैठाऊँगा ।

जो स्वभाव से ही दुष्ट होता है वह किसी के लिये सच्चा नही होता । जो कुजात है वह सदा बुरा ही करता है। "

सुल्तान उसे मस्त हाँथी के नीचे डलवाकर कुचलवा दिया। कुछ समय बाद जब उसे याद आया कि "मुहम्मद शाह अपने शरणदाता के प्रति कितना सच्चा व वफादार निकला तो उसने मुहम्मद को विधिवत दफनाने की आज्ञा दी"।

हिन्दू पक्ष से मुहम्मद शाह की स्मृति को सजीव रखकर नयचन्द्र ने यह महान कार्य किया। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार दुर्ग का पतन श्रावण कृष्णा 6 रविवार सन् 1358 को हुंआ।अमीर खुसरो की की तिथि इसके दो दिन पूर्व है। यह भेद नगण्य है। चाहमान जाज ने हम्मीर के मृत्यु के बाद दो दिन तक युद्ध किया। नयचन्द्र ने सम्भवतःउसकी मृत्यु का पतन माना है।

रम्भामञ्जरी नाटिका के लेखक का नाम भी नयचन्द्र है ये भी अच्छे कवि होने का दावा करते है, किन्तु न उनकी रचना में गाम्भीर्य है और न ऐतिहासिक तथ्य। सम्भवतः वे जैन भी न थे, उन्होने रम्भामञ्जरी का आरम्भ किया बाराहावतार,सरस्वती कटाक्षादि की स्तुति से किया है। शब्दाडम्बर का भी इन्होने कुछ अधिक प्रयोग किया है इसलिये उन्हें हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयनचन्द्र से भिन्न मानना ही संम्भवतः उचित होगा।

निष्कर्ष– अतः उपर्युक्त तथ्यों के अवलोकन से यह पूर्ण सुस्पष्ट है कि हम्मीर महाकाव्य ऐतिह्य सामाग्री की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इसकी अधिकांश घटनायें तिथियां एवं पात्र मुसलमान इतिहासकारों की घटनाओं तिथियों एवं पात्रों से मिलान खाते है। इनकी घटनाये एवं वर्णन सत्य है । कवि कल्पित मात्र नही है। हम्मीर एवं उसके वंशावली से संबंधित इतिहास पर आाधरित केवल हम्मीर महाकाव्य ही प्रभाविक ग्रन्थ है। ऐसा वर्णन एवं सत्य ऐतिहासिक तथ्य अन्यत्र दुर्लभ है। सच्चे एवं वफादार पात्रों के चरित्र वर्णन को इस ग्रन्थ में प्रधानता दी गयी है। चाहे वह पात्र हिन्दू हो या मुसलमान् । क्योकिं स्वामी से द्रोह करने पर रतिपाल एवं रणमल को अन्त में अलाउदीन ही मरवा देता हैं। दूसरी हम्मीर के प्रति सच्ची वफादारी करने वाले महिमाशाह (मुहम्मद शाह) को मृत्यु के उपरान्त उसका अच्छे ढंग से दाह संस्कार करता है।

अतः यह एक ऐतिहासिक दृष्टि से उत्कृष्ट महाकाव्य है।

हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल

कवि नयचन्द्र हम्मीर के समसामयिक न थे, किन्तु अपने दादा गुरू जैत्रसिंह सूरि के ई0 सन् 1365 में रचित 'कुमारपालचरित' का प्रथम आदर्श नयचन्द्र ने ही लिखा था। हम्मीर की मृत्यु सन् 1301 ई0 में हुई। अतः नयचन्द्र और हम्मीर के समय में बहुत अधिक अन्तर नहीं है। सन् 1365 में नयचन्द्र 24 साल के रहे हों तो उनके जन्म और हम्मीर के देहान्त का अन्तर केवल 40 वर्ष का रह जाता है। दीक्षा तो नयचन्द्र ने जयसिंह सूरि के शिष्य प्रसन्नचन्द्र से प्राप्त की थी किन्तु काव्य शिक्षा गुरु उनके जयसिंह सूरि ही थे। इससे भी नयचन्द्र का समय लगभग सन् 1340 से 1420 माना जा सकता है। "हम्मीर महाकव्य की रचना ग्वालियर के तंवर नरेश बीरम के समय हुई; जिसके राज्य का अन्तिम ज्ञात सम्वत् (सन् 1422) है। संवत 1481 में उसका पौत्र डूंगरेंन्द्र सिंहासनासीन हो चुका था। इससे प्रतीत होता है कि वीरम ने दीर्घकाल तक राज्य किया और सन् 1422 में वह पर्याप्त वृद्ध हो चुका था। उसका राज्य काल हम सन् 1382 से 1422 ई0 तक रखे तो हम काव्य का रचनाकाल सन् 1390 के आस पास रख सकते हैं। उस समय तक कवि की काव्य शक्ति पूर्णतया प्रस्फुटित हो चुकी होगी। उनकी स्मृति में प्रायः वे सब हम्मीर विषयक बातें भी रही होंगी; जिन्हें वे बाल्यकाल से सुन रहे थे। वीरम नरेश के सभासदों की उक्ति काव्य प्रणयन के लिये निमित्त मात्र थी। अन्यथा भी सम्भवतः नयचन्द्र इस काव्य का प्रणयन करते। "रम्भामञ्जरी" नाटिका से स्पष्ट है कि कवि को ऐतिहासिक विषयों से कुछ प्रेम था। इसलिये 'दलपुंगल' 'कान्यकुब्जाधीश' जयचन्द्र को नयचन्द्र ने नाटिका का नायक बनाया। हम्मीर जयचन्द्र से कही अधिक उनकी प्रशंसा का पात्र था। सत्ववृत्ति हम्मीर ने अलाउद्दीन को अपनी पुत्री नहीं दी। शरणागतों को भी उसने अलाउद्दीन को नहीं सौंपा। उसने राज्यश्री के विलास और जीवन को तृणतुल्य समझा; फिर ऐसे व्यक्ति पर इतिहासानुरागी नयचन्द्र सूरि की कलम कैसे न चलती ? प्रतीत होता है कि वे स्वप्न में भी उसे भूल न पाते थे। इसलिये तो उन्हे यह आभास हुआ कि स्वयं हम्मीर स्वप्न में

आकर उन्हे 'हम्मीरचरित्र' के तनन (स्वरचिततनन) के लिये उत्साहित कर रहे है। (14–26)

कृतित्व के रूप में हम्मीर महाकाव्य ही नयचन्द्र सूरि रचित महाकाव्य है। इनकी अन्य कोई महाकाव्य रचना नहीं प्राप्त हुई है ।

–समाप्त–

द्वितीय अध्याय

काव्य का कथासार

काव्य का कथासार

प्रथम सर्ग में चाहमान से सिंहराज तक राजाओं का वर्णन है। ब्रह्मा ने पुष्कर में यज्ञ आरम्भ करते समय दैत्यों से यज्ञ को बचाने के लिये सूर्य का स्मरण किया। उनके यह चाहते ही सूर्य मण्डल से उतरकर एक योद्धा ने यज्ञ की रक्षा की। वही 'चाहमान' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्मा की कृपा से उसने एक महान साम्राज्य की स्थापना की। (15–25) इसी के वंश में दीक्षित वासुदेव हुआ (27–31), उसके बाद क्रम से नरदेव (32–36), चन्द्रराज (37–40), चक्रीजयपाल (41–52), जयराज(53–57), सामन्तसिंह (58–62), गूयक (63–66), नन्दन (67–71), वप्रराज(72–81), हरिराज (82–89) और सिंहराज (90–104), गद्दी पर बैठे। इनमें जयपाल ने अजयमेरू दुर्ग की स्थापना की(52)। वप्रराज ने शाकम्भरी देवी को प्रशन्न कर शाकम्भरी में लवण की झील को प्रकट की (81)। हरिराज ने शकाधिराज को हराकर मुग्धपुर पर अधिकार किया। (82) यह भी सम्भव है कि उसने बराह, कछवाहा और नागवंशी राजाओं को परास्त किया हो। (87) सिंहराज के सेना–प्रयाण के पटह को सुनते ही कर्णाट, लाट, चोल, गुर्जर, अंगादि देशों के अधिप भयभीत हो उठते (89), इसने हेतिम नामक शकराज को हराकर उसके चार हाथी छीने (104)।

दूसरे सर्ग में भीम, विग्रहराज (प्रथम), गुंददेव, वल्लभराज, राम, चामुण्डराज, दुर्लभराज, दुःशलदेव, विश्वल (प्रथम), पृथ्वीराज (प्रथम), आल्हणदेव, आनल्लदेव, जगदेव, विश्वलदेव (द्वितीय), जयपाल, गंगदेव, सोमेश्वर और पृथ्वीराज द्वितीय का क्रमशः वर्णन है। भीम सिंहराज का भतीजा था। (1)। विग्रहराज (प्रथम) ने गूर्जराधिप मूलराज को युद्ध में मारा (9)। चामुण्डराज ने युद्ध में शकाधिराज हेजमदीन का वध किया। (24)। दुर्लभराज ने सहाबदीन को युद्ध में पराजित कर पकड़ा (28)। दुःशलदेव ने समरांगण में कर्ण को मारा (31)। विश्वलदेव (प्रथम) ने एकाधिपत्य राज्य किया और म्लेच्छराज सहाबदीन को मारकर मालवदेश को म्लेच्छों से स्वतंत्र किया (32–37)। आनल्लदेव ने (अजमेर में) पुष्कर के समान पवित्र एक तालाब खुदवाया (51)। सोमेश्वर की रानी कर्पूरदेवी से पृथ्वीराज (द्वितीय) का जन्म हुआ। पृथ्वीराज को शस्त्र और

शास्त्रविद्या में निष्णात देखकर सोमेश्वर ने उसे राज्य दिया (67–77)। बाकी के तेरह श्लोकों में पृथ्वीराज के प्रतापयुक्त राज्य का वर्णन है।

तीसरे सर्ग का विषय पृथ्वीराज (द्वितीय) और सहाबदीन का युद्ध है। सहाबदीन से त्रस्त पश्चिम देश के राजाओं ने गोपाचल नगर के स्वामी चन्द्रराज को अग्रणी बनाया और पृथ्वीराज की सभा में जाकर रक्षा के लिये प्रार्थना की। सहाबदीन अनेक क्षत्रिय राजाओं को हटाकर उस समय मूलस्थान (मुल्तान) में अपनी राजधानी स्थापित कर चुका था (1–13)। पृथ्वीराज ने सहाबदीन को मयूरबन्ध से बाँधकर, राजाओं के चरणों में डालने की प्रतिज्ञा की (15)। तुरूष्क सेना हारी, किन्तु सहाबदीन ने क्रुद्ध होकर फिर भी पृथ्वीराज पर हमला किया। पृथ्वीराज ने उसे बांधकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। इस प्रकार उसने यवनाधिराज को सात बार हराया (18–46)। विजय का और कोई उपाय न देखकर शकेश सहाबदीन खर्प्परेश के पास पहुँचा और खर्प्परेश ने उसे काम्बोज, लंगाह, भिल्ल आदि की सेना दी (47–49)। इस सेना की सहायता से अकस्मात दिल्ली पहुँचकर सहाबदीन ने उस पर अधिकार कर लिया (50)। पृथ्वीराज अपनी थोड़ी सी सेना को लेकर उसके सामने आ डटा। पृथ्वीराज के अश्वपाल और बाजे वालों को अपनी ओर मिला लिया। उषा काल में शको ने पृथ्वीराज के शिविर पर आक्रमण किया। अश्वपाल ने पृथ्वीराज को नटारम्भ नाम के अश्व पर चढ़ा दिया। बाजे बजते ही घोड़ा नाचने लगा। शत्रुओ ने राजा को घेर लिया। एक बार पृथ्वीराज किंकर्तव्य–विमूढ़ हुआ। फिर घोड़े से कूदकर उसने युद्ध करना शुरू किया, किन्तु इतने में ही पीछे की तरफ से राजा के गले में धनुष की प्रत्यंचा डालकर किसी शक ने उसे गिरा दिया। अन्य मुसलमानी सैनिको ने राजा को बांध लिया (51–64)। इसी बीच में पृथ्वीराज का सेनानी उदयराज गौड़ वहाँ आ पहुंचा। उसने एक महीने तक शकपति की नगरी को रुद्ध किया। क्रुद्ध शकेश ने पृथ्वीराज को किले में चुनवा दिया और वही उसकी मृत्यु हुई (65–72)। उदयराज ने तदनन्तर युद्धकर स्वर्ग–यात्रा की (73)। पृथ्वीराज के बाद हरिराज राजा हुआ। काव्य के श्लोक 74–82 में हरिराज का वर्णन है।

चतुर्थ सर्ग का आरम्भ हरिराज के राज्य से है। राजा को प्रसन्न करने के लिये गुर्जरेश ने उसके पास अनेक नवयौवना नर्तकियां भेजी थीं। हरिराज का समय उन्ही के साथ बीतने लगा। राज्य के प्रबन्ध में शिथिलता आ गई। वेतन ठीक न मिलने से सेवक उसे छोड़कर जाने लगे और प्रजा उससे विरक्त हो गई। इस स्थिति की सूचना मिलते ही शकेश हरिराज की सीमा पर आ पहुँचा। हरिराज ने पृथ्वीराज की मृत्यु के अनन्तर प्रतिज्ञा की थी कि वह कभी शकों के मुख को न देखेगा। अतः रानियों समेत उसने अग्नि में प्रवेश किया। (1–19)।

स्थिति का विचार कर मंत्रियों ने रणथम्भौर में जाकर, पृथ्वीराज के पुत्र गोविंद के यहाँ शरण ली। अजमेर शकेश के हाथ आया। गोविन्द ने चाचा के और्ध्व दैहिक कार्य किये और सब को समुचित वृत्ति दी (21–31) इसके बाद बाल्हण राजा हुआ। उसके दो पुत्र थे प्रह्लाद और वाग्भट। बाल्हण ने प्रह्लाद को राजा और वाग्भट् को प्रधानमंत्री बनाया (32–41)। एक बार सिंह का शिकार करता राजा बुरी तरह से जख्मी हुआ। अपने को दुश्चिकित्स्य जानकर उसने अपने पुत्र वीरनारायणं को अभिषिक्त किया; पर वीरनारायण लघु–वयस् था, अतः राजा ने उसका अनुशासन बाग्भट् को सौंपा (42–77)। वीरनारायण एक बार कछवाहे राजा की पुत्री से विवाह करने आमेर गया। वहाँ शकराज ने उस पर हमला किया और उसका पीछा करता हुआ रणथम्भौर पहुंचा। जब वह बल से रणथम्भौर को न ले सका, तो उसने कपट से काम लिया। राजा उसकी बातों में आ गया। उसे यह भी सूझी कि शकराज चाहमानों को वक्षःस्थलपुर के राजा विग्रह के विरूद्ध सहायता देगा। इसलिये वाग्भट् की मन्त्रणा के विरूद्ध भी वह दिल्ली गया। इससे अपने को अपमानित समझ कर वाग्भट् मालवा चला गया। शकेश ने प्रीति का खूब ढ़ोंग किया; और धोखे से वीरनारायण को जहर देकर मरवा डाला। रणथम्भौर शकों के हाथ आया। (78–106)

इधर शकराज के कहने पर मालवा के राजा वाग्भको मारने का प्रयत्न किया। किन्तु वही वाग्भट के हाँथों मारा गया और मालवा का राज्य वाग्भट के हाथ आया। जब षर्परों (मुगलों) ने जल्लालदीन पर आक्रमण किया तो वाग्भट ने भी अपनी सेना

एकत्रित की और रणथम्भौर को जा घेरा। अन्नपानादि की कमी से पीड़ित होकर शक वहाँ से भाग निकले। उसके बाद वाग्भट्ट ने बारह वर्ष तक रणथम्भौर में राज्य किया (107–130)। वाग्भट का पुत्र जैत्रसिंह भी प्रतापी राजा था। हम्मीर का जन्म उसकी रानी हीरा देवी से हुआ। पिता ने हम्मीर का विवाह सात राजकुमारियों से किया। जैत्रसिंह के दो और पुत्र भी थे। सुरत्राण जो हम्मीर से बड़ा और वीरम जो हम्मीर से छोटा था(131–160)।

पंचम सर्ग में बसंत का, छठे सर्ग में जल–क्रीड़ा का वर्णन और सातवें मे सुरतादि का वर्णन है। आठवें सर्ग की कथा का प्रारम्भ प्रभात के वर्णन से है(1–35)। तत्कालीन कृत्य को समाप्त कर जब हम्मीर राज्य–सभा में पहुंचा तो जैत्रसिंह ने उसे राज्य सौंपने का प्रस्ताव किया। हम्मीर को पिता का यह अनुरोध मानना पड़ा। संवत् 1333 की पौष शुक्ला पूर्णिमा रविवार (16 दिसम्बर 1282) मेष लग्न में हम्मीर का राज्याभिषेक हुआ। हम्मीर को उचित उपदेश देकर (36–106) जैत्रसिंह ने आत्महित की साधना के लिये 'श्री आश्रम' नाम के पत्तन के लिये प्रस्थान किया जहाँ जम्बूमार्ग महादेव का मन्दिर था और सरिद्वरा चम्बल नदी बहती थी । किन्तु वह वहाँ न पहुंच सका। पल्ली नगरी पहुंचते ही उसका लू–ताप से देहान्त हो गया। इस पर हम्मीर को अत्यन्त शोक हुआ विप्र बीजादित्य आदि के समझाने से हम्मीर का शोक कुछ कम हुआ (107–131)।

नवम सर्ग का आरम्भ हम्मीर की दिग्विजय के वर्णन से है । उसकी बहुसंख्यक सेना ने भीमरस के राजा अर्जुन को हराया। उसके बाद मांडलकृत् दुर्ग से कर लेकर वह धारा पहुंचा और परमार राजा भोज को हराया। उज्जयिनी में महाकाल की अर्चना की। वहां से लौटकर उसने चित्तौड़ को दंडित किया और आबू पहुंचकर अपनी सेना का पड़ाव डाला। उसने विमल–बसही में ऋषभदेव को प्रणाम किया। वस्तुपाल के मन्दिर को देखकर उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने अर्बुदादेवी की अर्चना की और वशिष्ठाश्रम में कुछ समय तक विश्राम कर मन्दाकिनी में स्नान किया। उसने अंचलेश्वर का पूजन किया। आबू के राजा ने उसे खूब धन दिया। वहाँ से उतरकर

उसने वर्धनपुर को निर्धन और चंगा को रंग रहित बनाया। फिर अजमेर होता हुआ वह पुष्कर पहुंचा। वहाँ उसने भगवान् वराह का पूजन किया। फिर शाकम्भरी, महाराष्ट्र, खण्डिल्ल, चम्पा आदि को लूटता हुआ वह ककराला पहुंचा; जहाँ त्रिभुवनादि के स्वामी ने उसकी अर्चना की। इस प्रकार चारों दिशाओं को विजित कर हम्मीर रणथम्भौर लौटा (1–51)। पुरोहित विश्वरूप से कोटियज्ञ का फल सुनकर उसने कोटियज्ञ करने का निश्चय किया। विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न कर उसने ब्राह्मणों को प्रभूत हिरण्यमयादि दक्षिणा दी और एक महीने का मुनिव्रत लिया (52–90)।

इसी समय दिल्ली में अलाउद्दीन राजा हुआ। उसने अपने भाई 'उल्लूखान' से कहा, 'पहले रणथम्भौर का स्वामी जैत्रसिंह मुझे कर दिया करता था, हम्मीर तो गर्व–वश मुझसे बात भी नहीं करता। अब वह वृतस्थ है, इसलिये आसानी से जीता जायेगा। जाओ और रणथम्भौर के आसपास के देश को नष्ट करो।' स्वामी की आज्ञा से उल्लूखां बनास नदी के किनारे पहुंचा, किन्तु घाटी के अन्दर वह न घुस सका; वही 18 (अट्ठारह) दिन तक लूटपाट करता रहा। हम्मीर व्रत के कारण चुप था। इसीलिये मंत्री धर्मसिंह की सलाह से सेनानी भीमसिंह ने शक (मुसलमानी) सैन्य पर आक्रमण किया। शकसेना भाग खड़ी हुयी। भीमसिंह वापस लौटा, किन्तु छिपे–छिपे उल्लूखां उसके पीछे लगा रहा। बहुत से राजपूत जीत के उल्लास में आगे बढ़ गये। इधर पहाड़ी घाटी मे घुसते समय भीमसिंह ने मुसलमानी फौज से छीने हुये बाजों को बजा डाला। उसकी आवाज सुनते ही चारों ओर से मुसलमानी फौज ने उसे आ घेरा। भीमसिंह मारा गया। मुसलमान सेनापति दिल्ली वापस लौटा (91–150)।

व्रत के पूर्ण होने पर हम्मीर ने धर्मसिंह को बुला भेजा। 'पीछे आते मुसलमानी सेनापति को न देखना उसकी अन्धता थी, और भीमसिंह को छोड़ देना नपुंसकता'। इस तहर धर्मसिंह पर दो दोष लगाकर हम्मीर ने वास्तव में उसे अन्धा और नपुंसक बना दिया। धर्मसिंह का पद उसने खड्‌गग्राही भोजदेव को दिया, जिसका उससे वही सम्बन्ध था, जो विदुर का पाण्डु से (151–155)। पर भोजदेव अर्थ–संग्रह मे निपुण न था। इसलिये नर्तकी धारादेवी के कहने पर हम्मीर ने फिर धर्मसिंह को पुराने पद पर

नियुक्त किया। अनेक प्रकार के अनुचित कर लगाकर धर्मसिंह ने राज–कोश को परिपूर्ण किया। भोजदेव से उसने हिसाब माँगा, लाचार भोजदेव को अपना सर्वस्व देना पडा। राजा को अपने विरुद्ध जानकर, भोजदेव काशी–यात्रा के बहाने अपने भाई पीथसिंह को लेकर रणथंम्भौर से निकल गया। हम्मीर ने दण्डनायक का पद रतिपाल को दिया (156–188)।

दसवें सर्ग का नाम 'अलाउद्दीनामर्षणै' है जो उसके विषय के उपयुक्त है। भोज अपमानित होकर क्रोध से जल उठा और अपमान का बदला लेने के लिये वह दिल्ली पहुंचकर अलाउद्दीन से मिला। प्रसन्न होकर सुल्तान ने उसे जगरा का स्वामी बना दिया; जो किसी समय मुगलों के अधिकार मे थी, और कुछ समय बाद उससे अलाउद्दीन ने भोजदेव से हम्मीर को जीतने का उपाय पूछा। इस पर उसने हम्मीर के शौर्य की प्रशंसा करते हुये कहा–'जिससे कुन्तल, मध्यप्रदेश, काँची , अंग, वंग, काश्मीर, गूर्जरादि देशो के राजा घबराते है, जिसकी सेवा वीरम, महिमासाहि आदि करते है, उसे आसानी से किस प्रकार जीता जा सकता है किन्तु उसके नाश का कारण अन्धा धर्मसिंह अब उदित हो चुका है। इस समय नयी फसल उगी है, उसे जितना चाहो तो जल्दी सेना भेजो (1–28)।

उल्लूखान बड़ी सेना के साथ हिन्दूवार पहुँचा। चरो से हम्मीर ने यह बात सुनी तो हम्मीर ने उस उल्लूखान के विरूद्ध अपने वीरम आदि आठ योद्धाओं को भेजा। वीरम ने पूर्व से, पश्चिम से महिमासाहि ने, जाजदेव ने दक्षिण से, उत्तर दिशा से गर्मसक ने, आग्नेय से रतिपाल ने, तिचर ने वायव्य से, रणमल ने इशान से और नैर्ऋत से वैचर ने खल्जी सैन्य पर आक्रमण किया। खल्जी सेना बुरी तरह हारी। उल्लूखान किसी तरह जीता भाग निकला, किन्तु उसके शिविर को चौहानों ने बुरी तरह लूटा। रतिपाल ने राजा की ख्याति को बढ़ाने के लिये बन्दीकृत मुसलमानी स्त्रियों से गाँव–गाँव में मठा(छाछ) बिकवाया और राजा ने उसके शौर्य से प्रसन्न होकर यह कहते हुये कि 'यह मेरा मस्त हाँथी है' उसके पैरों में सोने की श्रृंखलाएं डालीं। दूसरों को भी राजा ने प्रचुर पारितोषिक दिया (29–64)।

महिमासाहि ने भोज की जागीर जगरा पर आक्रमण करने की अनुमति मांगीं उनके लिये यह असह्य था कि उनके जीते जी कृतघ्न भोजदेव उनकी पुरानी सम्पत्ति का उपभोग करे। आज्ञा मिलते ही उन्होंने जगरा को जा लूटा, और सकुटुम्ब भोज के भाई को बन्दीकर रणथम्भौर आ पहुँचे (65–68)।

उधर उल्लूखान दिल्ली पहुँचकर; जब अपने दुर्भाग्य की कथा कह रहा था, भोजदेव भी वहां पहुँचा। उसके रुदन ने अलाउद्दीन की कोपाग्नि में घृत की आहुति का काम किया। सुल्तान ने कहा, 'भोज, शोक छोड़ो। हम्मीर ने सोते सिंह को जगाया है। हम्मीर कहीं भी हो, मैं उसे पकड़े और नष्ट किये बिना न छोड़ूंगा (69–88)।'

ग्यारहवें सर्ग में मुसलमानी सेना द्वारा रणथम्भौर के बिफल रोध और 'निसुरतखान' की मृत्यु का वर्णन है। भारत के सभी भागों से यवन सेना एकत्रित हुई। अलाउद्दीन के छोटे भाई 'उल्लूखान' और 'निसुरतखान' उसके अध्यक्ष बने। पहाड़ी घाटी के पास पहुँचकर उन्होने अपने दूत माल्हण को सन्धि के लिये हम्मीर के पास भेजा। इसी बहाने अन्दर घुसकर, उल्लूखान ने अपनी सेना को मण्डपदुर्ग में, मुण्डी और प्रतौली में निसुरतखान की फौज को और जैत्रसर के पास दूसरों की फौजें रखीं। यह सोचकर कि पहाड़ियों में घुसी सेना सुसाध्य होगी, राजपूतों ने इसकी विशेष परवाह न की (1–24)।

माल्हण ने रणथम्भौर पहुँचकर हम्मीर से कहा, 'जिस अलाउददीन ने देवगिरि जैसे दुर्ग्राह्य दुर्गों को लीला मात्र से जीत लिया है, उस के छोटे भाई उल्लूखान और निसुरत खान ने उसी की आज्ञा से कहलाया है, 'हे हम्मीर, यदि तेरी राज्य करने की इच्छा है तो लक्ष स्वर्ण, चार हाथी, तीन सौ घोड़े, और अपनी पुत्री देकर हमारी आज्ञा का पालन कर। यह भी शायद छूट सके। मेरी आज्ञा को प्रलुप्त करने वाले चार मुगलों को मुझे सौंपकर तुम राज–लक्ष्मी का आनन्द लो।' क्रोध से आविष्ट होकर हम्मीर ने उत्तर दिया, 'यदि तुम दूत के रूप में ये बातें न कहते तो, मैं तुम्हारी जबान निकलवा डालता । चाहमान के जीते उसका धन कोई नहीं छू सकता । मैं तुम्हारे स्वामी को

एक विंशोपक मुद्रा का शतांश भी नही दूंगा । शरणागत मुगलों को मांगने वाले तुम्हारे स्वामी तो मूर्खराज है।'(25–69)

दुर्ग में युद्ध की तैयारी हुई। मुसलमानों ने बाण, अग्निबाण, पत्थर आदि चलाये और राजपूतों ने भी। कई दीवारों को खोदकर, कई ने सीढ़ियों द्वारा चढ़कर, गढ़ लेने का प्रयत्न किया। परन्तु ये जब प्रयत्न विफल हुए। एक दिन दो गोले परस्पर भिड़ गये और उनके एक टुकड़े की चोट से निसुरतखान मारा गया । उल्लूखान ने उसका शरीर दिल्ली भिजवा दिया। उसके अन्तकृत्य के बाद स्वयं अलाउद्दीन ने रणथम्भौर के लिये प्रस्थान किया।(70–103)

बारहवें सर्ग का मुख्य विषय हम्मीर और अलाउद्दीन का दो दिन का संग्राम है। अलाउद्दीन रणथम्भौर पहुंचा, वीर क्षत्राणियों ने युद्ध के लिये अपने स्वजनों को विदा दी। पहले दिन घनघोर युद्ध हुआ और इसी तरह दूसरे दिन भी। इस युद्ध में 85000 यवन योद्धा मारे गये ।

तेरहवें सर्ग में अवशिष्ट कथा का और हम्मीर के स्वर्ग–गमन का वर्णन है। एक दिन हम्मीर ने दुर्ग पर ऐसे स्थान पर श्रृंगार–सभा की जो मुसलमानी शिविर से दिखायी पड़ती थी । वहाँ ताण्डव नृत्य करती हुयी रम्भा ने ताल समाप्ति के समय अधःस्थ शकेन्द्र को अपना पश्चात्–भाग दिखाया। इससे खिन्न सुल्तान ने उड्डान सिंह को रम्भा पर बाण चलाने की आज्ञा दी। बाण से विद्ध होकर रम्भा तलहटी में जा गिरी ।

महिमासिंह की इच्छा थी कि इसका बदला अजाउद्दीन को मार कर ले, किन्तु हम्मीर की आज्ञा से उसने उड्डानसिंह को ही मारा। इससे चकित होकर शकेश्वर ने तालाब के अग्रिम भाग को छोड़कर, अपना शिविर पीछे की ओर कर लिया।(1–38)

अलाउद्दीन ने कई धावे किये, सुरंग लगाई और मिट्टी, पत्थर, लकड़ी के टुकड़ों और पूलियों से खाई को भरा। कई महीने में जब ये दो काम सिद्ध हुये तो मुसलमानों ने फिर धावें किये।.हम्मीर ने अग्नि के गोलों से परिखा में एकत्रित लकड़ी

आदि को जला डाला और सुरंग में लाक्षायुक्त खौलता तेल डाला जिससे मुसलमानी सैनिक जल–भुन गये। (39–47)

वर्षाकाल आ गया। सैनिक थक गये। तब दूतो द्वारा अलाउद्दीन ने रतिपाल को बुला भेजा। हम्मीर ने भी उसे जाने की अनुमति दी। सुल्तान ने रतिपाल का अच्छा सत्कार किया; और रणथम्भौर का राज्य देने का आश्वासन देकर उसे अपनी ओर कर लिया। रणथम्भौर पहुँचकर विरोध को और भड़काने की इच्छा से उसने हम्मीर से कहा– 'शकेन्द्र' आपकी पुत्री माँग रहा है। मैं तो उसे धमका कर चला आया हूँ। रणमल्ल कुछ रुष्ट है। आप पाँच–छः आदमियों के साथ जाकर उसे मनाले। वीरम को रतिपाल पर सन्देह हुआ। किन्तु राजा ने लोकापवाद के भय से केवल संशय के आधार पर रतिपाल के हर्ष का पूरा दण्ड देना उचित नहीं समझा। अन्तःपुर में जब यह वार्ता पहुंची कि शकेन्द्र पुत्री को मांगता है तो देवल्लदेवी इस आत्मोसर्ग के लिये तैयार हो गई, किन्तु मनस्वी हम्मीर ने कन्या के प्रस्ताव को ठुकरा दिया (48–129)।

उधर रतिपाल ने रणमल्ल से जाकर कहा 'तुम क्या सुख से बैठे हो ? राजा कई आदमियों को लेकर तुम्हें पकड़ने आ रहा है।' राजा को उसी तरह आता देख वह डर के मारे किले से उतर गया और शत्रु से जा मिला। इसी तरह रतिपाल भी अलाउद्दीन के पास जा पहुँचा (130–135)।

इसी बीच में हम्मीर ने कोषाधिकारी जाहड़ से पूछा, 'हमारे कोश में कितना अन्न है ?' जाहड़ ने सोचकर कि झूठमूठ अन्नाभाव की सूचना देने से राजा शत्रु से सन्धि कर लेगा, उत्तर दिया कि अन्न सर्वथा समाप्त है (136–138)।

अब हम्मीर को सब पर सन्देह होने लगा। प्रातःकाल सभा में उसने महिमासाहि से कहा, 'हम तो अपनी भूमि के लिये प्राणों का भी त्याग करते है। यह क्षत्रियों का सनातन धर्म है किन्तु तुम विदेशी हो। आपत्ति के समय तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं है। जहाँ जाना उचित समझो चले जाओ। राजा के यही ऐसे वचनों से महिमासाहि ने कहा, 'ऐसा ही होगा', और घर जाकर अपने कुटुम्बियों क़ो तलवार की धार उतार दिया। फिर आकर उसने हम्मीर से कहा, 'तुम्हारी भाभी जाने से पूर्व एक बार तुमसे

मिलना चाहती है। बिना मिले जाने से उसके हृदय में सदा पश्चाताप रहेगा।' हम्मीर ने महिमासाहि के भवन में तब स्त्रियों और बच्चों के सिरों को खून में तैरते हुये देखा तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। विमूर्च्छित होने पर उसने महिमासाहि के गले लगकर बहुत विलाप किया (139–168)। किन्तु अब क्या बन सकता था ? वहाँ से लौटने पर हम्मीर ने देखा कि कोष्ठ अन्न से परिपूर्ण है। जाहड़ से पूछने पर उसे सब बात मालुम हुई। उसने नागरिकों को निकल जाने के लिये धर्मद्वार खोल दिया और रानियों को अग्नि प्रवेश की आज्ञा दी। स्वयं सब विषाद छोड़कर वह पद्मसर के किनारे जा बैठा (168–172)।

रंगदेवी आदि रानियों ने सुन्दर–सुन्दर वस्त्र और आभूषण धारण किये। राजा ने अपनी वेणी काट कर उन्हे दी। राजकुमारी देवल्लदेवी ने भी उनके साथ चिता मे प्रवेश किया (173–186)।

वीर राजा ने रानियों को अन्त्याञ्जलि दी–इस आशय से कि शत्रु के हाथ मे कुछ न पड़ सके, उसने नौ हाँथियों के मस्तक भी काट डाले। जब वीरम ने राज–पद स्वीकार न किया, तो राजा ने चाहमान जाजदेव को राज्य दिया और सब द्रव्य पद्मसर मे फेंककर कोष्ठाधिकारी जाहड़ को प्राण दण्ड दिया। श्रावण शुक्ल पक्ष की षष्ठी, रविवार के दिन, रात्रि के समय, नौ वीर–वीरमसिंह, टाक गंगाधर, राजद, चारो मुगल भाई और क्षेत्रसिंह परमार हम्मीर के साथ युद्ध में उतरे। सबसे पहले वीरम ने वीरगति प्राप्त की। महिमासाहि के मूर्च्छित होने पर स्वयं हम्मीर ने युद्ध किया और शत्रु के हाथ में न पड़ने का निश्चय कर अपने हाथ ही गला काट कर प्राण त्याग किया।

चतुर्दश सर्ग में हम्मीर के गुणों की स्तुति और कथा का उपसंहार है। जाजदेव धन्य है जिसने हम्मीर की मृत्यु के बाद भी दो दिन तक दुर्ग का त्राण किया। स्वामी के बार बार कहने पर भी जाज़ा ने वही जमकर युद्ध किया। महिमासाहि भी धन्य है जिसने हम्मीर की मृत्यु के बाद भी सुल्तान के यह पूछने पर कि उसे जीवित रहने दिया जाय तो वह क्या करेगा, यही उत्तर दिया कि वही जो सुल्तान ने हम्मीर के लिये

किया था। यह भी उचित हुआ कि सुल्तान युद्ध में हम्मीर के सिर को पैर से दिखाने वाले रतिपाल की खाल खिंचवा डाली।

प्रशस्तिभाग में कवि का परिचय है। कृष्णगच्छ मे जयसिंहसूरि हुये जिन्होने षड्भाषा कवि चक्रवर्ती प्रामाणिकाग्रेसर सारंग को विवाद में हराथा। जयसिंह ने न्यायसार की टीका, नवीन व्याकरण और कुमारपाल के चरित का प्रणयन किया। इनके शिष्य प्रसन्नचन्द्र और प्रसन्नचन्द्र के शिष्य नयचन्द्रसूरि थे जिन्होने इस काव्य की रचना की। ये जयसिंह के पौत्र होते हुये भी काव्य कला में उनके पुत्र थे। तोमर राजा वीरम के सभासदों के यह कहने पर कि अब पूर्व कवियों के समान कोई रचना नही कर सकता, नयचन्द्र कवि ने इस काव्य की रचना की।

तृतीय अध्याय

आलोच्य ग्रन्थ का परीक्षण

महाकाव्य की कसौटी मे हम्मीर महाकाव्य का परीक्षण:

साहित्यिक दृष्टि से हम्मीर महाकाव्य का स्थान ऊँचा है। स्वयं नयचन्द्र इसे पूर्व–कवियों की कृतियो से हीनतर नहीं समझते। हम चाहे इस निर्णय से सर्वथा सहमत न हो, तथापि यह मानने में तो हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती; कि नयचन्द्र ने इस काव्य में इतिहास और कविता का सुन्दर समन्वय किया है। कथा का स्रोत कभी रुद्ध नहीं होता है। इसकी कथा सर्गबद्ध है। केवल दो तीन सर्ग का ऋतु वर्णन ऐतिहासिक तथ्य मात्र से क्लान्त पाठक को विश्राम के लिये हरे–भरे द्वीप का काम दे सकता है। हम्मीर महाकाव्य वीररस प्रधान काव्य है। नयचन्द्र चाहते तो इन दो तीन सर्गो को दूर कर सकते थे; किन्तु उस समय काव्य लेखन की परिपाटी ही कुछ ऐसी थी कि मुख्य रस चाहे कोई हो श्रृङ्गार को दूर रखना उतना ही आपत्ति जनक था, जितना कि भोजन से लवण को।

रसोस्तु यः कोपि परं स किञ्चिन्नास्पृष्टश्रृङ्गाररसो रसाय।

सत्यप्यहो पाकिमपेशलत्वे न स्वादु भोज्यं लवणेन हीनम्।।

(हम्मीर महाकाव्य सर्ग 14 श्लोक 36)

कृष्णर्षिगच्छीय नयहंस ने लिखा है –

लालित्यममरस्येव श्री हर्षस्येव वक्रिमा।

नयचन्द्र कवेः दृष्टं लोकोत्तरं द्वयम्।। (काव्यकर्तृप्रशस्तिः श्लोक–4)

और यह सम्मति अधिकांश में ठीक है। हम्मीर महाकाव्य में लालित्य और वक्रिमा दोनों वर्तमान है। अलंकारों का सुन्दर समावेश है और कथा हृदय–ग्राहिणी है। हम्मीर महाकाव्य रस प्रधान काव्य है, शब्द प्रधान नहीं है, केवल शब्दाडम्बर का आश्रय लेना तो सामान्य कवियों का कार्य है। नयचन्द्र ने ययार्थ ही लिखा है –

वदन्ति काव्यं रसमेव यस्मिन्निपीयमाने मुदमेति चेतः।

किं कर्णतर्णर्ण सुपर्णपर्णाभ्यर्णाहि वर्णार्णवडम्बरेण।।

हम्मीर महाकाव्य में चौदह सर्ग है; हर एक सर्ग अपने ढ़ंग से निराला है; प्रत्येक सर्ग मननयोग्य है; कवि को हर्ष और अमर कवि अधिक प्रिय है। कवि उन्हीं दोनों कवियों की शैली का अनुसरण करता है। कवि को अपनी रचना के वैशिष्टय का पूरा ख्याल है। वह एक उत्तम कोटि का कवि है और काव्य–प्रकाशादि लक्षण–ग्रन्थों मे पारङ्गत भी। उसने लक्षण ग्रन्थों में वर्णित रसबहुल उत्तम काव्य का प्रणयन सरस जनों के मन को प्रसन्न करने के लिये किया है, अतः कोई नीरस व्यक्ति इस काव्य से आनन्द प्राप्त न कर सके तो इसमें कवि के काव्य का दोष नहीं –

काव्यं काव्यप्रकाशादिषु रसबहलं कीर्त्तयन्त्युत्तमं यत्

तन्नो भावैर्विभावप्रभृतिभिरनभिव्यक्तमुक्तैः कदाचित्।

तेनेति व्यक्तमुक्तं सरसजनमनःप्रीतये काव्यमेतत्

कश्चिच्चेन्नीरसोऽस्मिन् भजति बत मुदं नो तदा कोऽस्य दोषः। 14/34

इसमें किलष्ट कल्पनाएं और अस्वाभाविक उक्तियाँ कही नहीं है। काव्य का मुख्य रस वीर है, श्रृंगारादि अन्य रस उसके अङ्गभूत रस है। काव्य का नायक हम्मीरदेव धीरोदात्त गुणवान् और बड़ा सत्त्वशील पुरूष है। उसका प्रतिनायक अलाउद्दीन धर्म ध्वसंक निकृष्ट और पापिष्ठ है। वह प्रतिनायक बहुत बड़े साम्राज्य का स्वामी है; उसकी प्रभुसत्ता और सैन्यशक्ति बहुत विशाल हैं। नायक हम्मीरदेव एक धर्मात्मा, पुण्यमूर्ति, कुटुम्बवत्सल, प्रजाप्रिय अपने पूर्वजों के गुणों का पूजक है, अपनी कुल मर्यादा का रक्षक है। अपने धर्म और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का उसे पूर्ण ज्ञान है। स्वामी और सेवक के सम्बन्धों का उसे यथार्थ ज्ञान है। अपने वचन के पालन में वह पूरा सावधान है, शरणागत विधर्मी जनों के साथ भी वह आत्मीयभाव का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। नयचन्द्राचार्य की काव्य शैली बहुत ही प्रासादिक और ओज पूर्ण है। प्रसंगानुसार कवि ने जगह–जगह सरस सदुक्तियों का तथा धर्म और राजनीति परक अनेक उद्‌बोधक सद्‌वचनों का भी सन्निवेश किया है।

चरित्र – चित्रण में भी नयचन्द्र ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी लेखनी तूलिका से छोटे–छोटे पात्रों की भी चरित्र रेखाएं अत्यन्त स्पष्टता और खूबी से खीची

गई है। वीर महिमासाहि, अन्धा धर्मसिंह, वेश्या धारादेवी, स्वामी द्रोही रतिपाल खड्‌गग्राहीभोज, विलासप्रिय हरिराज ये सब नयचन्द्र की लेखनी से केवल चित्रित ही नहीं हुए अपितु प्रायः सजीव हो उठे है। जहाँ कवि ने चरित्र नायक हम्मीरदेव के गुणों की प्रशंसा की है, वहाँ उसके दुर्गुणों का भी दिग्दर्शन कराया है। काव्य को पढ़कर हम सहज ही समझने लगते है कि क्रोध की अत्यधिक मात्रा, प्रजा में अनुचित करों के कारण असन्तोष, आन्तरित फूट आदि भी हम्मीरदेव के पतन के मुख्य क़ारण थे। स्त्रियों में देवल्ल–देवी का चरित्र सबसे अधिक स्पष्ट है। नयचन्द्र ने पिता पुत्री के पारस्परिक प्रेम और कुल गौरव की वेदी पर इस स्नेहमयी बालिका के बलिदान का अच्छा वर्णन किया है।

काव्यप्रकाश में निम्नलिखित रूप में काव्य का प्रयोजन बताया गया है जो कवि नयचन्द्र को (अर्थ को छोड़कर) सभी प्राप्त हुए हैं।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।

सद्यः परनिवृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।

नयचन्द्र ने यशः प्राप्ति, हम्मीर वृत्तस्तवन एवं राजन्य–पुपूषा इन तीन प्रयोजनो से हम्मीर महाकाव्य की रचना की थी। कवि को इन तीनो लक्ष्यों में पूर्ण सफलता मिली है। नयचन्द्र का यश चिरस्थायी है; उनकी लेखनी ने उन्हें और वीरवर हठीले हम्मीरदेव को अमर कर दिया। हम्मीर महाकाव्य से व्यवहारिक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है। यह महाकाव्य कान्ता की तरह उपदेशक सिद्ध हो रहा है। इस वीरचरित को पढ़कर किस राजपुत्र को हृदय में यह इच्छा उत्पन्न नहीं होती कि वह इस चाहमान वीर के समान कर्त्तव्य पालन कर अपने यशः शरीर को चिरस्थायी करे। इसके अतिरिक्त यह काव्य राजीनिति का प्रकृष्ट भण्डार है। कान्तासम्मित ललित शब्दों में नयचन्द्र ने सुन्दर उपदेश की पर्याप्त योजना की है। जैत्रसिंह का हम्मीर को उपदेश की धर्मसिंह द्वारा रणथम्भौर राज्य में कर वृद्धि और उसका बुराफल; खड्‌गग्राही भोज का विभीषण की तरह रणथम्भौर का त्याग, रतिपाल का स्वामिद्रोह और उसकी कुगति आदि स्थल केवल राजन्यों के लिये नहीं अपितु जन–साधारण के लिये भी उतने ही

पठनीय है। धर्मसिंह द्वारा अनुचित कर–वृद्धि के विषय में ये दो श्लोक बहुत ही अच्छे बन पड़े है।

द्रव्यैः संपूरयन् कोशं रज्ञोऽभूद् भृशवल्लभः।
वेश्यानां च नृपाणां च द्रव्यदो हि सदा प्रियः।। 9/169
प्रजादण्डेन यत् तेन प्रतेने कोशवर्द्धनम्।
तत् किं स्वस्यैव मांसेन न स्वदेहोपबृंहणम्।। 9/170

अतः हम यदि यह कहे कि 'हम्मीर महाकाव्य' साहित्यिक दृष्टि से एक उत्कृष्ट कोटि का काव्य है तो यह अतिशयोक्ति न होगी।

रस छन्द अलंकार गुण रीति

हम्मीर महाकाव्य विभिन्न अलंकारों एवं छन्दों में गुम्फित है इसमें उत्प्रेक्षा, अर्थापत्ति, अतिशयोक्ति, रूपक, उपमा, श्लेष, व्यतिरेक, परिसंख्या आदि अलंकारों का सुन्दर निदर्शन होता है। यहाँ पर प्रथम सर्ग के पूर्वार्द्ध से कुछ अलंकार एवं रसमय श्लोकों का उदाहरण निम्न है। सुविज्ञ पुरूष एक दो पत्तों से भी वृक्ष की पहचानकर सकते है।

1. गुरुप्रसादाद् यदि वास्मि शक्तस्तदीयवृत्तस्तवनं विधातुम्।
सुधाकरोत्संगसरंगयोगान्मृगो न खे खेलति किं सखेलम्।।

यह प्रतिवस्तूपमा का सुन्दर उदाहरण है। हम्मीर की कथा का गान कोई साधारण कार्य नहीं किन्तु गुरुकृपा से यह भी किया जा सकता है; मृग का आकाश में खेलना प्रायः असंभव हैं, किन्तु चन्द्रमा की स्नेहपूर्ण गोद को प्राप्त कर क्या ऐसा नहीं करता अर्थात् करता ही है।[1]

2. प्रतापवह्निर्ज्वलितो यदीयस्तथा द्विषां कीर्तिवनान्यधाक्षीत्।
तदुत्थधूमाश्रयतो जहाति वियद्यथाद्यापि न कालिमानम्।। 1/21

यहाँ पूर्वार्द्ध में रूपक एवं उत्तरार्द्ध में अतिशयोक्ति दर्शनीय है। कवि आकाश की कालिमा का कारण ढूढ़ने चले है। मालूम हुआ कि चाहमान की प्रतापाग्नि ने शत्रुओ के कीर्तिरूपी वनों में आग लगा दी है आकाश की कालिमा का कारण इसी दावाग्नि से उत्पन्न धूम है।[2]

3. **जयश्रिया प्राप्तमहावियोगान् संमूर्छयन् वैरिगणान्निकामम्।**

यो युध्यवाची पवनायितोऽपि चित्रं द्विजिह्वान्न सुखीचकार ।। 23

यह विरोध और श्लेष के संकर का अच्छा नमूना है राजा और मलयानिल का कार्य एकसा ही था। एक जयश्री से वियुक्त वैरियो को, दूसरा वधूवियुक्त पुरुषों को मूर्च्छित करता है किन्तु मलयानिल द्वि–जिह्वों (सर्पो) को सुखी और राजी द्विजिह्वों अर्थात् पिशुनों को दुःखी करता है।

4. **प्रस्पर्धते मद्यशसास्य सूनुः शशीत्यमर्षात् किल योऽम्बुराशेः।**

गाम्भीर्यलक्ष्मी हरति स्म किन्न सुतापराधे जनकस्य दण्डः।। 24

यहाँ नयचन्द्र ने गूढ़ोपमा और अर्थान्तरन्यास का अच्छा मिश्रण किया है। समुद्र का पुत्र चन्द्रमा अपनी धवलता के कारण चाहमान के यश की बराबरी करता है, यह उसका महान् अपराध है; यही सोचकर उसने चन्द्रमा के पिता समुद्र की गाम्भीर्य–लक्ष्मी का हरण कर लिया। यदि किसी का पुत्र प्रमाद या मदवश राजा की बराबरी करने चले तो उसे दण्ड दिया ही जाता है।

5. **प्रवाद्यमाने रणवाद्यवृंदे संपश्यमानेषु दिवः सुरेषु।**

शौर्यश्रियं यो रणरंगभूमावनर्तयद्वेल्लदसिच्छलेन।।30

इतनी सुन्दर गूढ़ोपमा कही मिल सकती है ? जब नट नर्तकी को नचाता है तो अनेक प्रकार के वाद्य बजते है और प्रेक्षक अपने–अपने स्थान पर बैठकर नृत्य का आनन्द लेते है। राजा ने अपनी चक्कर लगाती तलवार के बहाने जब शौर्यश्रीरूपी नर्तकी को रण–रंगभूमि में नचाया उस समय उसी तरह चारों तरफ जुझाऊ बाजे बज रहे थे और देवता लोग आकाश से इस विचित्र नृत्य का प्रेक्षण कर रहे थे।

6. यस्य प्रतापज्वलनस्य किंचिदपूर्वमेवाजनि वस्तुरूपं।

जज्वाल शत्रौ सरसे प्रकामं यन्नीरसेस्मिन् प्रशशाम सद्यः।।38

यहाँ कवि ने विरोधालंकार का प्रयोग किया है। चन्द्रराज की प्रतापाग्नि का कुछ विचित्र ही स्वरूप था। अग्नि नीरस को जलाती और सरस को छोड़ती है, किन्तु उसकी प्रतापाग्नि सरस शत्रुओं को जलाती और नीरस अर्थात् दुर्बल शत्रुओं का त्याग करती थी।

7. चापस्य यः स्वस्य चकार जीवाकृष्टिं रणे क्षेप्तुमनाः शरौघान्।

जवेन शत्रून् यमराजवेश्माऽनैषीत्तदेतन्महदेव चित्रम्। 39

यह श्लेष के आधार पर विरोधालङ्कार का नमूना कहा जा सकता है। राजा युद्ध में बाण चलाने की इच्छा से इधर अपने धनुष की जीवाकृष्टि करता और उधर उसके शत्रुओं का जीवाकर्षण अर्थात् जीवान्त होता। यह अत्यन्त ही विचित्र बात थी कि जीवाकर्षण एक का हो और जीवान्त किसी अन्य का। विरोध यह जानते ही दूर हो जाता है कि धनुष के जीवाकर्षण का अर्थ किसी जीव का आकर्षण नहीं अपितु उसकी जीवा यानि प्रत्यंचा का खीचना मात्र हैं।

8. यत्कीर्तिपूरैरभितः परीते विश्वत्रये सूरिभिरित्यतर्कि।

तप्तं प्रतापैर्ध्रुवमेतदीयैर्विलिप्तमेतन्नवचन्दनेन।।45

यदि कवि समय के अनुसार ही संसार की स्थिति मानी जाय तो अच्छी अतिशयोक्ति है। त्रिलोकी भूपाल की धवल एवं आनन्ददायिनी कीर्ति से परिपूर्ण हो गई। यह देखकर विद्वानों ने सोचा, 'विश्वत्रय राजा के तीव्र प्रताप से निश्चित ही तप्त हो चुका था। कीर्ति का प्रसार सम्भवतः उस ताप को दूर करने के लिये चंदन का लेप है।

9. यदीयकीर्त्यापिहृतां समंतान् निजां श्रियं स्वर्गधुनी विभाव्य।

पतत्प्रवाहध्वनिकैतवेन कामं किमद्यापि न फूत्करोति।। 46

यह अतिशयोक्ति भी कुछ कम नहीं है। जलप्रपात की ध्वनि को किसने नहीं सुना है ? किन्तु, उससे यह कल्पना करना कि यह गङ्गा का मात्सर्ययुक्त फूत्कार है।

कवि नयचन्द्र का ही कार्य है। गङ्गा को शायद अपनी धवलिमा और स्वच्छता का अत्यन्त गर्व था। चक्री जयपाल की धवल कीर्ति ने गङ्गा के इस गर्व को चूर्ण कर दिया; उसने इसकी शोभा का सर्वथा हरण कर लिया। फिर बेचारी स्वर्धुनी फूत्कार न करती तो क्या करती है?

10. **कामं यदोजःसृजि वेधसोऽपि स्वेदोदयः कोऽपि स आविरासीत्।**

प्रसर्पता येन नदीवदम्बुराशेरपि क्षारमकारि वारि।। 51

प्रतीत होता है कि नयचन्द्र अतिशयोक्ति मे खूब सिद्धहस्त थे। चक्री जयपाल साधारण तेज वाला पुरुष न था। अतः ब्रह्मा ने जब जयपाल की सृष्टि की तो परिश्रम के मारे उसके शरीर से पसीना बहने लगा, और वह भी इतनी मात्रा मे कि उसकी नदी ने समुद्र के जल को खारा कर दिया।

यशोविताने स्फुरिते यदीये व्यक्तो यदालक्षि न शीतरश्मिः।

तदादिशंके विधिना व्यधायि तदीयबिम्बान्तरयं कलंकः।।54।।

चन्द्र बिम्बं मे धब्बा दिखाई पड़ता है इसके विषय मे कवियों की एक से एक बढकर कल्पनाएँ है। नयचन्द्र की सूझ शायद सबसे अच्छी न हो; किन्तु तो भी उत्कृष्ट कवित्व–पूर्ण है। "जयराज के धवल यशःसमूह के सर्वत्र प्रसृत होने पर धवल वर्ण वाली वस्तुएं स्वभावतः उसमे विलीन हो गई है। धवल रंग वाला चन्द्रमा भी न दिखाई पड़ने लगा। सम्भवतः उसी समय ब्रह्मा ने चन्द्रमा की पहचान के लिये उसके श्वेत बिंब में यह काला धब्बा लगाया था।

हम्मीर महाकाव्य का प्रमुख रस वीर है एवं अङ्ग रस के रूप में श्रृंगार रस का वर्णन पाँचवे, छठे, एवं सातवें सर्ग मे द्रष्टव्य है। श्रृंगार रस का एक उदाहरण निम्न है।

मुख–चुम्बनं यदि ददासि सकृत् प्रददे तदा कुसुममाल्यमिदम्।

गदतीति भर्त्तरि सखीविदितं त्रपया मुदा च समवादि परा।। 5/56

श्रृंगार रस का दूसरा उदाहरण–

अथ निशासमयागमलालसं चलदृशां प्रविदन्निव मानसम्।

चरमभूमिधराग्रिमचूलिकामहिमरश्मिरभूषयदंशुभिः।। 7/1

अब सूर्य अस्ताचल की उन्नत चोटी को अपनी किरणों से भूषित कर रहा था (अस्त होने को व्याकुल था) मानो उसने चंचल नेत्रों वाली नारियों के रात्रि समय आने के कारण काम लालसा से उत्तेजित मानस को पहचान लिया था।

हम्मीर महाकाव्य के सातवे सर्ग का नाम ही "श्रृंगार सञ्जीवनो नाम सप्तमः सर्ग" श्रृंगार सञ्जीवन है।

वीर रस का उदाहरण– जब हम्मीरदेव दिग्विजिय के लिये निकलते है तो अपने अधिक तेज वाले इस राजा को देखकर सूर्य म्लान न हो जाय इस दृष्टि से मानो अनुचरों ने इस हम्मीर राजा के सिर पर उज्ज्वल छत्र लगा दिया–4, सर्ग नवम

स्वतोऽधिकौजसं वीक्ष्य मा म्लासीदेनमुष्णरुक्।

इतीवास्योज्जवलं शीर्षे छत्रं छायाकरैर्दधे।। 9/4

नयचन्द्राचार्य की काव्यशैली बहुत ही प्रासादिक और ओज पूर्ण है। इसमें शार्दूल विक्रीड़ित, शिखरिणी, उपजाति, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, अनुष्टुप आदि छन्दों का सुन्दर वर्णन मिलता है।

अतः रस, छन्द, अलंकार, गुण, रीति आदि दृष्टियों से यह महाकाव्य उत्कृष्ट कोटि का है।

चतुर्थ अध्याय

सन्धि विवेचन

हम्मीर महाकाव्य में सन्धि विवेचन

संस्कृत के आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षण मे नाट्य की पञ्च सन्धियों को महाकाव्य में भी अनिवार्य बताया है जैसा कि साहित्यकार कहते है– "**सर्वे नाटक सन्धयः**" अतः हम्मीर महाकाव्य के कथावस्तु के विवेचन में **पञ्च** सन्धियों का विश्लेषण करना भी सर्वथा उचित है।

सन्धि शब्द का अर्थ है सन्धान करना या ठीक रूप में लाना , किसी कथानक का ठीक रूप में निर्वाह करने के लिये उसको भागों में विभक्त कर लेना चाहिये। इससे कथानक का सन्धान ठीक रूप में हो जाता है।

सन्धि का लक्षण–

अर्थप्रकृतयः पञ्च पञ्चावस्थासमन्विताः।[1]

यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पञ्चसन्धयः।।

अर्थप्रकृतीनां पञ्चानां यथासंख्येनावस्थाभिः पञ्चभिर्योगात् यथसंख्येनैव वक्ष्यमाणा मुखाद्याः पञ्च सन्धयो जायन्ते । !! पाँच प्रकार की अर्थ प्रकृतियों का क्रमशः पाँच प्रकार की अवस्थाओं से समन्वय होने पर मुख इत्यादि क्रमशः पाँच सन्धियाँ उत्पन्न होती है । !!

अन्तरैकार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति।[2]

एकेन प्रयोजनेनान्वितानां कथांशानामवान्तरैक प्रयोजनसंबन्धः सन्धिः।

एक ही अन्वय होने पर एक अवान्तर अर्थ के साथ सम्बन्ध होना सन्धि कहलाता है। एक नाटक में कई एक कथांश होते है उन कथांशों के प्रयोजन पृथक –पृथक हुआ करतें है । एक ही प्रयोजन से जहाँ कई एक कथांश परस्पर अन्वित हों, वहां पर उन कथांशों का उस अवान्तर प्रयोजन के साथ सम्बन्ध होना ही सन्धि कहलाता है। इस प्रसङ्ग में यह बात अवधेय है कि सन्धि शब्द नाट्य सन्धियों के प्रसङ्ग में किसी मिलन बिन्दु का अर्थ नही प्रकट करता अपितु यह कथा विस्तार से सम्बन्धित है।

---

1. **दशरुपक 1/22**
2. **वही 1/23**

इसलिये आचार्य अभिनव गुप्त ने सन्धि शब्द की व्युत्पत्ति करते हुये लिखा है "सन्धीयमानाः सन्धयः"।

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।

{ मुख प्रतिमुख, गर्भः अवमर्श और उपसंहृति ये पांच सन्धियां होती है। }

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पांच अर्थ प्रकृतियों का जब क्रमशः आरम्भ ,यत्न, प्राप्त्याशा , नियताप्ति और फलागम इन पांच कार्य की अवस्थाओं से संयोग होता है, तब क्रमशः मुख प्रतिमुख, ग़र्भ, अवमर्श और निर्वहण नामक पांच सन्धियां बनती है ।

1. बीज	+	प्रारम्भ	= मुखसन्धि
2. बिन्दु	+	प्रयत्न	= प्रतिमुखसन्धि
3. पताका	+	प्राप्त्याशा	= गर्भसन्धि
4. प्रकरी	+	नियताप्ति	= अवमर्शसन्धि
5. कार्य	+	फलागम	= उपसंहृति या निर्वहण।

नाट्य शास्त्र में पांच सन्धियों की प्रमुखता महाकाव्यों व नाटकों के लिये अनिवार्य बताया है । शास्त्रकारों का मत है कि सन्धि और सन्ध्यङ्गों से कथानक के निर्वाह करने मे सहायता लेनी चाहिए। किन्तु यदि इनसे कथानक में व्याघात उपस्थित हो तो इन संन्धियों के प्रयोग में यथा स्थान परिवर्तन कर लेना चाहिए। इनका निर्वाह शास्त्र पालन की दृष्टि से कभी नही करना चाहिए। नाट्यशास्त्र में अवमर्श के लिये और उपसंहृति के लिये निर्वहण शब्द का प्रयोग किया गया है । शास्त्र का नियम है कि जहाँ पर पांचों सन्धियों में किसी एक सन्धि कों छोड़ना अभीष्ट हो वहां अवमर्श सन्धि को छोड़ देना चाहिए। अर्थात् वहां आरम्भ और प्रयत्न दिखाकर सफलता की आशा दिखलानी चाहिये और उसके बाद फल प्राप्ति दिखा देनी चाहिए। यदि दो संन्धियों कों छोड़ना अभीष्ट हो तो गर्भ और विमर्श को छोड़ देना चाहिए।

---

1. **सन्धि सन्ध्यङ्ग घटनम् रसाभिव्यक्त्यपेक्षया।**
   नतुकेवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया ।। { ध्वन्यालोक 3/68}

अर्थात् प्रारम्भ के बाद एक दम फल प्राप्ति दिखला देनी चाहिए। कवि को चाहिए कि हमेशा रस परतन्त्र ही रहे। रस का विचार छोड़कर संन्धि और सन्ध्यङ्गों का संङ्घटन न करें।

बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणः।[1]

अर्थ प्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिता।।

अर्थप्रकृतयः प्रयोजनसि़द्धिहेतवः

बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी, तथा कार्य नामक ये पांच अर्थप्रकृतियां कही गयी हैं। अर्थप्रकृति का अर्थ है प्रयोजन की सिद्धि में हेतु अर्थ प्रयोजन प्रकृति सिद्ध में हेतु अधिकारिक कथावस्तु के निर्वाह में जिन तत्वों से सहायता मिलती है उन्हें अर्थप्रकृति कहते है । बीज के द्वारा अधिकारिक कथावस्तु के उद्गम से सहायता मिलती है। बिन्दु से विछिन्न कथावस्तु को आगे बढ़ाया जाता है। पताका और प्रकरी इन दोनो अर्थप्रकृतियों के आधार पर प्रासंङ्गिक कथावस्तु के द्वारा मुख्य कथावस्तु का उपकार किया जाता है, और कार्य फल के आधार पर क़थावस्तु का उपसंहार किया जाता हैं। इस प्रकार ये पांच अर्थप्रकृतियाँ अधिकारिक इतिवृत्त विकास में सहायक होती हैं ।

बीज विन्दु तथा कार्य में आवश्यक अर्थप्रकृतियाँ मानी गयी हैं। किसी भी रुपक में इनका होना आवश्यक है ।

कार्यावस्थाः— जब साधक धर्म , अर्थ, काम इन तीनो की अथवा इनमें से किसी एक अथवा किन्ही दो की प्राप्ति की चेष्टा करता है। उस समय उसके समस्त क्रियाकलापों में एक निश्चित क्रम रहता है। पहले साधक किसी फल की प्राप्ति के लिये दृढ निश्चय करता है। जब उसे फलप्राप्ति सुगमता पूर्वक होती हुई दृष्टिगत होती है । तब वह बड़ी तीव्रता के साथ कार्य में लग जाता है। मार्ग में विघ्न भी उत्पन्न होते है, उनके प्रतिकार के लिये प्रयत्न किये जाते है।

दश़रूपक 1/18,

उस समय साध्यसिद्धि दोनों ओर की खींचातानी में पड़कर संदिग्ध हो जाती हैं। धीरे –धीरे विघ्नो का नाश होने लगता है, और फल प्राप्ति निश्चित हो जाती है, और अन्त में समस्त फल प्राप्त हो जाता है । यही कार्य की अवस्था का क्रम होता है. । इस प्रकार कार्यावस्था पाँच भागों में विभाजित हो जाती है–

अवस्थाः पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः ।[1]

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमः।।

महाकाव्य के लक्षणानुसार जैसे नाटकों में संधियों का होना अनिवार्य है, सन्धि के अभाव में नाटक पूर्णतया सफल नही माना जाता; विद्वानो के द्वारा ग्राह्य नही है, उसी प्रकार महाकाव्य में भी संधियों का निर्वाह किया जाता है। रचना पद्धति के अनुसार ही महाकाव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है । महाकाव्य के लक्षण में कहा गया है –सर्वे नाटक संधयः। महाकाव्य में सभी नाटकीय संधियां होनी चाहिये।

इसी रचना विधान के अंर्न्तगत महाकवि नयचन्द्र सूरि ने भी हम्मीर महाकाव्य की रचना करके कवि जगत में अपना अप्रतिम स्थान बना लिया है।यद्यपि हम्मीर महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्य है । फिर भी वस्तु व्यापार, प्रकृति वर्णन आदि का कुशलता पूर्वक समावेश करके इसे महाकाव्य का रुप प्रदान किया है। प्रकृति के रम्य रूपों कों चित्रित करने की अद्भुत क्षमता नयचन्द्र में पूर्णतः निहित थी । हम्मीर महाकाव्य में प्रथम सर्ग से तृतीय सर्ग तक मुख सन्धि है। मुख सन्धि बीज नामक अर्थ प्रकृति तथा आरम्भ नामक अवस्था के संयोग से बनी है।

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।।[2]

जहाँ एक अनेक प्रयोजनों तथा वीर आदि रसों को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पायी जाती है,वहाँ मुख संन्धि होती है।

हम्मीर महाकाव्य में भी मुख संन्धि के अर्न्तगत बीज नामक अर्थ प्रकृति है जिसका लक्षण स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुबीजंविस्तार्यनेकधा।।[2]

फल का करण ही बीज है । आरम्भ में इसका स्वल्प संकेत किया जाता है ,

---

1. दशरूपक 1/19

किन्तु आगे चलकर यह अनेक प्रकार से पल्लवित होता है। हम्मीर महाकाव्य के प्रथम सर्ग में हम्मीर के वंश चाहमान की उत्पत्ति तथा हम्मीर के वर्णन के साथ ही हम्मीर के पूर्वज नृपगणों का वर्णन किया गया है। द्वितीय सर्ग में भी हम्मीर के पूर्वज भीमदेव आदि राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यो का वर्णन किया गया है जो अपने राज्य की रक्षा हेतु अपने क्षत्रियोचित धर्म का पालन करते हुये मुस्लिम शासकों से युद्ध करते है। तृतीय सर्ग में नृप पृथ्वीराज अपने राष्ट्र (राज्य) की रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है।

प्रथम सर्ग मे ही बीज नामक अर्थ प्रकृति का समावेश किया गया है। कवि ने अन्य श्रेष्ठ राजाओं की तुलना हम्मीर देव से करते हुये इस प्रकार वर्णन किया है।
यथा– कृतयुग के मान्धाता, त्रेता के श्रीराम एवं द्वापर के युधिष्ठिर जैसे राजा पृथ्वीतल पर कितने नही हुए ? अर्थात अनेक प्रसिद्ध राजा उत्पन्न हुए। उनमें से एक हम्मीर नामक महीपति (कलियुग में) हुए जो कि सत्त्व गुणों से युक्त होने के कारण प्रातः स्मरणीय हैं। हम्मीर देव चौहान क्षत्रिय वंशी राजा है। वह मृत्यु पर्यन्त अपने राज्य रणथम्भौर की रक्षा करता है। शत्रु अल्लावदीन उससे राज्य के बदले विकल्प रूप में उसकी पुत्री और महिमासाहि आदि चार मुगल योद्धाओं को मांगता है किन्तु क्षत्रियोचित व्रत का पालन हम्मीर देव करता है और शत्रु को न तो पुत्री देता है और न तो उन शरणागत पठानों को –

सत्त्वैकवृत्ते किल यस्य राज्यश्रियो विलासा अपि जीवितं च।[1]

शकाय पुत्रीं शरणगतांच्श्चाप्रयच्छतः किं तृणमप्यभूवन।।

सत्त्ववृत्ति वाला होने के कारण जिसकी राज्य लक्ष्मी के विलास और उसका जीवन तृणवत् हो गये , क्योंकि शकराज कों न तो अपनी पुत्री दी और न तो शरण में आये हुये व्यक्तियों को समर्पित किया।

यहां महाकाव्य के प्रारम्भ में स्वल्प रुप में हम्मीर देव के स्वभाव एवं उसकी कीर्ति वर्धक कार्यों का वर्णन करना ही फल सिद्धि का कारण है। हम्मीर देव का वर्णन ही बीज

---

1. हम्मीर महा0 1/9

नामक अर्थ प्रकृति सिद्ध हुई है क्योंकि यही हम्मीर देव बीज की भांति पल्लवित होकर सम्पूर्ण कथानक को आगे बढाता है । हम्मीर देव ही फल का कारण एवं स्वामी है।
हम्मीर महाकाव्य में हम्मीर देव का एवं उसके (वंशज) पूर्वज राजाओं का वर्णन ही बीज नामक अर्थ प्रकृति हैं। क्योंकि कवि नें क्रमशः राजाओं का वर्णन करते हुये हम्मीर देव के जन्म का वर्णन अन्त में किया है। बीज नामक अर्थ प्रकृति के निर्धारण के साथ आरम्भ नामक कार्यावस्था का होना भी मुख सन्धि का अविकल रूप है क्योंकि जो कार्य हम्मीर देव करता है; उससे पूर्व उसके पूर्वज वही कार्य (मुस्लिम अक्रान्ताओं से राज्य की रक्षा)करते है।चौहान नृप चामुण्ड़राज ने हेजमदीन शकराज को मार दिया –

कृतान्तकान्ताकुचकुम्भपत्रलतापिधाने विधृतावधानम्।[1]

यःसङ्गरे हेजमदीनसंज्ञं शकाधिराजं तरसाव्यधत्त ।।

इसके पश्चात "दुर्लभराज " नामक राजा ने वसुधा का भार धारण किया, जो चन्द्रमा की शोभा को भी जीतने वाला था।वह राजा अपनी भौहों को टेढ़ी करके ही युद्ध क्षेत्र से शत्रुगणों को पलायन का पाठ पढ़ा देता था।

नृपोऽथ दध्रे वसुधां सुधांशुभाजिद्यशा दुर्लभराजसंज्ञः। [2]

भ्रुवैव भङ्गान समराङ्गणे यः प्रापीठद् वैरिगणान्निकामम्।।

श्री "विश्वलदेव नामक "चौहान राजा मुस्लिम आक्रान्ता शहावुद्दीन को मृत्यु के घाट किस तरह उतार देता है –

अहीनधामानमदीनसेनं सहाबदीनं समरे निहत्य ।[3]

अमूमुचन् म्लेच्छकुलैर्द्विधाऽपि यो मालवस्ययापि विभुर्विभुत्वम्।

भयंकर सैन्य बल ले आये 'सहावदीन ' को निस्तेज करके इसने समर में मार डाला था और मालव देश का स्वामी होकर भी इसके स्वामित्व को छोड़ दिया ।[3] सभी हम्मीर देव के पूर्वज नृपगण अपने राज्य के रक्षा हेतु मुस्लिम शासको सें युद्ध करके अपने क्षत्रियोंचित धर्म का पालन करते हैं।

तृतीय सर्ग में पृथ्वीराज के संग्राम वर्णन को चित्रित किया है। पृथ्वीराज शकराज

---

1. हम्मीर महा0 2/24   2. वही 2/25

3. वही 2/37

को युद्ध में सात बार पराजित किया –

पृथक् –पृथक् सङ्गररङ्गभङ्ग्येत्थं सप्तकृत्वःक्षितिवासवेन ।[1]

विनिर्जितोऽसौ यवनावधीशो मम्लौ च जग्लौ च भृशं नृशंसः।।

इस तरह पृथ्वी के इन्द्र इस पृथ्वीराज ने अलग–अलग संग्राम में विभिन्न प्रकार से सात बार इस शकराज को हराया वह यवनाधीश हर बार म्लान और ग्लानियुक्त होता था। हम्मीर देव की भांति ही पृथ्वीराज भी अन्त में अपने राष्ट्र रक्षण हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है। इस प्रकार हम्मीर के पूर्वज राजाओं–भीमदेव, पृथ्वीराज आदि के शकराजाओं से युद्ध एवं शौर्य वर्णन में ही आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

औत्यसुक्यमात्रमारम्भः फलागमाय भूयसे ।

महान फल की प्राप्ति के लिये केवल उत्सुकता का होना ही आरम्भ गया है । क्योंकि प्रथम, द्वितीय, एवं तृतीय सर्गो में हम्मीर के पूर्वज नृप, यवन राजाओं को युद्ध भूमि में पराजित करने व उनका वधकर अपने राज्य की रक्षा करने की उत्सुकता दिखाते है। अतः इन सर्गों में मुख सन्धि द्रष्टव्य है तथा आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

प्रतिमु.ख सन्धि के निर्धारण में महाकाव्य मे बिन्दु +प्रयत्न.प्रतिमुख सन्धि के दोनो पक्षो का होना आवश्यक है क्योंकि बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा प्रयत्न नामक कार्यावस्था के संयोग से ही प्रतिमुख सन्धि बनी है। प्रतिमुख सन्धि में निहित बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति का निर्धारण पहले किया जा रहा है ।

अवान्तरार्थविच्छेदेबिन्दुरचछेदकारणम् ।।[2]

अवान्तर अर्थ से (अर्थात आवान्तर क्रम के कारण)मुख्य कथावस्तु के विच्छिन्न हो जाने पर , जो उसे जोड़ने व आगे बढ़ाने का कारण होता है वह बिन्दु कहलाता है ।

हम्मीर महाकाव्य मे चतुर्थ सर्ग से नवमं सर्ग तक प्रतिमुख सन्धि को दिखाया गया है ।

---

1. हम्मीर महा0 3/46
2. दशरूपक 1/17

चतुर्थ सर्ग में हम्मीर देव का जन्म होता है, जन्म के समय ही आकाशवाणी हुई कि यह बालक शक लोंगों की रक्त धाराओं से इस पृथ्वी को स्नान करवा करके उनके शिर रूपी कमलों से इसकी पूजा करेगा–

यथा – **असौ शकासृग्बाष्पूरैः संस्नाप्य धरणीमिमाम् ।**[1]

इष्टा तन्मुण्डपाथोजैरित्यासीद् व्योम्निगीस्तदा ।।

जब हम्मीर जन्म लेता हैं तो उसके जन्म के समय दिशाएँ निर्मल हो गयी शुभ वायु संचार करने लगा , आकाश र्निमल हो गया और सूर्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होने लग गया ।

यथा – **दिशः प्रसादमासेदुः सुखसेव्योववौमरूत ।**[2]

नभो र्निमलतां भेजे दिनकृद विद्युतेतमाम् ।।

माता –पिता के नेत्रों को अपने शुभ दंशन रूपी अमृत से सींचता हुआ शुभ मूर्ति वाला बालक (जिसे हम्मीर नाम दिया गया था) चन्द्रमा की तरह दिनों दिन बढ़ने लगा। कुछ दिनों में ही गुरूओ की कृपा से बिना किसी क्लेश या आयास के ही शस्त्रों और शास्त्रों के रहस्य को उसनें अपने वश में कर लिया, शस्त्र विद्या एवं शास्त्रों में निपुण हो गया ।

यथा – **दिनैः कतिपयैरेवाकृच्छ्रं गुर्वनुभावतः ।**[3]

शस्त्रशास्त्ररहस्यानि स स्ववश्यानि तेनिवान् ।।

ऐसा कोई शास्त्र, शस्त्र या प्रजा का रंजन नही था जो उसके सज्जन हदय रूपी कमल पर भ्रमवत् नही भंडराया हो। इस प्रकार हम्मीर का चरित्र बिन्दु की भाँति कथावस्तु (महाकाव्य) में फैलता (बढ़ता) जाता हैं ।

---

1. **हम्मीर महा0 4/143**
2. **वही 4/145**
3. **वही 4/150**

पञ्चम सर्ग में कवि ने वसन्त वर्णन को बड़ी कुशलता से समाहित किया है। जिससे महाकाव्य की पूर्णता में सहयोग मिलता है। छठें सर्ग में जलक्रीड़ा वर्णन एवं सप्तम सर्ग में श्रृंगार आदि के वर्णन से काव्य में पाठक को आनन्द प्राप्त होता है, काव्य सौन्दर्य भी बढता है किन्तु, इस अवान्तर कथा के कारण मूल कथावस्तु छूट जाती है। पाठक मूल कथा को छोड़कर अन्य वर्णनों में लग जाता है, फल प्राप्ति का व्यापार इन्ही वर्णनों में उलझ जाता है। अष्टम् सर्ग में पहले प्रातःकाल का मनमोहक चित्रण किया गया तथा हम्मीर के राज्याभिषेक (राज्यप्रप्ति) का वर्णन किया गया है। यहीं से कथावस्तु पुनः जोरो से चल पड़ती है।

ततश्च संवन्नव–वह्नि– वह्नि–भू (1339) हायनेमाघवलक्षपक्षे।

पौष्यां तिथौं हेलिदिने सपुष्ये दैवज्ञनिर्दिष्टबलेऽलिलग्ने।।[1]

तब 1339 संवत में माघ मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा की पुष्य नक्षत्र से युक्त रविवार को ज्योतिषयों के मतानुसार वृश्चिक लग्न में महोत्सव सहित राजा ने हम्मीर का अभिषेक कर दिया।[1]

इसी सर्ग में हम्मीर के राज्यभिषेक हो जाने से कथावस्तु बढ़ती है, जो सम्पूर्ण कथा में बिन्दु की भांति फैलती है; और अवान्तर कथा प्रसंड्ग से कथावस्तु के विच्छिन्न अंश को जोड़ती भी है। अतः यहां पर बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति है। नवम सर्ग में हम्मीर के दिग्विजय का वर्णन है जो प्रयत्न नामक अवस्था के अर्न्तगत आता है।इसके पश्चात छः गुणों को और तीनो शक्तियों को धारण करने वाले इस राजा (हम्मीरदेव) का मन निर्बाध दिग्विजय के लिये इच्छा करने लगा[1]–

अथास्य षड़गुणाँस्तिस्रः शक्तीर्भूपस्य विभ्रतः।[2]

दिग्जयायानपायाय स्पृहयालुमनोऽभवत्।।

---

1. हम्मीर 8/56
2. वही 9/1

तब ज्योतिषियों के द्वारा उचित ग्रहों के योग से युक्त शुभलग्न निकाल देने पर अपने गोत्र की पूज्य वृद्धाओं के द्वारा मंगल कामना व पूजा किये जाने के बाद पूर्व दिशा को पृष्ठ में रखकर तथा पश्चिम दिशा को सामने रखता हुआ अपने हृदय में वीर भाव का संचार करता हुआ राजा हर्म्मी:र अश्व पर आरूढ़ हो गया[1]–[2]

ततौ दैवज्ञविज्ञातलग्ने लग्नेद्धरुग्ग्रहे।[1]

वन्द्याभिर्गोत्रवृद्धाभिः कृतयात्रिकमङ्गलः।।

पश्चाद्धृतोष्णरुग्बिम्ब ऊर्ध्वाकृष्टसमीरणः।[2]

नृपस्तुरङ्गभारूक्षत् पुरस्कृतसितद्युतिः।।

अश्व पर आरूढ़ होकर नृपति हम्मीर दिग्विजय के लिये पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ नगर से बाहर निकला। कुछ ही समय में उसने चारों दिशाओं में राजाओं के लिये अपनी आज्ञा को शिरोधार्य करवा कर यह राजा (हम्मीर देव) पुनः अपनी नगरी को लौट आया। इस प्रकार यहां प्रयत्न नामक अवस्था है यद्यपि यहां किसी विशेष प्रकार का प्रयत्न नायक द्वारा नहीं किया है, तब भी यह प्रयत्न (दिग्विजय) नामक अवस्था के अर्न्तगत ही आयेगा। यहां प्रतिमुख सन्धि है।

इस महाकाव्य में पताका एवं प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति नही है। सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेश भाक्।।[3] अनुबन्ध सहित (अर्थात मुख्य कथा के साथ गौण रूप से दूर तक चलने वाले) प्रासङ्गिक वृत्त को पताका तथा एक प्रदेश में रहने वाले (अर्थात् थोड़ी दूर तक चलने वाले) प्रासङ्गिक वृत्त को प्रकरी कहते है। इस महाकाव्य में मुख्य कथावस्तु के मध्य कोई अवान्तर कथा का समावेश नहीं है। बड़े प्रसङ्ग की कथा वाले न लघु प्रसङ्ग वाले कथानक का उल्लेख मात्र तक नही है। ग्रन्थ में दसवें सर्ग से अन्त तक महिमासाहि आदि

---

1. हम्मीर महा0 9/2 2. वही 9/3

3. दशरूपक प्रथमः प्रकाशः पृष्ठ 14

का वर्णन बहुत कम मात्रा में है उसे पताका माना जा सकता है। यद्यपि यहाँ केवल प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था ही है, पताका नामक अर्थ प्रकृति का अभाव है तथापि गर्भ सन्धि के होने में शास्त्रीय दृष्टि से कोई आपत्ति नहीं है क्योकि नाट्यशास्त्र के आचार्य पताका की स्थिति वैकल्पिक मानते है।

शकराज अल्लावदीन द्वारा भेजे गये उसके भाई उल्लूखान का पराजित होकर युद्ध भूमि से पलायन करना तथा निसुरत खान की मृत्यु होना प्राप्त्याशा की स्थिति हैं। यथा–अल्लावदीन हम्मीर देव के राज्य को नष्ट करने के लिये अपने भाई उल्लूखान को सेना सहित भेजता हैं। उल्लूखान की सेना रणथम्भौर पहुंचकर फसल आदि को नष्ट करती है इसकी सूचना पाकर हम्मीर देव अपने महिमासाहि, वीरम आदि आठ योद्धाओं को युद्ध के लिये संकेत मात्र करते है तभी चौहान योद्धा युद्ध भूमि में किसी तरह उल्लूखान को पराजित करते देते हैं–

स्फूर्जद्वीर्यैर्बाहुजैर्दत्तदैन्यं दृष्ट्वा सैन्यं सर्वथाऽथात्मनीनम्।
काण्डैर्दण्डैस्ताड्यमानोऽपि जीवन्नुल्लूखानो नेशिवान् भाग्ययोगात्।।[1]

भयङ्कर वीरता वाले क्षत्रियो के द्वारा निर्वीय की हुई अपनी सेना को देखकर बाणों और दण्डो से प्रताड़ित उल्लूखान भाग्यवश जीवित बच गया और पलायन कर गया।[1] भोजदेव जो, हम्मीर के शत्रु अल्लावदीन से मिलकर तथा उसके द्वारा प्रदत्त जगरा नामक नगरी में राज्य कर रहा था उस जगरा को भी महिमासाहि एंव वीरम आदि ने चौहान हम्मीर देव का आदेश पाकर किस तरह नष्ट कर दिया

जयश्रियो मोहनमन्त्रवत् तमादेशमासाद्य नृपस्य तेऽथ।[2]
भङ्क्त्वा पुरीं तां विनियम्य भोजबन्धुं समागुः सकुटुम्बमेव।।

अब विजय लक्ष्मी के मोहन–मंत्र की तरह राजा के आदेश को प्राप्त करके वे सब चौहानयोद्धा "जगरा" नगरी को नष्ट करके और भोज के भाई " पिथम" को कुटुम्ब समेत बांध करके वापस आ गये युद्ध भूमि से भागे हुए 'उल्लू' उपनाम वाले " खान" ने किसी तरह दिल्ली पहुंचकर चौहान राज के द्वारा किये अपमान एंव सारे युद्ध वृतान्त को

---

(1) हम्मीर महा० 10/57

(2) हम्मीर 10/68

राजा अलाउदीन से कहा, तब अलाउददीन क्रोध से कांप उठा तथा, अंग, तिलक, मगध, मसूर, कलिङ्ग, बङ्ग, भट, भेदपाट, पाञ्चाल, बङ्गल, थमीम, भिल्ल, नेपाल, गुहाल, हिमाद्रि मध्य आदि देशों के सारे शकराज सेनाओं को बुलवाया। ये सारी सेनायें, निसुरत खान तथा उल्लूखान की नेतृत्व मे चौहान राजा हम्मीर के राज्य को नष्ट करने हेतु जाती हैं। चौहान सेनाओं एंव यवन सेनाओं के मध्य भयङ्कर युद्ध होता है। दूसरे दिन के युद्ध में निसुरत की किस तरह मृत्यु हो जाती है–

प्रवर्तमाने समरेऽन्यदाऽथापस्फाल गोलः शकगोलकेन।[1]

प्रभ्रश्यता तच्छकलेन मूर्ध्नि हतो व्यनेशन्निसुरत्तखानः।।

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ होने पर शकों के गोले से एक तोप का गोला टकराकर फट गया जिसके निकले हुये टुकडे से सिर पर आघात पाकर निसुरत खान विनष्ट हो गया।[1]

युद्ध में पराजित होकर उल्लूखान के युद्ध भूमि से पलायन करने से लेकर निसुरतखान की मृत्यु पर्यन्त प्राप्त्याशा नामक अवस्था है। यह गर्भ सन्धि के अर्न्तगत आता है, गर्भ सन्धि लक्षणमाह–

गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।[2]

द्वादशाङ्ग पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्तिसम्भवः।।

जहां दिखलाई पड़ने के अनन्तर अदृश्य हो गये बीज का बार–बार अन्वेषण किया जाता वहां गर्भ सन्धि होती है। इसके बारह अङ्ग होते हैं। इसमें पताका (नामक अर्थ प्रकृति) कहीं होती है, और कहीं नहीं भी होती है, किन्तु प्राप्त्याशा (नामक कार्यावस्था) होनी चाहिये।

प्रतिमुखसन्धौ लक्ष्यालक्ष्यरूपतया स्तोकोद्भिन्नस्य बीजस्य सविशेषोद्भेदपूर्वकः सान्तरायो लाभः पुनर्विच्छेदः पुनः प्राप्तिः पुनर्विच्छेदः पुनश्च तस्यैवान्वेषणमंवारं–वारं सोऽनिर्धारितै– कान्तफलप्राप्त्याशात्मको गर्भसंधिरिति । तत्र चौत्सर्गिकत्वेन प्राप्तायाः पताकाया अनियमं

---

1. हम्मीर महा0 11/100
2. दशरूपकम् 1/36

दर्शयति – "पताका स्यान्न वा' इत्यनेन। प्राप्तिसंम्भवस्तु स्यादेवेति दर्शयति– "स्यात्" इति। प्रतिमुख सन्धि मे कुछ– कुछ लक्ष्य रूप से तथा कुछ– कुछ अलक्ष्य रूप से स्थित (अर्थात् कभी पनपते कभी विनष्ट होते हुये) अतः **किंञ्चित्** प्रादुर्भूत बीज का विशेष रूप से फूट पड़ना, बड़ी कठिनाई से (फल के साथ) सामने आना , फिर नष्ट हो जाना , फिर प्राप्त होना फिर ओझल हो जाना तथा फिर बार–बार फिर उसी का अन्वेषण किया जाना यही गर्भ सन्धि कहलाती है । इसमें" फल अवश्य ही प्राप्त होगा "ऐसी आशा निश्चित नही रहती है। अर्थात् गर्भ सन्धि में कभी प्रतीत होता है कि पनपता बीज ही नष्ट हो गया यही लुका छिपी चलती रहती है। इससे कठिनाइयां भी समय–समय पर अपना प्रभाव दिखलाती रहती हैं। फलप्राप्ति के विषय में मन आशा तथा निराशा के बीच लुढ़कता रहता है[1] ।।

(क्रमशः अर्थ प्रकृतियों तथा कार्यावस्थाओं के संयोंग से संन्धियों की उत्पत्ति होती है इस सामान्य नियम के अनुसार उस गर्भ संन्धि में) पताका (नामक अर्थ प्रकृति) की स्थित संम्भवतः प्राप्त थी, किन्तु "पताका स्यान्न वा" पताका हो या न हो ऐसा कहकर यह प्रदर्शित किया गया है कि इसमें पताका का होना अनिवार्य नही है इसी तरह स्यात् प्राप्ति संम्भवः प्राप्ति संम्भव हांनी ही चाहिये ।।– ऐसा कहकर यह दिखलाया गया है कि गर्भ सन्धि में प्राप्त्याशां अवश्य ही होती है।

इस गर्भसन्धि के लक्षणानुसार यहां पताका नामक अर्थ प्रकृति नही है । इसके बारे में कहा गया है । "पताकास्यान्नवा इत्यनेन "।। इस प्रकार पताका का अभाव गर्भ संन्धि के पुष्टि में बाधक सिद्ध नही होता है। युद्ध भूमि में उल्लूखान के भागने एवं निसुरतखान की मृत्यु हो जाने पर भी रणथम्भौर राज्य (दुर्ग) की रक्षा होगी या नही; यवनों से युद्ध में जय होगी या पराजय यह सन्देह हम्मीर देव को बना रहता है। उसकी जीत सुनिश्चित होगी यह आशा दृढ़ नहीं होती है। अतः यहां प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था होने का कारण गर्भसन्धि है। हम्मीर महाकाव्य में गर्भसन्धि 10 वें सर्ग से 11 वे सर्ग तक है।

---

1. वही गर्भ सन्धि लक्षण वृत्ति पृष्ठ 55,

महाकाव्य के बारहवें सर्ग में अवमर्श सन्धि है। अवमर्श सन्धि प्रकरी नियताप्ति से बनती है, अर्थात् प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति एवं नियताप्ति नामक कार्यावस्था के संयोग से बनती है किन्तु पूर्व में लिखा गया है कि इस कथानक में पताका एवं प्रकरी नामक अर्थ प्रकृति नहीं है और इसके अभाव में सन्धि विवेचन में अवरोध नहीं होता क्योकि कहा गया है–"पताका स्यान्नवाइत्यनेव" उचित ही है। अवमर्श सन्धि का लक्षण इस प्रकार है–

क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्। [1]
गर्भनिर्भिन्न बीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।

अवमर्शनमवमर्शः पर्यालोचनं तच्च क्रोधेन वा व्यसनाद्वा विलोभनेन वा भवतिव्यमनेनार्थेन इत्यवधारितैकान्तफलप्राप्त्यवसायात्मा गर्भसन्ध्युद्भिन्नबीजार्थसम्बन्धो विमर्शोऽवमर्शः।

जहां क्रोध से दुःख से अथवा प्रलोभन से (फल प्राप्ति के विषय में) विमर्श किया जाय एवं जिसमें गर्भसन्धि के प्रस्फुटित बीजार्थ का सम्बन्ध पाया जाय, वहां अवमर्श सन्धि होती है।

सोच–विचार को ही अवमर्श अथवा पर्यालोचन कहते है। वह अवमर्श क्रोध से, दुःख या आपत्ति से अथवा प्रलोभन आदि कारणों से होता है। जहां यह फल होना चाहिये इस तरह अवश्य की प्राप्ति का निश्चय कर लिया जाता है, तथा गर्भ सन्धि में प्रस्फुटित बीज रूपी अर्थ का सम्बन्ध पाया जाता है, वहां अवमर्श नामक सन्धि होती है।

गर्भ सन्धि में बीज प्रस्फुटित हो जाता है। धीरे–धीरे फल प्राप्ति की सम्भावना बढ़ जाती है; किन्तु आगे विमर्श सन्धि में क्रोध, व्यसन तथा प्रलोभन आदि के कारण फल प्राप्ति के विषय में विमर्श (सन्देह) होने लगता है। पुनः विघ्न के हट जाने पर फल प्राप्ति का निश्चय होता है। गर्भसन्धि में फल प्राप्ति के विषय में अनिश्चय अधिक तथा निश्चय कम होता है, किन्तु विमर्श सन्धि में निश्चय अधिक एवं अनिश्चय कम होता है।

---

1. दशरूपक 1/43

नियताप्ति नामक कार्यावस्था का लक्षण इस प्रकार है–

अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।[1]

विघ्नों के अभाव के कारण जब कि फल की प्राप्ति पूर्ण निश्चित हो जाती है, तब नियताप्ति नामक अवस्था होती है।

हम्मीर महाकाव्य में जब शकराज अल्लावद्दीन अपनी सेना लेकर हम्मीर देव से युद्ध करने के लिये पंहुचता है, हम्मीर देव भी अपनी सेना लेकर युद्ध भूमि में पंहुच जाता है। दोनों सेनाएं किस तरह एक दूसरे पर क्रोध प्रदर्शित करती है–

अन्योऽन्यवीक्षणवशोल्लसन्महाकोपप्ररूढमहिमप्रसृत्वराः।[2]
वीरा रवाः प्रतिरवैश्चणादिभिर्योगैर्द्विरूक्तिमिव धातवो ययुः।।

वीर योद्धा और उनके बाद नाद–दोनो ही एक दूसरे के देखने मात्र से ही भयङ्कर क्रोध के कारण बढ़ी हुई महिमा वाले हो गये जैसे कि प्रतिरव होते हुये ही गूंज सुनाई देती है और चण प्रत्यय लगने से शब्द में कुशलता का भाव लग जाता है।[1] परस्पर युद्ध के कारण योद्धाओं के हृदय में उत्साह भरने वाले, अपनी आवाज से दिशाओं को परिपूर्ण करने वाले तूर्य–वाद्य दोनों सेनाओं के मध्य बजने लगे। योद्धागण अपने अनुरुप योद्धोओं का चयन कर किस तरह युद्ध करने लगे–

पत्तिः पदातिकमियाय सादिनं सादी रथस्थितमहो महारथी।[3]
मातङ्गयानगमनो निषादिनं द्वन्द्वाहवोऽजनि तदेति दोष्मताम्।।

तब योद्धाओं का द्वन्द युद्ध होने लगा। पैदल–पैंदल से, महारथी–महारथी से, हांथी पर सवार योद्धा–हांथी पर सवार योद्धा से, युद्ध करने लगा।[3] दोनों सेनाओं में महान युद्ध हुआ, सूर्यास्त होते ही युद्ध बन्द हो गया। योद्धा लोग किस प्रकार से स्वप्न में युद्ध प्रसङ्गों को देख–देखकर रात बिता कर प्रातः पुनः अपने राजा की आज्ञा से संग्राम भूमि में मन को लगाने लग गये अर्थात् द्वितीय दिवस का युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध में दोनों ओर के योद्धाओं के मारे जाने पर उनकी पत्नियां उनके साथ किस तरह सती हो जाती थीं–

---

1. दशरूपक 1/21
2. हम्मीर महाकाव्य 12/29
3. वही 12/33

प्रागेव मा स्म सुरवल्लभा अमुं वृण्वन्निति स्फुरितवेगविस्तराः।[1]

आलिङ्गय वल्लभमपासुमप्युरस्तन्व्यश्चितां प्रविविशुर्भुजाभृताम्।।

उधर वीरवरों की ललनायें तुरन्त अपने मृत पति का हृदय से आलिङ्गन करके चिता में प्रवेश कर जातीं थीं– यह सोंचकर कि स्वर्ग में अप्सराऐं हमसे पहले ही इनको वरण न कर लें।[1]

दो दिन तक भयंङ्कर संग्राम चलता है और पुनः सूर्य अस्ताचलगामी हो जाता है–

इति तिरस्कृतभारतसारते रणभरे स्फुरिते दिनद्वयीम्।[2]

दिनकरः प्रतिवक्तुमिवावधिं चरमभूमिधराग्रमसेवत।।

इस प्रकार महाभारत के युद्ध को तिरस्कृत करने वाले दो दिन तक युद्ध चलने पर सूर्य मानो अवधि को बताने के लिये अस्ताचल के शिखर पर चला गया।[2]

युद्ध में यवनों के कितने सैनिक एवं योद्धा मारे गसे इसका वर्णन किस भांति किया गया है–

एतस्मिन् समरे वीरा यवनानां महौजसः।।[3]

पञ्चाशीतिसहस्राणि यमावासमयासिषुः।।

इस समर में यवनों के महान् ओजयुक्त 85,000 वीर यमलोक पंहुच गये। यवनों के इतने अधिक सैनिकों के मारे जाने पर नायक हम्मीर देव की विजय निश्चित सी हो जाती है। इस प्रकार 12 वें सर्ग में विमर्श सन्धि है। क्योंकि हम्मीर देव के द्वारा फल प्राप्ति (विजय) के सम्बन्ध में प्रयत्न किया जाता है तथा फल प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है। अतः यहां पर अवमर्श सन्धि की पुष्टि होती है।

हम्मीर महाकाव्य के 13 वें एवं 14 वें सर्म में निर्वहण सन्धि है। निर्वहण सन्धि का लक्षण–

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।[4]

ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।

---

1. हमी0महा0 12/80
2. वही 12/86
3. वही 12/88
4. दशरूपकम् 1/48

निर्वहण सन्धि वह है जहां कि बीज से युक्त मुख आदि (अर्थात् मुख, प्रतिमुख, गर्भ और अवमर्श) सन्धियों में नियमानुसार विखरें हुए (प्रारम्भ आदि) अर्थो का एक प्रयोजन के लिये एक साथ समेटना पाया जाता है। (अर्थात् प्रधान प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है।)[4]

इस महाकाव्य के 13 वें सर्ग में प्रधान प्रयोजन की पूर्ति हाती है, सम्पूर्ण महाकाव्य चौहान राजा हम्मीर देव द्वारा अपने राज्य (राष्ट्र) की रक्षा हेतु अपने प्राणों का उत्सर्ग सम्बन्धी मुख्य प्रयोजन की पूर्ति हेतु रचा गया है। क्षत्रियों का धर्म है कि वे युद्ध में विजय प्राप्त कर पृथ्वी का भोग अर्थात् राज्य करे या स्वर्ग को प्राप्तकर यश की प्राप्ति करें। मुख्य उद्देश्य मुस्लिम आक्रान्ता से राष्ट्र की रक्षा है इसी रूप फल की प्राप्ति हेतु सारा प्रयास दिखाया गया है। यद्यपि सम्पूर्ण महाकाव्य हम्मीर देव की वीरता, कर्तव्यपरायणता (क्षत्रियोचित धर्म का पालन), शरणागत वत्सल्लता को व्यक्त करता है। यहां हम्मीर देव का अपने धर्म का पालन करते हुये स्वर्ग को प्राप्त करना ही फल है।

"कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धिः च"[1]

फल (कार्य) धर्म, अर्थ तथा कामरूप त्रिवर्ग है।[1] यह फल कभी तो इनमें से एक ही हो सकता है, कभी दो वर्ग कभी तीनों वर्ग; इस महाकाव्य में अपने धर्म रूप फल की प्राप्ति है। हम्मीर देव का अपने धर्म का पालन करने (राष्ट्र रक्षा) हेतु प्राणों का आत्मोत्सर्ग ही मुख्य कार्य है। इसी 13 वें सर्ग में फलागम होता है यथा–

"समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो यथोदितः" ।[2]

समस्त फल की प्राप्ति हो जाने पर फलयोग (फलागम) कहलाता है। इस लक्षण से समग्र फल को व्यक्त किया गया है जिससे निर्वहण सन्धि की पूर्णतः पुष्टि हो जाती है। क्योकि अधूरे फल तक नियताप्ति रहती है। अतः इस 13 वें सर्ग में निर्वहण सन्धि है। 14 वें सर्ग नायक हम्मीर देव के गुणों की स्तुति की गई है। इस प्रकार संक्षिप्त कथानक रहने पर भी सुगठित है। वर्णन चमत्कारों ने काव्य रूप को सरस बनाने के साथ सुगठित और संश्लिष्ट भी बनाया गया है।

---

1. दशरूपकम् 1/16 **2. वही 1/21**

पञ्चम अध्याय

पात्रों का चरित्र चित्रण

पात्रों का चरित्र चित्रण

महच्चरित्र महाकाव्य का आवश्यक तत्त्व है। कवि अपनी रचनाओं में पात्रों के आदर्श को मुख्य केन्द्र मानता है; पात्रों में उच्चादर्श प्रस्तुत कर समाज को एक नयी दिशा देने में सक्षम होता है। पात्रों में जितनी अधिक गम्भीरता, उदारता, स्निग्धता, धार्मिकता आदि गुणों की प्रकृष्टता रहेगी, पाठक काव्य के रसास्वादन में उतना अधिक आनन्द लेगा; क्योंकि पाठक काव्य के अध्ययन से स्वंय पात्रों की महनीयता अपने आप में अनुभव करनें लगता है; पात्रों के सुख–दुख को अपना समझने लगता है। पात्र जैसा–जैसा आचरण करेगा मनुष्य में उसी प्रकार अपना परिवर्तन होता जाता है। पात्रों की हंसी ही पाठक की हंसी है; पात्रों का दुख ही पाठक को गहन दुख में डाल देता है। महान कष्ट में पात्र किस भाँति आदर्श का परिचय देता है; आशा, संयम, धैर्य के बल पर कितने कठिन समय को पार करता है; मनुष्य उसी भाँति अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि कवि काव्य की रचना जहाँ यश अर्जित करने के लिए, धानार्जन के लिए, व्यवहार कुशलता के लिए, तथा लोगो को कल्याणकारी उपदेश देने के लिए करता है वहाँ सहृदय में प्रीति उत्पन्न करना भी उसका प्रथम ध्येय है क्योंकि सहृदय व्यक्ति के द्वारा काव्य आस्वाद्य तभी होगा जब पाठक को काव्य से आनन्द प्राप्त होगा और वह आनन्दभूति एक अलौकिक गुण विशेष के कारण सम्भव है। पात्रों के महान् चरित्र के द्वारा, रस के द्वारा, घटनाक्रम के द्वारा, त्याग, बलिदान के द्वारा, उदारता–गम्भीरता के द्वारा, पूरा महाकाव्य पात्रों की मुखरता पर निर्भर होता है। यही कारण है कि कवि महान् पात्रों को ही अपना विषय बनाते है। अच्छे पात्रों से ही अच्छा आदर्श प्रस्तुत करवाना है, इसीलिए काव्यशास्त्र में पात्रों के गुण विशेष का भी निर्धारण किया गया है। पात्र उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय वंश का हो या कुलीन राजा हो, या कोई सज्जन पुरूष हो, वही पात्र रखने के योग्य होता है। उसी के द्वारा ही महच्चरित्र का प्रदर्शन सम्भव है। यही कारण है कि कवि मूलग्रन्थों का आश्रय लेते हैं; जो हमारे आदर्श के प्रतीक है; जिनके आधार पर हम समय–समय पर अपने जीवन को साध्य बनाते हैं। वे हैं रामायण एवं महाभारत। इन्ही बहुप्रशंसित एवं

विशाल ग्रन्थों की महनीयता हर कवि भी स्वीकारता है। इन्ही ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं के लघु रूप को अपने बुद्धि तत्त्व एवं काव्य की सहज प्रवृत्ति से विस्तार देता है, तथा पात्रों के आदर्श को, प्रकटकर समाज में एक स्थायी कीर्ति पा लेता है।

मानवता की चरम सीमा आदर्श पुरूष में आकर विश्राम ले लेती है। युग प्रतिनिधि के रूप में अभी तक व्यतीत हुए अनन्त युगों के मर्यादा पुरूषोंत्तम हमारी ज्ञान दृष्टि के अन्तर में समाहित हो क्षण भर के लिए अपने उच्चादर्शो के चमत्कार से हमें आनन्द विह्वल कर देते हैं। प्रत्येक युग का साहित्य तत्कालीन संस्कृति और उसके आभ्यन्तर कारणों का उल्लेख करता है। रामायण पढ़कर जब हम मर्यादा पुरुषोत्तम राम की गरिमा से गौरवान्वित होने लगते हैं, तब काव्यकार और हमारे मानसतलों में समानता एवं समन्वय स्थापित हो जाता है। उसी प्रकार महाकवि नयचन्द्र–कृत हम्मीर–महाकाव्यम् पढ़कर हमारे ऊपर जो सौन्दर्यजन्य सामूहिक प्रभाव पड़ता है उसके मूल में है महाकाव्य के नायक हम्मीर का आदर्श एवं मानवता की कसौटी पर खरा उतरा पूर्ण विकसित चरित्र। काव्यकार चरित्र–चित्रण में मनोगत भावों की अभिव्यक्ति में जितना सफल हुआ है, उसकी वाह्य अवस्थाओं का भी उसने तथैव सजीव चित्रण किया है। प्रधान पात्रों से लेकर महाकाव्य के अन्य सहायक पात्रों में भी जो आदर्श चरित्र जिस सफलता, सूक्ष्मता एवं सजीवता से चित्रित किया गया है, वैसा अन्यत्र कम प्राप्त होता है। किसी भी रसात्मक साहित्य की सफलता का मुख्य स्रोत उसके पात्रों के सफल प्रस्तुतीकरण में निहित रहता है। रसात्मकता की दृष्टि से 'हम्मीर महकाव्य' वीर रस पर आधारित अतुलनीय महाकाव्य है। तदुपरान्त इनकी सफलता अवश्यम्भावी है क्योंकि इसके पात्रों का प्रस्तुतीकरण यथायोग्य रूप में हुआ है।

चरित्र–चित्रण में नयचन्द्र ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। इनकी लेखनी तूलिका से छोटे–छोटे पात्रों की भी चरित्र रेखाएँ अत्यन्त स्पष्टता और खूबी से खींची गई है। वीर– महिमासाहि, अन्धा धर्मसिंह, वेश्या धारा, स्वामिद्रोही रतिपाल खड्गग्राही भोज, विलासप्रिय–हरिराज ये सब नयचन्द्र की लेखनी से केवल चित्रित ही नहीं हुये, अपितु प्रायः सजीव हो उठे हैं। जहाँ कवि ने चरित्र नायक हम्मीरदेव के गुणों की प्रशंसा की है वहाँ उसके दुर्गुणों का भी दिग्दर्शन कराया है। काव्य को पढ़कर हम

सहज ही समझने लगते है कि क्रोध की अत्यधिक मात्रा, प्रजा, में अनुचित करों के कारण असन्तोष, आन्तरिक फूट आदि भी हम्मीरदेव के पतन के मुख्य कारण थे। स्त्रियों में देवल्ल देवी का चरित्र सबसे अधिक स्पष्ट है। नयचन्द्र ने पिता–पुत्री के पारस्परिक प्रेम और कुलगौरव की वेदी पर इस स्नेहमयी बालिका के बलिदान का अच्छा वर्णन किया है।

हम्मीरदेव (नायक)

हम्मीर धीरोदात्त प्रकृति का उच्चकुलोत्पन्न नायक है। हम्मीर में समस्त मानवीय गुण विद्यमान है।

महासत्त्वोऽति गम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।[1]

सद्वंशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्त–गुणान्वितः।।

धीरोदात्त नायक के उक्त गुणों का समन्वय हम्मीर में पूर्णतया निहित है।

हम्मीर पराक्रमी एवं साहसी व्यक्ति है। शूर वीरों में अग्रगण्य है। वह क्षत्रिय कुल में उत्पन्न महान् योद्धा है। जब राजा हम्मीरदेव दिग्विजय के लिये निकलते हैं तो उनके अनुचर नृप के ऊपर उज्जवल छत्र लगा देते हैं कि सूर्य कही राजा की कान्ति से म्लान न हो जाय –

स्वतोऽधिकौजसं वीक्ष्य मा म्लासीदेनमुष्णरुक्।[2]

इतीवास्योज्जवलं शीर्षे छत्रं छायाकरैर्दधे।।

उपर्युक्त श्लोक में हम्मीर के पराक्रम (कान्ति) का निदर्शन हैं।

---

1. दशरूपक 2/4
2. हम्मीर महा0 9/4

जब भोजराज को अपना बना हुआ जानकर यवनराज अल्लावदीन ने भोज से पूछा–बोलो! हे भोज बोलो! यह हम्मीर कैसे मेरे द्वारा शीघ्र ही युद्ध भूमि में जीता जा सकता है ?

तब अल्लावदीन के प्रश्न का उत्तर देते हुये भोजराज 'हम्मीर' की वीरता को इस तरह कहता है–

शैथिल्यं कुन्तलेषु प्रसभममुपनयन् पीड़यन् मध्यदेशं,[1]

स्थानभ्रष्टां च काञ्चीं विदधदुपचयन् काममङ्गेषु लीलाम्।

यो भूमेश्चञ्चलाक्ष्याः पतिरिव तनुते भाग्यसौभाग्य लक्ष्मीं,

सः श्री हम्मीर वीरः समर भुवि कथं जीयते लीलयैव।।

कुन्तल देश को शिथिल करता हुआ, मध्यदेश को आक्रान्त करता हुआ, काञ्जीनगर को नष्ट करता हुआ और स्वच्छन्द रूप से अङ्गरूप में अपना विस्तार करता हुआ, जो हम्मीर वीर चञ्चल आँखो वाली भूमि के पति की तरह भाग्य और सौभग्य की लक्ष्मी को विस्तृत करता है, वह कैसे खेल–खेल मे युद्ध भूमि में जीता जा सकता है ?

अश्रान्तस्राविदानोच्छलितपरिमलाकृष्टगुञ्जद्द्विरेफ–[2]

श्रेणीद्विट्कुम्भिकुम्भस्थलदलनकलाकेलिकण्डूलहस्तः।

सोदर्यो यस्य वीरव्रजमुकुटमणिर्वीरमो विश्वजेता,

सः श्री हम्मीर वीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।।

जो अपने हाँथों की खुजली मिटाने के लिये अपने शत्रुओं के हाँथियों के कुम्भस्थलो का विनाश करता है–ऐसे हाँथी, जिनके गण्ड़स्थलों से अनवरत ,मदजल प्रवाहित हो रहा है; जिस मद के सुगंन्ध से आकर्षित होकर भौंरों के झुण्ड़ गुञ्जन कर रहे हैं और जिसका 'वीरम' नामक भाई वीर समूहों का शिरोमणि एवं विश्व विजेता है। वह श्री हम्मीर वीर किस प्रकार युद्धभूमि में खेल–खेल में जीता जा सकता है।

---

1 हम्मीर महा0– 10/16

2 वही – 10/20

इस तरह क्रमशः भोजदेव शकाधिपति अल्लावदीने से नृप हम्मीर की वीरता का वर्णन करता है –

अङ्गो नाङ्गानि धत्ते कलयति न पुनर्युद्धलिङ्गं कलिङ्गः[1]
काश्मीरः स्मेरमास्यं न वहति तनुते शौर्यसङ्गं न वङ्गः।
गर्जि नो गूर्जरेन्द्रः प्रथयति पृथुधीर्यस्य कौक्षेयकाग्रे
स श्री हम्मीर वीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।।

जिसकी तलवार के आगे अंग देश का राजा खड़ा नही रह सकता, कलिङ्ग का भूपति युद्ध चिह्न धारण नही कर सकता, कश्मीराधिपति मुस्कान सहित मुख नहीं रख सकता, बंङ्गदेश का नृपति वीरता नहीं दिखा सकता और न गुर्जर देश का स्वामी ही बुद्धिमान होकर भी गरज ही सकता है वह श्री हम्मीर वीर कैसे खेल–खेल में ही युद्धभूमि में जीता जा सकता है–

यस्याग्रे नैव किञ्चिद् रपति नरपतिर्भीतिशुष्कोष्ठकण्ठो [2]
यं नाथत्यश्वनाथः प्रथितकृपणधीर्जीवरक्षामभीक्ष्णम्।
आत्मक्षेमाय मन्त्रं जपति गजपतिर्यत्कटाक्षेण दृष्टः
स श्री हम्मीरवीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।।

"जिसके सामने कोई भी राजा बोल नहीं सकता क्योंकि उसके ओष्ठ एवं कण्ठ डर के मारे सूख जाते है जिसके सामने अश्वों का स्वामी (अल्प बुद्धि वाला) भी बार–बार अपनी जीवन रक्षा की याचना करता है और जिसके कटाक्षों से देखा जाता हुआ हाथियों का अधिपति भी अपने कल्याण का मंत्र जपता रहता है, वह श्री हम्मीर वीर कैसे युद्ध भूमि में खेल–खेल में जीता जा सकता है।

---

1. हम्मीर महा० – 10/23
2. वही – 10/24

इस प्रकार हम्मीर प्रचण्ड वीर एवं साहसी थे। उनका पराक्रम अतुलनीय है।

हम्मीर क्षत्रिय (कुलीन) वंश के थे। उनका यश वैभव अत्यन्त प्रकाशमान था। वंश श्रेष्ठ था, हम्मीर चाहमान वंश के शिरोमणि है।

हम्मीर पराक्रमी होने के साथ–साथ धैर्यशाली थे। उनकी धीरता पग–पग में दृष्टव्य है। जब उनका अनुचर दुश्मन के आगमन की सूचना देता है, तब वे घबराते नहीं बल्कि मुस्कराते हुये अपने योद्धाओं की ओर देखते हैं, अर्थात् योद्धाओं को संकेत मात्र किया। **यथा –**

चरैरथोक्तारिसमागमोऽसौ हम्मीरदेवः क्षितिपालमौलिः।[1]
न्यपातयत् पर्षदि हर्षहेलामयेषु वीरेषु दृशं सभावाम्।।

इसके अनन्तर भूपालों के मुकुटमणि हम्मीरराज को चरों के द्वारा दुश्मन के समागम का समाचार दिया गया तो उसने अपनी सभा में प्रसन्नचित्त वीरों के ऊपर दृष्टिपात किया।[1]

जब हम्मीर संग्राम करने के लिये रणथम्भौर में आया, तब इस समाचार को सुनकर हम्मीर राजा ने अपने दुर्ग के ऊपर छाजले (सूप) बंधवा दिया। शकाधिपत बंधे हुए। सूप को देखकर, मुस्कराकर एवं विस्मय युक्त नेत्र वाले शकाधिपत्ति ने इस (सूप) बाधने का कारण पूछा, तब हम्मीर ने कहा; खूब वस्तुओं के संचय के कारण घर के पूर्ण होने पर स्तूपों का संचय भार के लिये क्यों होता है इस बात से प्रसन्न होकर अल्लावदीन ने हम्मीर से कहा मै – हे हम्मीर राज! मैं तुम्हारे ऊपर संतुष्ट हूँ। हे वीर! इच्छित वस्तुमांग लो – तब हम्मीर छत्रियोत्तम युद्ध का प्रस्ताव रखता है।

---

1. हम्मीर महा0 – 10/33

यथा –

क्षत्रोत्तमोऽथ निजगाद यद्यदस्तर्हि प्रयच्छ समरं दिनद्वयीम्।[1]

आयोधनादपरमत्र दोष्मतां नो वाञ्छितं किमपि वल्गु वल्गति।।

अब क्षत्रियोत्तम हम्मीरराज ने कहा– 'यदि ऐसा ही है तो तुम दो दिन तक हमसे युद्ध करो। हम बलशालियो के लिये युद्ध के अतिरिक्त और क्या चाहिये जो व्यर्थ बकवाद करें।[1]

उपर्युक्त श्लोक में दृष्टव्य है कि हम्मीर राज स्वयं युद्ध को आमंत्रित करते है, जब कि अन्य नृपगण युद्ध से भयभीत होते है। इससे हम्मीर के धैर्य एवं साहस का परिचय मिलता है।

वीरता, धैर्य, कुलीनता, के साथ–साथ मनुष्य में प्रभावशाली तेजोमय व्यक्तित्व होना आवश्यक होता है। हम्मीरदेव प्रखर व्यक्तित्व वाले नृप थे। उन्होने कभी भी रणभूमि में शत्रुगणों को पृष्ठ नही दिखाया। सुहृदमन वाले परधन, दूसरे की स्त्री, द्रोह मोह से रहित, सज्जनों के हितकारी, अपने पवित्र उच्च चरित्र से सम्पूर्ण विश्व को स्वभावतः पवित्र करते है।

हम्मीरदेव जब दिग्विजय करने के अनन्तर नगर में प्रवेश करने है तो पुरजनों का अनुराग उन्हे देखने के लिये उमड़ पड़ता है।[1] यथा –

अमान् पुरान्तरे पौररागाम्भोधिर्नृपागमे।[2]

वेल्लद्रक्तध्वजव्याजाद् दधावुद्वेलतामिव।।

राजा के आने पर नगर में मानों पुरजनों के अनुराग का समुद्र प्रवेश कर गया और वह उमड़ती हुई लाल–लाल ध्वजाओं के बहाने से मानों उमड़ने लग गया।

नृपागमन पर नागरिकों के द्वारा उत्सव की इच्छा से प्रत्येक द्वार पर उठाये गये कलश भी भवन–लक्ष्मियों के स्तनों की भांति शोभा दे रहे थे।[2]

---

1. हम्मीर महा0 – 12/6
2. हम्मीर महा0 – 9/49

यथा– उत्तम्भिता प्रतिद्वारं पौरैरुत्सववाञ्छया।[1]

कलशा रेजिरे सद्मश्रीणामुरसिजा इव।।

सब ओर से बजते हुये तूर्य (बाजों) की ध्वनि से मानो बुलाई हुई स्त्रियाँ भी अन्य कार्यो को छोड़कर इस राजा को देखने को दौड़ पड़ी।[1]

स्फूर्जत्तूर्यावलीध्वानैराहूता इव सर्वतः।[2]

त्यक्तान्यकार्या नार्योऽथ द्रष्टुमेनं दधाविरे।।

उनके आगमन को सुनकर सम्पूर्ण पुर वासी उमड़ पड़े। स्त्रियाँ तो इतनी लालायित हो उठीं कि उन्हें आभूषण धारण करने की प्रक्रिया ही विस्मृत हो गयी।[2] कोई स्त्री एक कान में कुण्डल धारण करके दूसरा कुण्डल हाथ में लिये हुये चल देती है; किसी स्त्री के हाथ में आधा पान का बीड़ा सुशोभित था। जल्द बाजी में कोई स्त्री बिना बाँधी हुई नीबीं बन्धन को (नाड़े को) एक हाथ से रोकर प्रस्थान करती है, कोई युवती तो शृंगार करने वाली दासी के हाथ से अपने पैर को खींचकर चलदी थी। कोई तरुणी बाये अंगों के आभूषणों को दाहिने अंग में पहन लेती है; उसकी शोभा निम्न श्लोक में दृष्टव्य है। **यथा** –

सव्याङ्गभूषणं सव्येतराङ्गे बिभ्रती परा।[3]

साम्यं मिथोऽनयोरेव स्माहेव जितविश्वयोः।।

हम्मीरदेव की सुन्दरता अलौकिक थी। उन्हे जो देखता था वह अपने मन में एक अनोखी कल्पना करने लगता था। स्त्रियों के मन में विकार हो जाता था। उन्हे पाने की चेष्टा हर पतिब्रता स्त्री को भी हो जाती थी। नृप हम्मीर एक धार्मिक स्वभाव का व्यक्ति था। उसके राज्य में महान् धनाढ्य व्यक्ति भी अहिंसा धारण करते थे एवं सबकी मंगल कामना मे रत थे तथा कभी दुःखी नहीं रहते थे; यह अदभुत बात थी।

अहिंसाटोपमाबिभ्रद्विलसत्सर्वमङ्गलः।[4]

महेश्वरोऽपि तद्राज्ये न विषादी जनोऽद्भुतम्।।

---

1. हम्मीर महा0 9/53. 2 वही9/54

3 वही 9/62, 4 वही 9/75

दिग्विजय करने के अनन्तर विश्वरूप नामक राजपुरोहित के कहने पर नृप हम्मीरदेव ने यथा विधि कोटि यज्ञों को करवाया।

हम्मीरदेव एक बहुत ही आदर्शवादी और सत्त्वशील पुरूष है। वह धर्मात्मा है, पुण्यमूर्ति है, कुटुम्ब–वत्सल है, प्रजाप्रिय है, अपने पूर्वजों के गुणों का पूजक है; अपनी कुल मर्यादा का रक्षक है; अपने धर्म और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य का उसे पूर्ण ज्ञान है, स्वामी और सेवक के संबन्धों का उसे यथार्थ ज्ञान है; अपने वचन के पालन में वह पूरा सावधान है; किसी के प्रति अन्याय न हो इसका अच्छी तरह खयाल रखता है और शरणागत विधर्मी–जनों के साथ भी वह आत्मीय भाव का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कवि नयचन्द्र ने हम्मीर के ऐसे अनेकानेक उदात्तगुणों से आकृष्ट होकर ही अपनी कवि प्रतिभा को सफल करने की पुण्य आकाँक्षा से प्रेरित होकर इस महाकाव्य की रचना की। कवि ने अपने काव्य नायक के उक्त सभी गुणों का प्रसंगोपात्त वर्णन बहुत ही उत्तम रूप से किया है। इस वर्णन में न कहीं कवि सुलभ मिथ्या स्तुति है, न अमानवीय भावों का ही कल्पित चित्रण है, यथाशक्य और यथाज्ञात ऐतिह्य तथ्यों का वर्णन देना ही कवि का मुख्य उद्देश्य रहा है।

हम्मीर में तृष्णा नाम मात्र भी नहीं है, क्योंकि जब हम्मीरदेव के पिता (राजा) जैत्रसिंह, हम्मीरदेव को राज्य सौपते है तो हम्मीरदेव राज्यलक्ष्मी को स्वीकार नहीं करता और कहता है कि हे राजन! तुम्हारे चरण–कमलों में ही सद्सत का विवेक रखकर नृपत्व की इच्छा करने वाले मेरे लिये तो राज्य नहीं लेना ही अधिक हर्ष के लिये है। फिर राज्य तो स्पष्ट कलंक प्रदान करने वाली वस्तु है।

उदाहरण – त्वत्पादपद्मे सदसद्विवेककृद् राज्यहंसत्वमभीप्सतो में।[1]

हर्षाय सुव्यक्तकलङ्ककारि राजन्नराजत्वमिदं कदाचित्।।

---

1. हम्मीर महा० 8/52

तत्कालीन यह व्यवस्था थी कि राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य लक्ष्मी का अधिकारी होता था किन्तु हम्मीरदेव अपने पिता का मध्यम पुत्र था इस कारण वह नृपत्व को स्वीकार नहीं करता और अपने पिता से कहता है कि "फिर ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी इस मध्यम पुत्र को राज्य लक्ष्मी देय नहीं है यह जानते हुये भी आप राजनीति के पथ वाली इस राज लक्ष्मी को आप मुझे क्यों देना चाहते है।[1]

उदा0 – ज्येष्ठे तनूजे सति राज्यलक्ष्मीर्देया कदाचिन्न किलेतरस्मै।[1]
जानन्नपीत्थं नयवर्त्मसंस्थां मह्यं कथं दित्सति तामधीशः।।

राजा के पुण्यों के प्रभाव से ब्राह्मण श्रेष्ठों ने उसी प्रकार से निर्विघ्न यज्ञ को सम्पन्न कर दिया जिस प्रकार से तपस्वी लोग संसार सागर को पार कर जाते हैं।

यथा – नृपपुण्यप्रभावेण निःप्रत्यूहं द्विजेश्वराः।
ययुः क्रतुक्रियापारं भवपारं तपस्विवत्।।[2]

हम्मीरदेव दान क्रिया में भी अग्रगण्य थे। उनकी दान वीरता प्रसिद्ध थी। यज्ञ सम्पादनोपरान्त नृप हम्मीर ने ब्राह्मणों को करोड़ों स्वर्ण मुद्रायें एवं अक्षय सम्पदा वाली जमीनें सुन्दर लक्षणों वाली गायें दक्षिणा के रूप में दान दे दी। नृप के द्वारा दिये गये दान को पाकर ब्राह्मण (पुरोहित) कितने आनन्दित थे इसकी शोभा निम्न श्लोक में दृष्टव्य है–

नृपविश्राणितस्वर्णकूटेषु नटतो द्विजान्।[3]
निरीक्ष्य निर्जरा मेरूक्रोडक्रीड़ामंद जहुः।।

राजा के दिये हुये स्वर्ण के ढ़ेरों पर नाचते हुये ब्राह्मणों को देखकर देवता लोगों ने मेरू पर्वत की गोद में होने वाली क्रीड़ा के गर्व को भी त्याग दिया।

यहाँ पर राजा हम्मीर ने स्वर्णदान करके याचकों को इस प्रकार से सन्तुष्ट कर दिया जिससे कि उन्हे छोड़कर के समस्त निर्धनता दानियों के पास चली गई। (दानदेकर समस्त राज्य कोष खाली कर दिया।)

---

1. हम्मीर महा0 8/53
2. वही 9/92
3. वही 9/94

इहैष स्वर्णदानेन तथाऽतूतुषदर्थिनः।[1]

तान् विहायोच्चकैर्दातृनु पास्थित यथाऽर्थिता।।

हम्मीर शरणागत वत्सल है अच्छी मित्रता करना जानता है शरण में आये महिमासाहि आदि तीनों मुस्लिम पठानों का अच्छा सम्मान करता है अल्लावदीन के मांगने पर उनको (तीनों पठान योद्धाओ) को देने से इंकार कर देता बल्कि युद्ध करना पसन्द करता है। मित्रता में ऊँच नीच का कोई भेदभाव नहीं होता।

अपने नेत्र द्वय से सौन्दर्य की लक्ष्मी के भाजन उस हम्मीर के सौन्दर्य का पान करके कौन–कौन सी कामिनियाँ उसे मन में पति नही बनाना चाहती थी सब स्त्रियाँ उसे पति रूप में चाहती थी।[2]

यथा–

दृग्द्वन्द्वपेयसौंदर्यश्रीणामेकं तमास्पदम्।[2]

दृष्ट्वाऽवाञ्छन् पतीकर्तुं कामिन्यःका न मानसे।।153

हम्मीर निम्न श्लोक में कवि नयचन्द्र ने हम्मीर की युद्ध कुशलता का वर्णन बड़े उत्कृष्ट रूप में किया है।

संयत्येकोऽपि हम्मीरः परो लक्षत्वमाश्रयत्।[3]

व्योमासिकृत्तैर्द्विड्वक्त्रैः पद्माकरमिवाकरोत्।। 13/211

युद्ध में अकेले ही हम्मीर ने लाखों योद्धाओं का संहार कर दिया और तलवार से काटे हुये शत्रुमुण्डों से उसने सारे आकाश को मानों कमलों का सरोवर बना दिया था।[3]

सहृदय कवि नयचन्द्र ने विशद रूप में नायक हम्मीरदेव के व्यक्तित्वं के विभिन्न पहलुओं – पराक्रम, कर्तव्यपरायणता, गम्भीरता, दृढ़निश्चय, मित्रता, सौन्दर्य क्षमाशीलता आदि गुणों पर ध्यान रखते हुये महाकाव्य के अन्तर्गत समाहित किया है।

---

1. **हम्मीर महाकाव्य – 9/95, 4/153**
2. **हम्मीर महाकाव्य – 13/221**

वीरम

हम्मीर महाकाव्य मे वीरम का वर्णन चतुर्थ, दशम एवं त्रयोदशः सर्ग मे किया है वीरम नृप जैत्रसिंह का पुत्र तथा नायक हम्मीर का लघु भ्राता है। यद्यपि हम्मीर महाकाव्य में वीरम का वर्णन बहुत कम है किन्तु इस चरित्र ने महाकाव्य के सौन्दर्य में यथोचित वृद्धि की है। वीरम हम्मीरदेव के राज्य में श्रेष्ठ योद्धाओं में से एक था। वीरम अन्य पात्रों की अपेक्षा कम नहीं है। वीरम त्रिकालज्ञ, राजनीतिज्ञ, शास्त्रविद् एवं विद्वान भी था। उनका अल्प समय के लिए महाकाव्य में समाहित होना पाठक को झकझोर देता है।

वीरम का परिचय कवि नयचन्द्र नें चतुर्थ सर्ग के निम्न श्लोक में वर्णित किया है–

हम्मीरादितरावपि क्षितिपतेर्जैत्रस्य पित्र्यानुजौ [1]

जज्ञातेऽङ्गरुहौ गुहाविव जगज्जैत्रप्रतापोदयौ।

आद्योऽभादनयोर्नयोदयदलद्वल्लीवसन्तः सुर–

त्राणोऽन्यः परवीरदारणरणारम्भप्रभो वीरमः।।[1]

जैत्र सिंह राजा के हम्मीर के अतिरिक्त दो पुत्र और थे। एक हम्मीर से बड़ा तथा एक छोटा जो कि स्वामिकार्तिकेय की भाँति संसार विजयी शक्ति वाले थे। इनमें से प्रथम राजनीति निष्णात सुरत्राण ज्येष्ठ भ्राता और दूसरा शत्रुवीर विदारण में कुशल वीरम लघु भ्राता था।

वीरम एक श्रेष्ठ योद्धा था। भोजदेव स्वयं हम्मीरदेव के शत्रु अल्लावदीन से उसकी वीरता का गुणगान करता है जो निम्नश्लोक में दृष्टव्य है।

अश्रान्तस्राविदानोच्छलितपरिमलाकृष्टगुञ्जदद्विरेफ–[2]

श्रेणीद्विट्कुम्भिकुम्भस्थलदलनकलाकेलिककण्डूलहस्तः।

सोदर्यो यस्य वीरव्रजमुकुटमणिर्वीरमो विश्वजेता

सः श्री हम्मीरवीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।।[2]

---

1. हम्मीर महा0 4/159
2. वही 10/20

जो अपने हाथों की खुजली मिटाने के लिये अपने शत्रुओं के हाथियों के कुम्भ स्थलों का विनाश करता है – ऐसे हाथी जिनके गण्ड स्थलों से अनवरत, मदजल प्रवाहित हो रहा है जिस मद के सुगन्ध से आकर्षित होकर भौंरो के झुण्ड गुञ्जन कर रहे है जिसका वीरम नामक भाई वीर समूहों का शिरोमणि एवं विश्व विजेता है वह श्री हम्मीर वीर किस प्रकार युद्ध भूमि में खेल खेल में जीता जा सकता है।

युद्ध भूमि में वीरम किस तरह शत्रु सेना को आक्रान्त कर देता है प्रस्तुत श्लोक से स्पष्ट है –

यथा – विशिखान् विकिरन् भूरीन् ध्वानयंश्चापमण्डलम्।[1]
क्षणात् स वीरकोटीरो व्याकुलम् द्विट्कुलं व्यधात्।।

प्रचुर मात्रा में बाण बरसाते हुए और धनुष की ध्वनि करते हुए उस वीर श्रेष्ठ 'वीरम' ने क्षण भर में ही शत्रु समूह को व्याकुल कर दिया। स्वयं अल्लावदीन ने वीरम की वीरता की प्रसंशा की है। वीरम एक श्रेष्ठ योद्धा था।

वीरता के साथ वीरम आज्ञा पालक भी था भ्राता हम्मीरदेव के साथ धृष्टता करने वाले जाहड़ का शिर, हम्मीरदेव के आदेश मिलते ही क्षण भर में काट देता है।

यथा – उक्तो निदेशं देहीति श्री हम्मीरेण वीरमः।[2]
कूष्माण्डवच्छिरस्तस्य छित्त्वा भूमौ व्यलोडयत्।।

"मुझे आदेश दो" ऐसा कहने पर श्री हम्मीर के आदेश से वीरमदेव ने कद्दू की तरह उसका (जाहड़ का) सिर काट कर पृथ्वी पर डाल दिया।[2]

इससे ज्ञात होता है कि वीरमदेव अपने अग्रज के आदेश को शिरोधार्य करने में तनिक भी विलम्ब नहीं करते है।

वीरमदेव एक राजनीतिविद् भी थे। उनको राजनीति का अच्छा ज्ञान था। रतिपाल जब शत्रु से मिलकर वापस लौटता है। तब उसके मुख से मदिरा की दुर्गन्ध आती है इससे वीरम जान लेता है कि रतिपाल शत्रु से मिल चुका है।

---

1. हम्मीर महा0 13/200,
2. वही 13/195

यथा – दाक्ष्याद् विज्ञायते नैनं संगतं शत्रुभूपतेः।[1]

नृपं विज्ञापयामास वीरमो रहसि स्थितम्।।

तब "वीरम" ने राजा से एकान्त में चतुरता पूर्वक कहा कि यदि देखा जाय तो यह मालूम पड़ता है कि इसने शत्रु राजा से मेल तो नहीं कर लिया है।[1]

आगे पुनः अपनी बात को पुष्ट करते हुए वीरमदेव ने हम्मीर से इस प्रकार कहा–

निर्यतोऽस्य मुखाद्! राजन्! मदगन्धस्तथा ययौ।[2]

जाने यथैष पापीयान् निश्चितं संगतो द्विषः।।

हे राजनः! बाहर निकलते समय इसके (रतिपाल के) मुख से मदिरा की गंध निकली इससे मुझे लगता है कि यह पापी निश्चित रूप से शत्रु से मिल गया है।[2]

कवि नयचन्द्र ने वीरम के मुख से मदिरा पीने वाले व्यक्ति की निन्दा कितनी चतुराई से कराया जिससे वीरम का व्यक्तित्व और निखर गया है। वीरम मद्यप की किस तरह आलोचना निम्न श्लोक में की है –

अकृत्यकरणागम्यगमनाभक्ष्य भक्षणात्।[3]

मद्यं विशिष्यते यस्मादस्मात् संपद्यते त्रयम्।।

जिस व्यक्ति का मद्य ही विशेष पेय है उसमें ये तीनों ही दुर्गुण आ जाते है। वह अकरणीय कार्य भी कर डालता है, न जाने योग्य स्थान पर भी जा सकता है और अभक्ष्य वस्तुएं भी खा सकता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वीरम को समाज का अच्छा ज्ञान था वह दूरदर्शी था।

वीरम सभी कार्यो को निःस्वार्थ भाव से सम्पादित करता है तृष्णा उसको स्पर्श भी नहीं कर पाती है, क्यों कि हम्मीरदेव के द्वारा राज्य दिये जाने पर भी उसे स्वीकार नहीं करता। वह राज्य लेना पाप समझता है जो निम्न श्लोक में दृष्टव्य है–

यथा – राज्यार्थी सोदरं हित्वा वीरमः स्थितवानिति।[4]

जनापवाद भीतेन वीरमेण तिरस्कृतम्।।

---

1. हम्मीर महा० – 13/92, 93, 95, 190

"वीरम" के द्वारा इस जनापवाद के डरसे राज्य लेना स्वीकार नहीं किया गया कि राज्य की इच्छा करने वाले वीरम ने अपने भाई को मारकर अपनी स्थिति पक्की कर ली।

उपर्युक्त के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वीरम एक श्रेष्ठ योद्धा राजनीतिविद्, दूरदर्शी, आज्ञापालक, तृष्णारहित पात्र था। उसका चरित्र निखरा एवं उज्जवल था। उसका चरित्र पाठक को अनायास आकर्षित करता है। वीरम युद्ध भूमि में शत्रुओ से संग्राम करते हुये स्वर्ग को वरण कर लेता है किन्तु शत्रु के सम्मुख झुकता नहीं। वह क्षत्रिय वंश का रक्षक तथा क्षत्रियोचित धर्म का पालक भी है।

वीरम देव युद्ध भूमि में किस तरह सुशोभित होता है इसकी छटा निम्न श्लोक में दृष्टव्य है –

एकस्तस्य नृपस्याग्रे वीरमौलिः सः वीरमः।[1]

बभौ चम्पाधिपः प्रौढः कौरवाधिपतेरिव।। 199।।

तब राजा हम्मीर के अग्रभाग में वीर श्रेष्ठ, तथा युद्ध कला में कुशल चम्पा का राजा 'वीरमदेव" वैसे ही शोभा देता था जैसे कि कौरव राज दुर्योधन के आगे अंग देश का राजा कर्ण।

---

1. हम्मीर महा0 13/199

◈ ❧ ◈

"महिमासाहि"

हम्मीर महाकाव्य में 'महिमासाहि' का वर्णन दशवें एवं तेरहवें सर्ग में किया गया है। महिमासाहि मुंद्गल (मंगोल) योद्धा था। यद्यपि महिमासाहि आदि चारों भाई पठान योद्धा काबुल प्रदेश के निवासी थे किन्तु म्लेच्छों से त्रस्त होकर हम्मीरदेव के राज्य में आकर (उनके आश्रय में) वस गये थे।

'महिमासाहि' की वफादारी तथा ईमानदारी पाठकों के लिये प्रेरणा स्रोत है। 'महिमासाहि' का वर्णन मात्र दो सर्गों में है किन्तु उसका चरित्र पाठको को इतना प्रभावित करता है जितना अन्य पात्रों का नहीं। उसमें एक सच्चे मित्र के लक्षण है मृत्यु पर्यन्त हम्मीरदेव का साथ नहीं छोड़ता और हम्मीर के प्राणों की रक्षा के लिये अल्लावदीन के साथ युद्ध करते हुये अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देता है किन्तु रणभूमि से पलायन नहीं करता। 'महिमासाहि' धनुष विद्या में अर्जुन की भाँति कुशल था।

'महिमासाहि' अपने तीन भ्राताओं सहित हम्मीरदेव की सभा में किस तरह सुशोभित होता है इसका वर्णन निम्न श्लोक में दृष्टव्य हैं।

परीतो महिमासाहिस्त्रिभिरप्यनुजन्मभिः।
व्यक्ततामभजत्ः तत्र परमात्मा गुणैरिव।। 12।।[1]

वैसे ही तीनों गुणों से युक्त परमात्मा की भाँति तीनों लघु भ्राताओं सहित 'महिमासाहि' भी वहाँ स्पष्ट नजर आ रहा था। 'महिमासाहि' हम्मीरदेव के योद्धाओं में से एक श्रेष्ठ योद्धा था। भोजदेव जब हम्मीरदेव के राज्य को छोड़कर शत्रु अल्लावदीन से मिलकर 'जगरा' नामक नगरी में निवास (राज्य) करता है; किन्तु 'महिमासाहि' को भोजदेव का यह कार्य अच्छा नहीं लगता और हम्मीरदेव द्वारा संकेत मिलते ही जगरा नगरी को नष्ट कर देता है तथा भोजदेव के भ्राता को बन्दी बना लेता है इसका वर्णन स्वयं भोजदेव अल्लावदीन से करता है – जो निम्न श्लोक से स्पष्ट है –

हम्मीरवीरनुन्नो महिमासाहिः स वीरकोटीरः।
हत्वा जगरां बध्वा सपरिच्छदमेव सोदरमयासीत्।। 74।।[2]

हम्मीर राज से प्रेरणा प्राप्त करके वह वीर शिरोमणि 'महिमासाहि' जगरा नगरी

---

1. हम्मीर महा0 13/12, 2. हम्मीर महा0 10/74

को नष्ट करके कुटुम्ब समेत मेरे सहोदर को बांध कर ले गया।[2]

"महिमासाहि" एक श्रेष्ठ धनुर्धर था । धारा देवी नामकी नर्तकी को नृत्य करते हुए जब शत्रु धनुर्धर उड्डान सिहं द्वारा बाण से वेध दिया जाता है इससे क्रुद्ध होकर 'महिमासाहि' अल्लावदीन को मारने को उद्यत होता है किन्तु हम्मीरदेव के द्वारा मना किये जाने पर उड्डान सिहं को तुरन्त बाणो से वेध कर मार डालता है –

शकेशवेध्येऽनासाद्यादेशं दूनमनास्ततः।

हत्वा तं महिमासाहिर्धिगित्यौज्झद् धनुः करात्।। 37।।[1]

शकराज को बेध देने का आदेश नही मिलने पर दुःखित चित्त हुए। महिमासाहि ने तब उसे (उड्डान सिंह) को मारकर धिक्कारते हुए धनुष को छोड़ दिया ।[1]

युद्ध भूमि में महिमासाहि आदि चारो मुद्गल पठान किस तरह सुशोभित होते है, तथा उनके वीरता का वर्णन निम्न लिखित श्लोक में दृष्टव्य है –

चत्वारोऽपि व्यराजन्त मुद्गलास्ते स्फुरद्बलाः ।

चतुरंगमपि द्वेषिबलं जेतुमिवोद्यताः।।[2]

चारो बलशाली मुद्गल महिमासाहि आदि चारो पठान योद्धा भी मानो शत्रु की चतुरंगिणी सेना को जीतने को उद्यत से शोभा दे रहे थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि महिमासाहि एक श्रेष्ठ योद्धा था।

महिमासाहि एक स्वाभिमानी तथा वफादार मुगल पठान है। वह पूरा जीवन हम्मीरदेव के राज्य में बिता देता है, किन्तु जब अल्लावदीन द्वारा आक्रमण निश्चित हो जाता है तब हम्मीरदेव महिमासाहि को कहा –

यूयं वैदेशिकास्तद् वः स्थातुं युक्तं न सापदि।

यियासा यत्र कुत्रापि ब्रूत तत्र नयामि यत् ।।[3]

"तुम विदेशी हो अतः तम्हे विपत्ति वाले स्थान मे रहना उचित नही है । जहाँ कही भी जाने की तुम्हारी इच्छा हो तो बोलो मै तुम्हे वही ले जाऊं।[3]

राजा हम्मीरदेव के इस तरह के वचनो को सुनकर 'महिमासाहि' क्रोध से जल उठता है जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है–

---

1. हम्मीर महा0 – 13/37, 2. वही 13/204, 3. वही 13/151

यथा – नृपस्य वचसा तेन प्रासेनेव हतो हृदि।

मूर्च्छया प्रपतन्नुच्चैरवष्टब्ध इव क्रुधा।।[1]

उस राजा के वचन से मानो भाले से छिदे हुये हृदय से मूर्च्छा से मानो महिमासाहि गिर गया और उसे बड़ा क्रोध आया।[1]

महिमासाहि विपत्ति में भी हम्मीरदेव का साथ छोड़कर कही अन्यत्र नहीं जाना चाहता किन्तु हम्मीरदेव के द्वारा उसे विदेशी कहा जाता है तथा उसे सुरक्षित स्थान में जाने की बात कही जाती है तो वह घर जाकर अपनी तलवार से अपने कुटुम्ब का वध स्वयं कर देता है ताकि उसका कोई सदस्य शत्रु के हाथ न लगे ।

यथा – एवमस्त्विति जल्पाको महिमाऽभ्येत्य मन्दिरम् ।

कुटुम्बमसिसात् कृत्वा नृपं गत्वेदमब्रवीत्।।[2]

"ऐसा ही होवे" ऐसा कहकर महिमासाहि अपने घर जाकर अपने समस्त कुटुम्ब को तलवार के घाट उतार कर राजा के समीप आकर यो बोला।[2]

महिमासाहि अपने समस्त कुटुम्बी जनो का सिर काटकर राजा के पास आकर नृप को अपनी पत्नी से मिलने के बहाने अपने घर ले जाता है। उसके घर जाकर उसके आंगन को कुरूक्षेत्र की भांति देखा –

असृक्पूरे शिरांसीह शिशूनां योषितामपि ।

तरन्त्यवेक्ष्य मूर्च्छालः क्ष्मापालः क्ष्मातलेऽपतत्।।[3]

रक्त के तालाब में शिशुओं के और स्त्रियो के भी तैरते हुए शीशो (सिरो) को देख कर राजा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।[3]

महिमासाहि एक साहसी योद्धा है। नृप हम्मीर स्वयं अपनी आखों से कुटुम्ब के कटे हुए सिरो को देखकर, विलाप करते हुए महिमासाहि के यश, वीरता, क्षत्रियव्रत के पालन, वफादारी आदि गुणों की प्रंशसा स्वयं अपने उन्मुक्त कण्ठ से करता है, जो अग्र श्लोकों में दृष्टव्य है–

---

1. हम्मीर महा0 15/152,

2. वही 13/153,

3. वही 13/161

हा कम्बोज कुलाधार! हा कीर्तिकुलमन्दिर!।[1]

हाऽनन्यजन्यसौजन्य! हा धन्यतमविक्रम!।। 163

हा क्षत्रैकव्रतागार! हा विश्वजनवत्सल!।[2]

कथंकारं भविष्यामि प्राणदोऽप्यनृणस्तव!।। 164

"हाय! काबुल प्रदेश के कुलो के आधार महिमासाहि! हाय यशसमूह के आधार (मन्दिर)। हाय क्षत्रिय व्रत के पालन करने वाले! हाय संसार भर के मनुष्यों के लिए वात्सल्य रस प्रवाहित करने वाले! मै तुम्हारा प्राण देने वाला राजा होकर भी कैसे तुमसे उऋण हूँगा।[2,3]

कम्बोज देश (काबुल) के कुल रूपी समुद्र को प्रवधिर्त (ज्वार के कारण) करने के लिए चन्द्रमा के समान और निश्चल वीरता के धनी और स्वाभिमान के निकेतन अफगान सरदार महिमासाहि का वर्णन भी कैसे किया जा सकता है उसने केवल हम्मीर वीर को छोड़कर प्रणान्त हो जाने पर भी दुश्मन के सामने कभी अपना सिर नही झुकाया ।

श्री काम्बोजकुलाब्धिवर्धनविधुर्निर्व्याजवीरव्रतोऽ–

हङ्कारैकनिकेतनं स महिमासाहिः कथं वर्ण्यण्ते।

हित्वैकं तमलक्ष्यमक्षितनयं हम्मीर वीरं तथा

प्राणान्तेऽपि पुरः परस्य न पुनर्यो नानमत् स्वं शिरः।।[3] 14/19

नृप हम्मीर महिमासाहि के प्रेम आदि गुणों से प्रभावित होकर महिमासाहि की श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए स्वंय को नीच तथा महिमासाहि को उत्तम व्यक्ति कहता है जो निम्न श्लोम में दृष्टव्य है –

यथा– मत्तो नैवाधमः कोऽपि त्वत्तो नैवोत्तमः परः।[4]

अध्यायं मन्दधी स्तादृगीदृक् प्रेम्ण्यपि यत् त्वयि।। 13/165

"मुझसे अधिक कोई भी व्यक्ति नीच नहीं है और तुमसे अधिक अन्य कोई भी व्यक्ति उत्तम नही है मुझ मन्द बुद्धि ने ऐसा कभी सोचा नही था कि तुम्हारा मेरे ऊपर इतना प्रेम है।[4]

---

1. ह0 म0 13/161, 2. वही 13/163, 3. वही 13/164, 4. वही 13/165

उपरोक्त के अध्ययन से स्पष्ट है कि महिमासाहि एक पराक्रमी, साहसी, स्वाभिमानी, व्यक्ति था वफादारी उसमें अत्यधिक थी मृत्यु पर्यन्त वह राजा हम्मीरदेव का साथ नही छोड़ता। वह क्षत्रिय धर्म का निर्वाहक है। उसका व्यक्तित्व निखरा है वास्तव में महिमासाहि का चरित्र आदर्श व्यक्तियों के लिये प्रेरणा स्रोत है।

देवल्ल देवी

हम्मीर महाकाव्य नायिकाविहीन महाकाव्य है। हम्मीर महाकाव्य में स्त्री पात्र बहुत कम है। केवल राजा हम्मीरदेव की पुत्री देवल्ल देवी, रानियाँ एवं नर्तकी धारा देवी कुछ समय के लिये पाठकों के सम्मुख आतीं हैं यद्यपि नर्तकी धारा देवी तथा रानियों का वर्णन नाम मात्र का है, स्त्री पात्रों में केवल देवल्ल देवी प्रमुख है।

देवल्ल देवी का वर्णन 11वें सर्ग के 60 वें श्लोक एवं 13वें सर्ग के कतिपय (कुछ) श्लोकों में किया गया है। जो बहुत कम है किन्तु देवल्ल देवी का चरित्र इतना उत्कृष्ट कोटि का है कि पाठक को बलात् आकृष्ट कर लेता है। देवल्ल देवी एक अनुपम सुन्दरी, सुशील, सुयोग्य, दूरदर्शी एवं नीतिविद् राजकुमारी हैं। देवल्ल देवी का चरित्र भारतीय युवतियों के लिये अनुकरणीय है देवल्ल देवी रणथम्भौर के नृप हम्मीरदेव की पुत्री है।

शकेन्द्र अल्लावदीन हम्मीरदेव की पुत्री देवल्ल देवी को माँगता है तो देवल्ल देवी इस आत्मोत्सर्ग के लिये तैयार हो जाती है किन्तु मनस्वी हम्मीर कन्या के प्रस्ताव को ठुकरा देता है।

जब राजकुमारी देवल्ल देवी को ज्ञात हुआ कि शत्रु अल्लावदीन उसे माँग रहा है तो उसने अपने पिता नृपति हम्मीर के पास जा कर इस प्रकार कहा–

इतश्च राजपत्नीभिरनुशास्य प्रणोदिता।

पुत्री देवल्लदेवीति गत्वा भूपं व्यजिज्ञपत्।।[1]

इधर रानियों द्वारा समझा बुझाकर प्रेरित की हुई 'देवल्लदेवी' नामक हम्मीर की पुत्री ने जाकर राजा से कहा।[1]

देवल्लदेवी को नीति का अच्छा ज्ञान है, उसमें त्याग की भावना हैं वह अपने प्राणों को त्याग कर भी राज्य की रक्षा करना चाहती है वह स्वयं को एक मात्र कील समझती है उसने राजा से इस प्रकार कहा –

हा हा तात! मदर्थ किं राज्यं विप्लावयस्यदः।

किं कीलिकार्थं प्रासादं प्रपातयति कश्चन।।[2]

---

1. **हम्मीर महा0 13/106, 2 हम्मीर महा0 13/107**

हाय! हाय! पिता जी। आप मेरे लिये इस राज्य को क्यों खो रहे है ? क्या कोई भी व्यक्ति केवल कील मात्र के लिये महल को नष्ट कर देता है ?[2] देवल्लदेवी का नीति सम्बन्धी दूसरा उदा0 निम्न लिखित है।

मत्प्रदानेन साम्राज्यं चिरं यत् क्रियते स्थिरम्।
तत्काचखण्डदानेन रक्षा चिन्तामणेर्न किम्।।[1]

देवल्ल देवी अपने पिता सम्राट हम्मीरदेव से कहती है–"यदि मेरे शकराज को दे देने से साम्राज्य को चिरस्थायी किया जा सकता है तो जैसे काँच का टुकड़ा दे देने पर चिन्तामणि को बचाया जा सकता है तो वैसे ही साम्राज्य की रक्षा क्यों नहीं की जाती ?[1]

उपर्युक्त श्लोकों के अवलोकन से स्पष्ट है कि देवल्ल देवी त्याग की प्रतिमूर्ति है। देवल्लदेवी में परोपकार की भावना दृष्टिगत होती है जो निम्न श्लोक से स्पष्ट है।

यथा – परासोर्यत्र कुत्रापि जीवन्ती तनुजा वरम्।
दृष्टा हि पुनरावृत्तिर्जीवतां न गतायुषाम्।।[2]

दूसरो के प्राणों के हितार्थ जीवित रहने वाली पुत्री श्रेष्ठ मानी जाती है। जीवित रहने वालों को ही पुनरावृत्ति युक्ति संगत होती है–मरे हुए लोगों की नहीं।।[2]

वास्तव में देवल्ल देवी ज्ञान की आगार है वह गुरु की तरह अपने पिता को उपदेशात्मक बुद्धिमत्ता–पूर्ण बातें कहती है। उसमें ज्ञान छलकता सा दिखाई पड़ता है– जो निम्न श्लोक में दृष्टव्य है –

नीतिः स्वाहितमालोच्य कार्यं कुर्याद् विचक्षणः।
तत् तात! मयि दत्तायां किं किं भावि न ते हितम्।।[3]

यह नीति है कि बुद्धिमान व्यक्ति को अपने हित की बात सोचकर ही कार्य करना चाहिये। तो हे पिता जी! मेरे दे दिये जाने पर आपका क्या क्या हित नहीं होगा ?[3]

---

1. **हम्मीर महा0 13/109**
2. **हम्मीर महा0 13/110**
3. **हम्मीर महा0 13/111**

राजकुमारी देवल्लदेवी नृपहम्मीरदेव को इस प्रकार समझाती है मानों उसने नीतिशास्त्र का अध्ययन किया हो। यह नीति है कि एक व्यक्ति को देने से यदि सम्पूर्ण कुल की रक्षा हो जाय तो एक व्यक्ति को दे देना चाहिए इसी नीतिपूर्ण वाक्य को चरितार्थ करते हुये देवल्लदेवी अपने पिता से इस प्रकार बोली–

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरित्याह वाक्पतिः।
त्रातुमावर्धितक्ष्मां मां द्‌दतस्तव का क्षतिः।।[1]

"आपने कुल को बचाने के लिये एक व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिये यह नीति है"– ऐसा किसी विद्वान ने कहा है। तो आपकी विशाल राज्य भूमि को बचाने के लिये मुझे दे देने से आपको क्या हानि है ?

यद्यपि हम्मीर महाकाव्य में देवल्ल देवी का वर्णन बहुत ही कम है किन्तु जिस प्रकार छोटा सा दीपक पूरे कक्ष को प्रकाशमान कर देता है उसी प्रकार देवल्ल देवी का चरित्र सम्पूर्ण महाकाव्य को उत्कृष्ट बना दिया है। देवल्ल देवी का चरित्र भारतीय नारियों के लिये अनुकरणीय है। वह अत्यन्त सुन्दर कन्या है; वह ज्ञान की सागर है। उसमें त्याग परोपकार आदि गुण विद्यमान है। वह अपने प्राण देकर भी रणथम्भौर राज्य की भूमि की रक्षा करना चाहती है। उसका चरित्र उत्कृष्ट कोटि का है।

---

1. हम्मीर महा0 13/113

रतिपाल

हम्मीर महाकाव्य में रतिपाल का वर्णन नवें, दशवें, बाहरवें तथा चौदहवें सर्गों में किया गया है। रतिपाल हम्मीर राजा के राज्य में एक महान योद्धा था। रतिपाल एक श्रेष्ठ योद्धा, वीर होते हुये भी स्वामि द्रोही है। वह कुछ समय पश्चात् स्वामि शत्रु अल्लावदीन से जाकर मिल जाता है तथा रणमल्ल को भी हम्मीरदेव के विरुद्ध भड़काकर शत्रु से जाकर दोनों मिल जाते हैं और वे अपने ही स्वामी हम्मीरदेव के विरुद्ध षड्यन्त्र करते हैं। प्रारम्भ में रतिपाल अपने स्वामी के कीर्ति वर्धन के कार्य करता है; शत्रु सेना को परास्त करता है। किन्तु बाद में गद्दारी करता है। उसका चरित्र एक स्वामि–द्रोही या देश–द्रोही के रुप में उभर कर पाठकों के सम्मुख आता है। कवि नयचन्द्र ने स्वयं 14वें सर्ग में रतिपाल की निन्दा की है।

पहले यहाँ पर रतिपाल की वीरता एवं उसके स्वामि के ख्याति वर्धक कार्यों का वर्णन किया जा रहा है–

तत्रैणनेत्रा यवनाधिपानां बध्वाऽत्यमर्षाद् रतिपालवीरः ।
व्यचिक्रयत् ख्यातिकृते क्षितीन्दोस्तक्रं प्रतिग्राममभूमिरेषः ।। 61 ।।[1]

यहाँ (युद्ध भूमि में) 'रतिपाल' नामक योद्धा ने यवन योद्धाओं की मृगाक्षियों को अत्यन्त क्रोध के कारण बाँध करके उनसे प्रत्येक गाँव में छाछ बिकवाई क्योंकि वह राजा हम्मीरदेव की ख्याति को चाहता था।[1] रतिपाल की वीरता एवं उसके द्वारा शत्रु–स्त्रियों से छाछ बिकवाने के कार्य को सुनकर हम्मीरदेव ने उसे स्वर्ण आदि देकर पुरस्कृत किया जो निम्न श्लोक से स्पष्ट है–

अथ क्षितीशो रतिपालशौर्यं अतीभमाकर्ण्य लसत्प्रमोदः ।
मत्तो ममायं गज इत्यमुष्य पादेऽक्षिपत् काञ्चनश्रृंख्लानि ।। 63 ।।[2]

अब रतिपाल के हाथी को भी मात करने वाली वीरता को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए राजा हम्मीर ने 'यह मेरा मदमत्त हांथी है' ऐसा कहकर सोने की जंजीरे रतिपाल के पाँवों में धारण कराई।[2] अर्थात् (स्वर्ण आदि रतिपाल को प्रदान किया)

---

1. हम्मीर महा0 10/61, **2. हम्मीर महा0 10/63**

अल्लावदीन नामक शकों का सम्राट रतिपाल नामक योद्धा को प्रलोभन देता है। प्रलोभन पाकर, रतिपाल का चरित्र परिवर्तित हो जाता है, उसके अन्दर तृष्णा किस तरह प्रवेश कर जाती है इसका उदाहरण निम्न श्लोक में दृष्टव्य है–

दुराचारो यदाचारो माया यत्सहचारिणी ।[1]
अनृतं यत्पदन्यासाः क्रोधो यत्पारिपार्श्विकः ।। 78
अत्रान्तरे कलिर्नाम लोभं कृत्वा तमग्रतः।[2]
विविशे रतिपालस्य मनोदुर्गं सुदुर्ग्रहम् ।। 79

जिसके आचरण में दुराचार ही है, माया ही जिसकी सहचरी है, जिसके हर कदम में झूठ का बोलबाला है और जिसका सेवा टहल करने वाला क्रोध होता है, वह कलियुग ही इसी बीच लोभ को आगे करके रतिपाल के मन रुपी दुर्धर्ष किले में प्रवेश कर गया।

रतिपाल अल्लावदीन के लिये शकुनी के रुप में कार्य करता है **यथा** –

रतिपालमनोदुर्गं बलाद् गृह्णंस्तदा कलिः।
शकुन्यभूच्छकेशस्य रणस्तभं जिघृक्षतः।। 80।।[3]

बल पूर्वक रतिपाल के मनरूपी किले को अधिकार में करके 'कलियुग' रणथम्भौर के किले को अधिकार में करने के इच्छुक शकराज के लिये शकुनी स्वरूप हो गया। रतिपाल को मिलाने के लिये 'अल्लावदीन' रतिपाल नामक हम्मीरदेव के योद्धा को अपने महल में ले जाकर स्वादिष्ट भोजन एवं मदिरा आदि पिलाकर अपने वंश में किस तरह करना चाहता है इसका दृष्टान्त निम्न श्लोक है –

अन्तरन्तःपुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत्।
अपीप्यत् तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि।। 81।। [4]

इसके पश्चात् उसे अन्तःपुर में ले जाकर उसे भोजन करवाया और विश्वास पैदा करने के लिये अपनी बहिन के द्वारा मदिरा पिलाई।[4]

मदिरा पान के पश्चात् रतिपाल जब लौटकर अपने राज्य रणथम्भौर आता है तो उसके मुख से मदिरा की गन्ध आती है जिसकी पुष्टि अग्र श्लोक से होती है –

---

1. **हम्मीर महा0 13/78, 79, 80, 81**

तदा चास्य मुखाद् गन्धः प्रससार मदोद्भवः।

अङ्गादन्यप्रियाऽऽश्लेषसंशीत्वर्या इवानिलः।।

तब इस रतिपाल के मुख से मदिरा की गंध निकली वैसे ही जैसे कि अन्य स्त्री के आलिङ्गन से उसमें व्याप्त सुगन्धित वायु निकलती है।[1]

उपर्युक्त श्लोक में कवि की वर्णन चातुरी दृष्टव्य है मदिरा पान को भी इतने उत्कृष्ट रूप में वर्णित किया है। इस तरह रतिपाल मद्यप भी हो जाता है रतिपाल के मुख से मदिरा की गंध आने से वीरम को उस पर शंका होती है कि वह शत्रु से मिल चुका है। वीरम शंका को नृपति हम्मीरदेव से प्रकट करता है जिसकी पुष्टि निम्न श्लोक से होती है –

निर्यतोऽस्य मुखाद् राजन्! मदगन्धस्तथा ययौ।

जाने यथैष पापीयान् निश्चितं संगतो द्विषः।।

हे राजन! बाहर निकलते समय इसके (रतिपाल के) मुख से मदिरा की गंध निकली। इससे मुझे लगता है कि यह पापी निश्चित रूप से शत्रु से मिल गया है।[2]

इस प्रकार 'रतिपाल' स्वामी का विश्वासघाती स्वामिद्रोही हो जाता है तथा शत्रु से मिल जाता है। रतिपाल के शकराज के खेमें में चले जाने का वर्णन निम्न श्लोक में है –

उत्तीर्य रतिपालोऽपि दुर्गात् स्वर्गादिवोच्चकैः।

शिश्राय निरयावासमिवावासं शकेशितुः।।

रतिपाल ने दुर्ग से उतर कर वैसे ही शकराज के डेरे में शरण ले लिया जैसे उच्च स्तरीय स्वर्ग से उतर कर नरक में कोई आश्रय ग्रहण कर लेता है।[3]

नृपति हम्मीरदेव स्वयं रतिपाल एवं रणमल्ल दोनों योद्धाओं के स्वामिद्रोह करने की निन्दा करते हैं, जिसकी पुष्टि निम्न श्लोकों से होती है –

---

1. **हम्मीर महा0 – 13/91**
2. **वही – 13/93, 135,**

अमानैरपि सन्मानैर्दानैस्तैस्तैरनेकधा।

पूजितौ सत्कृतौ शश्वद् यौ मया भ्रातराविव।।[1]

यदि तावप्यहो स्वामिद्रोहमेवं प्रचक्रतुः।

तदा स्वाभावनीचानां परेषां गणनाऽस्तु का।।[2]

अतुल सम्मान और अनेक प्रकार के उपहार दोनों द्वारा संतुष्ट किये हुए जो दोनों योद्धा मेरे द्वारा भाइयों की तरह सम्मानित किये गये थे 'यदि उन दोनों ने ही हाय! अपने स्वामी से द्रोह किया तो अन्य स्वभाव से नीच मनुष्य की तो क्या गिनती हो सकती है ?[1,2]

रतिपाल के स्वामिद्रोही स्वभाव पर कवि ने उसकी घोर निन्दा की तथा उसके साथ में रणमल्ल नामक स्वामिद्रोही योद्धा की निन्दा तथा जाजदेव की प्रशंसा की है जो निम्न श्लोक में दृष्टव्य है–

धिग्, धिक् त्वां <u>रतिपाल</u>! याहि विलयं रे सूरवंशाधम!

द्राग् वक्त्रं <u>रणमल्ल</u>! कृष्णय निजं पापिंस्त्वंमप्युच्चकैः।

एकोनन्दतु <u>जाज</u> एवं जगति स्वाभाविकप्रीतिभृत्।

येनात्रायि दिवंगतेऽपि नृपतौ दुर्गं किलाहर्द्वयीम्।।[3]

हे सूर्य वंश के अधम व्यक्ति रतिपाल! तुम्हे धिक्कार है तुम विलय को प्राप्त हो जाओ। हे रणमल! हे पापी! तुम तुरन्त ही अपने मुख पर खूब कालिख पोत लो। केवल एक ही स्वाभाविक स्वामी से प्रीति करने वाला व्यक्ति 'जाजराज' ही संसार में आनन्द प्राप्त करे जिसने राजा हम्मीर के दिवंगत होने पर दो दिन तक दुर्ग की रक्षा की।[3]

नृपति हम्मीरदेव युद्ध में मारे जाते है तब शकराज अल्लावदीन रतिपाल से पूछता है कि हम्मीर का शिर कौन सा है तब रतिपाल अपने राजा के कटे शिर को पैर से मारकर दिखाता है तब अल्लावदीन स्वामिद्रोही रतिपाल की खाल यह कहते हुये निकलवा लेता है ताकि आगे कोई भी योद्धा अपने स्वामी से द्रोह न कर सके।

---

1. हम्मीर महा0 – 13/140

2. हम्मीर महा0 – 13/141

3. हम्मीर महा0 – 14/16

निम्न श्लोक में रतिपाल के नीच स्वभाव की पराकाष्ठा दृष्टव्य है –

आजौ पादतलेन दर्शितवतो हम्मीर भूभृच्छिरः[1]
पृष्टस्तेन तदर्पितांश्च गदतस्तांस्तान् प्रसादानपि।
खल्लं ते रतिपाल! यच्छकपतिर्निष्कासयामासिवान्
तद् युक्तं त्वमिवान्यथा कति पुनर्द्रुह्यन्ति नं स्वामिने।।

हे रतिपाल! युद्धभूमि में हम्मीर राज के शिर को पैर से ठोकर लगाकर दिखाने वाले अल्लावदीन के द्वारा यह पूछने पर कि "उस राजा ने क्या कृपा तुम्हारे ऊपर की "उसकी कृपाओं का वर्णन करने वाले तुम्हारी खाल को उतरवाने का आदेश जो शक राज ने दिया, वह ठीक ही था, अन्यथा तुम सरीखे कितने व्यक्ति स्वामी से द्रोह नहीं करते ? अनेक व्यक्ति करते।[1]

सेनापति रतिपाल हम्मीरदेव के राजदरबार का एक योद्धा था प्रारम्भ में वह हम्मीरदेव के यशोवर्धक कार्य करता है तथा एक विश्वास पात्र व्यक्ति था किन्तु वाद में वह लोभ के वशीभूत होकर शकराज अल्लावदीन से मिल जाता है और अपने राज्य रणथम्भौर में स्वामी हम्मीरदेव के विरूद्ध आचरण करता है। उसका चरित्र एक स्वामिद्रोही के रूप में पाठकों के सम्मुख आता है। उसका चरित्र निन्दनीय है। चौदहवें सर्ग में अल्लावदीन एवं कविनयचन्द्र ने स्वयं रतिपाल के इस घृणित कार्य की निन्दा की हैं। कवि नयचन्दकी वर्णन चातुरी वहाँ ज्यादा प्रकृष्ट हो जाती है जहाँ पर स्वामिद्रोही रतिपाल की खाल स्वयं हम्मीर का शत्रु अल्लादीन यह कहते हुए निकलवा लेता है ताकि भविष्य में कोई भी सेवक अपने स्वामी के साथ कोई निन्दनीय कार्य न कर सके।

---

1. हम्मीर महा0 – 14/21

अल्लावदीन (अलाउद्दीन)

अल्लावदीन यवन सम्राट तथा हम्मीर महाकाव्य का प्रतिनायक है। उसमें प्रतिनायक के सभी लक्षण विद्यमान है वह कूटनीतिज्ञ, क्रोधी, पराक्रमी वीर योद्धा था। हम्मीर महाकाव्य में 9वें सर्ग से 14वें सर्ग पर्यन्त अल्लावदीन का वर्णन किया गया है। वह नृपति हम्मीरदेव का शक्तिशाली प्रतिपक्षी है।

वह राजनीति पटु यवन सम्राट था। वह यह भली भाँति जानता है कि उसे कब शत्रु से सन्धि करना चाहिए और कब उस पर आक्रमण करना चाहिए। अल्लावदीन ऐतिहासिक स्थल दिल्ली का सम्राट था। हम्मीरराज का स्वरूप जानकर तथा उसके द्वारा संसार विजय करने के समाचार को सुनकर वह अपने उल्लूखान नामक औरस भाई से कहा, "रणथम्भौर नगर का नृप जैत्रसिंह पहले मेरे प्रताप के डर से मेरा कर चुकाता था किन्तु वह गर्वीला हम्मीर बोलता तक नहीं।" अल्लावदीन हम्मीरदेव को जीतने का निश्चय करता है –

यथा– स महौजस्तया शक्यो जेतुं नाभूदियच्चिरम्।[1]

व्रतेस्थिधीतयेदानीं लीलयैव विजीयते।।104।।

वह अब तक अधिक प्रतापी होने के कारण जीता नहीं जा सका किन्तु अब पक्के निश्चय के द्वारा ही खेल–खेल में ही जीत लिया जायेगा।[1]

वह शरण में आये हुए को आश्रय प्रदान करता है जब भोजदेव नामक हम्मीरदेव का व्यक्ति अन्धे धर्मसिंह से त्रस्त होकर अल्लावदीन की शरण में दिल्ली आता है तब उसे अल्लाबदीन जगरा नामक नगरी प्रदान करता है जो निम्न श्लोक में दृष्टव्य है–

तत्समागमनहर्षवशात्माऽल्लावदीननृपतिः सः ततोऽस्मै।[2]

वस्त्रनिर्वपणपूर्वमयच्छन्मुद्गलेशनगरीं जगरां ताम।। 10।।

उसके आगमन से आनन्दित हुए अल्लावदीन ने इसे 'जगरा' नाम की नगरी प्रदान कर दी। सिरोपाँव आदि दिये। यह नगरी मुद्गल नरेश की थी।[2]

---

1. **हम्मीर महा0 – 9/104**
2. **हम्मीर महा0 – 10/10**

अल्लावदीन अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का व्यक्ति था उसका क्रोध कभी निष्फल नहीं जाता। हम्मीर राज की प्रेरणा से जब 'महिमासाहि' जगरा नगरी को नष्ट कर भोजदेव के सहोदर भाई को बांधकर ले जाता है इसकी सूचना पाकर वह क्रोध से तिलमिला उठता है अल्लावदीन का क्रोध निम्नश्लोक में देखा जा सकता है–

तद्वाक्यश्रवणादथ प्रसृमरक्रोधप्रकम्पाधरो [1]

बाहुष्टम्भनमासनं प्रतिलवं सव्यापसव्ये नयन्।

प्रत्युत्क्षिप्य शिरोवतंसमवनीपीठे तथाऽऽस्फालयन्

चक्रेकाव्यपरम्परामिति तदा म्लेच्छावनीवल्लभः।। 79।।

इसके (भोज के) वचनों को सुनकर क्रोध से उसके अधर काँपने लगे, वह प्रतिक्षण अपने हाथों से अपने सिंहासन को दाँये–बाँये सरकाने लगा, अपने साफे को उसने उठाकर पृथ्वी पर फेंक दिया।[1] और वह म्लेच्छराज अल्लावदीन इस प्रकार बोला–

कः कण्ठीरवकण्ठकेसरसटां स्प्रष्टुं पदेनेहते [2]

कुन्ताग्रेण शितेन कश्च नयने कण्डूयितुं कांङ्क्षति।

कश्चाभीप्सति भोगिवक्त्रकुहरे मातुं च दन्तावलीं

को वा कोपयितुं नु वाञ्छति कुधीरल्लावदीनं प्रभुम् ।। 82।।

सिहं के कण्ठ के ऊपर स्थित अयालों को कौन आज पैर से छूना चाहता है ? कौन भाले की तीक्ष्ण नोंक से आँख को खुजलाना चाहता है ? सर्प के मुख गह्वर में कौन दन्तपंक्ति को गिनना चाहता है अथवा कौन दुष्ट बुद्धि वाला व्यक्ति अल्लावदीन राज को कुपित करने की इच्छा करता है।[2]

अल्लावदीन एक ऐश्वर्यशाली तथा वीर सम्राट था। मोल्हण नामक दूत हम्मीरदेव के राजदरबार में अल्लावदीन की वीरता का वर्णन निम्न प्रकार किया है–

दुर्गाणि दुर्गाह्यतराणि यः श्रीदेवाद्रिमुख्यान्यपि मङक्षु भङ्क्तवा।[3]

अपीन्द्रमुद्यद्दरदन्तुराक्षी चकारकारायमितारिचक्रः।।56

1.हम्मीर महा0 10/79   2. हम्मीर महा0 10/82   3. हम्मीर महा0 11/56

जिसने शत्रु समूहों को कैद में डालकर, दुर्ग्राह्यतर दुर्गो को तुरन्त ही तोड़कर – (ऐसे किले–जिनमें श्री देवाद्रि नामक किले प्रमुख है) इन्द्र को भी आश्चर्य चकितकर दिया। आगे मोल्हण कहता है–

दुर्गाणि दुर्ग्राह्यतराण्यरीणां भञ्जन्ननेकान्यपि लीलयैव।[1]

आजन्म भग्नत्रिपुरैकदुर्गे दुर्गापतौ योऽत्र घृणां विभर्ति।। 57।।

शत्रुओं के अनेक अधिक दुर्ग्राह्य किलों को क्रीड़ा मात्र से ही तोड़ता हुआ 'त्रिपुर' को भग्न करने वाले शंकर भगवान के प्रति भी वह घृणा धारण करता है।[1]

आगे दूत अल्लावदीन की वीरता का वर्णन करते हुये हम्मीरदेव से कहता है कि हे राजन्! इसके (अल्लाबदीन के) द्वारा मन में जो जो भी इच्छा की जाती है वह वह इच्छा वह पूरी कर लेता है। मैं शंका करता हूँ कि विधाता भी उसके शासन को नष्ट नहीं कर सकता –

यथा– यद् यन्मनस्यप्यमुना नरेन्द्र! निधीयते तत् तदहो तदात्वम्।[2]

सम्पादयन् सोऽपि विधिर्विशंके न शासनं यस्य विहन्तुमीष्टे।। 58।।

अल्लावदीन एक कूटनीतिज्ञ व्यक्ति था। युद्ध प्रारम्भ हो जाने पर वर्षा ऋतु का आगमन हो जाता है।

वर्षा के कारण उसके योद्धा त्रस्त होकर युद्ध भूमि से पलायन करने लगते हैं उसके हाँथी, घोड़े कृशकाय हों जाते हैं रथ जमीन पर धंस जाते है। ऐसी परिस्थिति में अल्लावदीन शत्रु हम्मीरदेव से सन्धि करना चाहता है तथा शत्रु पक्ष के योद्धा रतिपाल को वहाँ बुलवाकर उसे सम्मानित कर मिलाना चाहता है निम्न श्लोक में उसके कूटनीतिज्ञ स्वभाव का वर्णन कवि ने किया है –

अयाते रतिपालेऽथ स मायावी शकेश्वरः।[3]

उपावीविशदेनं स्वासनेऽभ्युत्थानपूर्वकम्।। 71।।

अरंञ्जयच्च कूटेन मानैर्दानैरनेकधा।[4]

कूटोपजीविनः किं वा कूटे मुह्यन्ति कुत्रचित्।। 72।।

---

1. हम्मीर महा0 11/57, 58, 2. वही 13/71, 72

अब रतिपाल के आने पर मायावी शकराज ने स्वयं उठ करके उसे अपने आसन पर बिठाया और कूटनीति पूर्वक मान, दान और अनेक प्रकार से उसे प्रसन्न किया (सम्मान व धन का लालच देकर) क्योंकि कूटनीतिज्ञ कहीं पर भी अपनी कूटनीति में चूक नहीं करते।

अल्लावदीन विश्वास पैदा करने के लिये रतिपाल नामक शत्रु योद्धा को अपने बहिन के द्वारा मदिरा पिलाई क्योंकि कूटनीतिज्ञ व्यक्ति अपना कार्य सिद्ध करने के लिये अकरणीय कार्य भी कर सकता है।अल्लावदीन के कूटनीतिज्ञ होना का निम्न श्लोक से स्पष्ट है –

यथा – अन्तरन्तः पुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत्।[1]

अपीप्यत् तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि।। 81।।

इसके पश्चात् उसे (रतिपाल को) अन्तःपुर में ले जाकर उसे भोजन करवाया और विश्वास पैदा करने के लिये अपनी बहिन के हाथों मदिरा पिलाई।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह मायावी शकराज कूटनीति कुशल योद्धा था। अल्लावदीन शत्रु का भी सम्मान करना जानता है जब वह शत्रु पक्ष के योद्धा मुगलपठान महिमासाहि को बिना दण्डित किये पूछता है कि यदि उसे जीवित छोड़ दिया जाय तो वह क्या करेगा तथा शत्रु अल्लावदीन के मृतक होने पर जब उसके शिर को रतिपाल पैर से मारकर दिखाता है तो अललावदीन उसकी खाल निकलवा लेता है –

यथा– आजौ पादतलेन दर्शितवतो हम्मीर भूभृच्छिरः [2]

पृष्टस्तेन तदर्पितांश्च गदतस्तांस्तान् प्रसादानपि।

खल्लं ते रतिपाल! यच्छकपतिर्निष्कासयामासिवान्

तद् युक्तं त्वमिवान्यथा कति पुनर्द्रुह्यन्ति न स्वामिने।। 14।।

---

1. **हम्मीर महा0 13/81,**
2. **हम्मीर महा0 14/21**

हे रतिपाल! युद्धभूमि में हम्मीर राज के शिर को पैर से ठोकर लगाकर दिखाने वाले अल्लावदीन के द्वारा यह पूछने पर कि "उस राजा ने क्या कृपा तुम्हारे ऊपर की "उसकी कृपाओं का वर्णन करने वाले तुम्हारी खाल को उतरवाने का आदेश जो शक राज ने दिया, वह ठीक ही था, अन्यथा तुम सरीखे कितने व्यक्ति स्वामी से द्रोह नहीं करते ? अनेक व्यक्ति करते। इस प्रकार शत्रु के सिर को पैर से ठोकर लगाकर दिखाने वाले रतिपाल की खाल निकलवा कर अल्लावदीन ने यह सिद्ध कर दिया कि वह शत्रु का भी सम्मान करता था। अल्लावदीन श्रेष्ठ योद्धा था। वह शत्रु हम्मीरदेव को ललकारते हुये इस प्रकार कहता है –

पाताले प्रविशत्यसौ यदि तदा नूनं खनित्वा ददे [1]

स्वर्गं चेत् समुपैति सेन्द्रमपि तं संपातयाम्यग्रतः।

दृग्भ्यां चेद् ददृशे न सङ्गरभरे मद्दोर्द्वयीविक्रमः

कर्णाभ्यामपि शुश्रुवे किममुना तर्हि क्षितौ न क्वचित्।। 85।।

यदि हम्मीर पाताल में भी प्रवेश कर जायेगा तो मैं उसे भूमि से खोदकर ले जाऊँगा । यदि वह स्वर्ग चला जायेगा तो उसे मैं इन्द्र समेत आगे गिरा दूँगा। यदि उसने मेरी भुजाओं की वीरता संग्राम में आँखों से नहीं देखी तो क्या वह कहीं पर भी कानों से नही सुना (अर्थात अवश्य सुना होगा)।[1]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अल्लावदीन, वीर, गम्भीर, क्रोधी, कूटनीतिज्ञ, शत्रु का सम्मान करने वाला, शरणागत वत्सल, राजनीति पटु, शकाधिराज था। उसका चरित्र महाकाव्य में अन्यतम है। वह श्रेष्ठ प्रतिनायक है।

हमीर महाकाव्य में कवि नयचन्द द्वारा नायक हम्मीरदेव के अतिरिक्त उनके वंश के अनेक राजाओं का चित्रण उत्कृष्ट रूप में किया गया है । उन सभी राजाओं का चरित्र–चित्रण यहाँ पर करना सम्भव नही है। जिन राजाओं का चित्रण किया गया है,उनमें प्रमुख राजा है– पृथ्वी राज चौहान, दीक्षित वासुदेव, नरराज, जयराज, वप्रराज, हरिराज, सिंहराज, विग्रहराज, चामुण्ड़राज, दुःशलदेव, विश्वलदेव, आल्हणदेव, जगदेव, गङगदेव, हरिराज, वाल्हण, प्रह्लादन, वाग्भट्, वीरनारायण आदि।

---

1. **हमीर महाकाव्य 10/85**

इस प्रकार हम कह सकते हैं कवि नयचन्द्र, ने हम्मीर महाकाव्य में पात्रों के चरित्र चित्रण में उत्कृष्ट सफलता प्राप्त की है। छोटे–छोटे पात्रों का चरित्र वर्णन बड़े ही सहज रूप मे चित्रित किया है। उन्होंने पात्रों के यथार्थ चरित्र को पाठक के सम्मुख उजागर किया है। यहाँ तक कि नायक हम्मीर के अनुचित करो, तथा आपसी फूट का भी उत्कृष्ट रूप में चित्रण किया है। अन्धे धर्मसिंह की विद्वेष की भावना, रतिपाल के स्वामिद्रोह, महिमासाहि की स्वामि भक्ति, देवल्लदेवी के त्याग, अल्लावदीन की कूटनीतिक चाल, विलास प्रिय हरिराज, वेश्या धारादेवी, खड्गग्राही भोजराज, निसुरतखान की धृष्टता आदि को कवि नयचन्द्र ने अनूठे ढंग से वर्णित किया है। वास्तव में कवि नयचन्द्र के पात्रों का चरित्र, सामाजिक दृष्टि से अनुकरणीय, व उपयोगी है। कवि नयचन्द्र ने मद्यप (सुरापायी) जनो की तथा स्वामिद्रोहियों की निन्दा भी की है। अतः निष्कर्ष रूप मे यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि हम्मीर महाकाव्य मे वर्णित नयचन्द्र के पात्र अपने पद के अनुरूप उचित आचरण करते है।

षष्ठ अध्याय

वस्तु वर्णन

महाकाव्य में वस्तु वर्णन

हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु प्रख्यात कथावस्तु है, क्योंकि यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसके नायक हम्मीर, अन्य पात्र पृथ्वीराज आदि एवं प्रतिनायक अलाउद्दीन इतिहास प्रसिद्ध पात्र है। कवि नयचन्द्र ने इसमें अपनी कल्पनाशक्ति के माध्यम से कुछ काव्योचित परिष्कार कर दिये है; जैसे पञ्चम सर्ग में वसन्तवर्णन एवं षष्ठ सर्ग में जलक्रीड़ा वर्णन कर दिया है। जिससे यह ग्रन्थ केवल इतिहास न रहकर महाकाव्य बन गया है, क्योंकि केवल इतिवृत्त का वर्णन तो इतिहास में ही हुआ करता है और ऐसे शुष्क वर्णन से काव्यत्त्व कदापि नहीं आ सकता है।[1] ध्वन्यालोक

प्रत्येक महाकाव्य में कथा का अपना विशेष स्थान होता है। आदि काल से मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह कौतुक एवं विस्मय से युक्त नवीनता की ओर आकृष्ट हुआ है। नित्यप्रति के व्यवहारिक जीवन और परिचित कार्यकलापों से जहाँ भी नवीनता दृष्टिगोचर होती है, वह उत्सुकता एवं कौतूहल से उधर ही प्रवृत्त होता है। प्राचीक्षितिज पर सुनहली छटा छिटकाने वाली प्रभापुञ्ज को बिखेरने वाली ऊषा का दर्शन, दर्शक के हृदय में वैसा ही विस्मय उत्पन्न करता है जैसा नील नभोमण्डल में रजत–रश्मियों को विखेरने वाले तथा नेत्रों में शीतलतामयी छटा फैलाने वाले शीतरश्मि का उदय। दोनो ही कौतुकमय है; और दोनो ही मानव मन को मोहने वाले है।

मानव की इसी कौतुकमयी प्रवृत्ति को चरितार्थ करने के लिये भारतीय साहित्य में एक नवीन परम्परा का उदय हुआ है, जो कथा नाम से अभिहित की गयी है। कौतुकवर्धक कथाओं का उदय प्रत्येक साहित्य में हुआ है, और होता है; किन्तु संस्कृत साहित्य के साथ कथा का विशेष सम्बन्ध है, वस्तुतः विश्व में कथा की उद्‌गम भूमि संस्कृत साहित्य ही है।

संस्कृत साहित्य में विविध प्रकार की कथाओं का दर्शन होता है इन्ही कथाओं पर ही महाकाब्य आधारित रहते है। कथावस्तु की सफलता मर्मस्पर्शी एवं रसात्मक स्थलों को पहिचानने एवं उनको कुशलता से चुन लेने में ही है "जो पाठको के हृदय को आर्कषित करने की क्षमता रखते हों। महाकवि नयचन्द्र सूरि इस बात में सिद्धहस्त थे। उनकी दीर्घ सांसारिक अनुभूतियों एवं लोक व्यवहार में प्रवीणता का परिचय हमें –

नहि इतिवृत्तमात्र निवाहेण आत्मपदलाभः इतिहासादेरेव तत, सिद्धेः। ध्वन्यालोक।

उनकी रचना से प्राप्त होता है। वे मानव ह्रदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान प्रविृत्तियों का चित्रण लोक व्यवहार के साथ पूर्ण सामञ्जस्य से करते है।

महाकवि नयचन्द्र ने हम्मीर महाकाव्य में यद्यपि वीरतामूलक आख्यान का ही आश्रय लिया है किन्तु वीरता (युद्ध वर्णन आदि) की नाना अवस्थाओं का दिग्दर्शन अत्यन्त मनोवैशानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। हम्मीर महाकाव्य में कथा वस्तु का अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं सजीव चित्र अंकित किया गया है। हम्मीर पूर्वजवर्णनों नाम प्रथमः सर्गः। प्रथम सर्ग हम्मीर पूर्वज वर्णन है जिससे कथा प्रारम्भ होती है। ग्रन्थ निर्विघ्न रूप से पूर्ण हो जाय इसके लिये लगभग सभी कवियों ने मंड्.गलाचरण रूप में किसी न किसी देवी देवता की स्तुति किया करते हैं यहाँ पर कवि नयचन्द्र ने भी कई देवताओं की स्तुति की है यहाँ ब्रह्मा जी की स्तुति कवि ने कितनी चातुरी से की है –

तज्ज्ञानविज्ञानकृतावधानाः सन्तः परब्रह्ममयं यमाहुः।

पद्माश्रयः क्लृप्तभवावसानः स नाभिभूर्वस्त्वरतां शिवाय।। 2।।

उस परम ज्योति के ज्ञान तथा विज्ञान के प्रति दत्तचित्त सज्जन जिसे, परब्रह्म कहते है वह निज जन्म का अवसान पा अन्त करते हुये पद्मासन पर विराजमान नाभि–भू ब्रह्माजी आपको कल्याण की ओर त्वरित गति से अग्रसर करें।

'पुष्कर' तीर्थ का नाम ऐसा क्यों पड़ा तथा चाहमानवंश का चाहमान नाम कैसे पड़ा तथा इस प्रश्न का उत्तर कवि अत्यन्त तर्कपूर्ण ढंग से दिया। कवि की कथाचातुरी प्रथम सर्ग के इसी श्लोक से ही देखने योग्य है।

पपात यत्पुष्करमत्रपाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत्।

यच्चायमागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यायि स चाहमानः।। ह0 म0 1/17

क्योंकि यहाँ पर ब्रह्मा जी के हाथ से कमल गिरा था अतः यह स्थान 'पुष्कर तीर्थ' नाम से प्रसिद्ध हो गया। इसी प्रकार इच्छा करता हुआ यह जो पुरूष (चाहमान) यहाँ आया, वह चाहमान (चौहान) नाम से प्रसिद्ध हुआ। कृत त्रेता, द्वापर के राजाओं से कवि नयचन्द्र कलियुग के राजा हम्मीर से साम्य प्रकट किया है–

मान्धातृसीतापतिकंकमुख्याः क्षितौ क्षितीन्द्राः कति नाम नासन्।

तेषु स्तवार्हः परमेष सत्त्वगुणेन हम्मीरमहीभृदेकः।। ह0 म0 1/8

कृतयुग के मान्धाता, त्रेता के श्रीराम, एवं द्वापर के युधिष्ठिर जैसे राजा पृथ्वी तल पर कितने नही हुए ? अर्थात् अनेक प्रसिद्ध राजा उत्पन्न हुए। उनमें से एक हम्मीर

नामक महीपति (कलियुग में) हुए जो कि सत्त्व गुणों से युक्त होने के कारण प्रातः स्मरणीय है।

कवि नयचन्द्र ने हम्मीर राजा के दान का कितना अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है। यह कवि की उत्कृष्ट कल्पना का निदर्शन है।

स्वदानजन्मोरुयशोर्जितश्रीविलोपिदानं समवेक्ष्य यस्य।

बलिः स पाताल बिलं सिषेवे त्रपातुराणामपरा गतिः का ?।। 1/19

राजा बलि भी अपनी दान की महत्ता से महान्यश प्राप्तकर सका था, किन्तु चौहान राजा के दान के आगे उसकी शोभा लुप्त हो गई है और उसने पाताल जाना ही श्रेयस्कर समझा। लज्जायुक्त मनुष्य के लिये दूसरी गति क्या हो सकती हैं ?

चौहान वंश में अनेक वीर चक्रवर्ती राजा हुये है जो पृथ्वी के अन्य राजाओं को अपने पराक्रम से क्षण में आक्रान्त कर देते थे। उन सभी राजाओं का परिचय एवं उसकी वीरता का वर्णन नयचन्द्र ने संक्षिप्त रूप में किया है। चाहमान वंश के इन वीर राजाओं का कार्य, धर्म, अर्थ और काम सें संसर्ग रखता था। इस कार्य को कवि ने एक ही श्लोक में किस तरह निबद्ध किया है –

तस्मिन् स्फुरद्विक्रमचक्रवाला वंशे बभूवुर्बहवो नृपालाः।

त्रिवर्गसंसर्गपवित्रचित्रचरित्रपित्रासितपापभाराः।। 1/26

उसी वंश मे वीरता युक्त अनेक राजा हुये जिन्होने धर्म, अर्थ और काम त्रिवर्ग के पवित्र संसर्ग में रहने के कारण समस्त पापों का निराकरण कर दिया है।

सामूहिक रूप से अनेक राजा हुए है ऐसा कहकर कवि अब क्रमशः अनेक राजाओ का नाम इस प्रकार गिनाया है और उनकी दान शीलता, पराक्रम, वीरता एवं उनकी सुन्दरता आदि का वर्णन किया है।

राजा हम्मीरदेव, दीक्षितवासुदेव, श्रीनरदेव, श्रीचन्द्रराज, जयराज, सामन्तसिंह, गूयक, नन्दन, वप्रराज, हरिराज, सिंहराज आदि।

अब आगे क्रमशः इन राजाओं के प्रतापाग्नि का वर्णन कवि ने कितनी चतुराई से किया है कि सूर्य चन्द्रमा एवं बड़े–बड़े पर्वत तथा कमल भी म्लान हो जाते है–

---

1. हम्मीर महा0 1/1, 17, 8, 19, 26

यहाँ पर राजा दीक्षित वासुदेव की वीरता को कितने अनूठे ढंग से कवि ने चित्रित किया है –

सपत्नसंघातशिरोऽधिसन्धिच्छेदादसिं कुण्ठतरं निजे यः।[1]

प्रतापवह्नावभिताप्य· काममपाययत्तद्रमणीदृगम्बु ।। 1/28

जिसने शत्रु समूह के मस्तकों को काटने के कारण अधिक कुण्ठित हुई अपनी तलवार को अपने प्रताप की अग्नि में तपाने के पश्चात् उनकी रमणियो की आँखों के आँसुओ का पानी पिलाकर बुझाया।[1]

आगे इसी क्रम में कवि ने श्री नरदेव की वीरता का वर्णन किस प्रकार किया है जो यहाँ पर द्रष्टव्य है। उसको देखने मात्र से शत्रुराजा भयभीत हो जाते थे।

अशात्रवं विश्वमिदं विधातुं क्रुद्धे परिभ्राम्यति यत्र भूपे।[2]

राज्यश्रियं पातुमरातयः स्वकोशाद्वसून्याचकृषुर्न खड्गान्।। 1/33

इस राजा (श्रीनरदेव) के क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर घूमने पर शत्रुगण अपने कोशों से खड्ग नहीं निकालते थे बल्कि कोशों से (खजानो से) रत्न निकालकर राजा को कर चुकाते थे।[2]

इस राजा का खड्ग किस तरह विरोधी मानवोचित आचरण करता था इस श्लोक मे कवि की कल्पना चातुरी एवं सामाजिक ज्ञान बड़ी ही वाक्–पटुता से वर्णित किया गया है–

यस्य क्षितीशस्य च यन्महासेरन्योन्यमासीत्सुमहान्विरोधः।[3]

एको विरागः समभूत्परेषां दारेषु चान्यो यद्भूत्सरागः।। 1/40

जिस राजा का महान खड्ग परस्पर विरोधी आचरण करता था क्योकि शत्रुगणों का विदारण करने में एक ओर वह रूचि रखता था तो दूसरी ओर परदाराओं के प्रति कोई आसक्ति नहीं प्रदर्शित करता था।[3] 1/40

यहाँ चौहान राजाओं की समृद्धि का वर्णन कवि द्वारा अति सूक्ष्मता से किया गया है ये राजा इतने धनवान् थे कि केवल स्वर्णदान ही करते थे। अन्य छोटी (तुच्छ) वस्तुओं का दान नहीं करते थे। यहाँ जयपाल नामक राजा की स्वर्णदान एवं द्यूतक्रीड़ा एवं युद्ध कौशल होने का वर्णन है–

---

1. हम्मीर महा0 1/28
2. वही 1/33,
3. 1/40

अनेकधाऽष्टापदसारदानदक्षो वशीभूततराक्षचारः।[1]

यो द्यूतकृद्वच्चतुरङ्गयुद्धक्रीड़ास्वजेय समभूत्परेषाम् ।। 43।।

वह सुवर्णद्रव्य देने में दक्ष था और द्यूत क्रीड़ा में भी अधिक कुशल था। चतुरंग सेना द्वारा युद्ध क्रीड़ा में भी वह दुश्मनों के लिये अजेय था।[1]

कवि उपमा के क्षेत्र में कितना सिद्धहस्त है। इसका प्रमाण उसके एक–एक श्लोक में है। उन्होनें राजा जयपाल के बांणों की उपमा–भौंरों से दिया है एवं शत्रु–मुख के रक्त को मधु से उपमित किया है। यहाँ कवि की काव्य–छटा झलकती है–

रणे कणेहत्य निपीय रक्तमधून्यरीणं वदनाम्बुजेषु।[2]

शिलीमुखा यस्य समन्ततोऽपि क्षीबा इव क्षोणितलं स्म यान्ति।।47।

चौहान वंश के नृपगण केवल योद्धा ही नहीं थे बल्कि वस्तुकला के प्रेमी भी थे। धार्मिक प्रवृत्ति उनमें कूट–कूट कर भरी थी। कवि ने यहाँ पर अजयपाल नामक राजा के द्वारा निर्मित "अजय मेरु" का कितना ही आकर्षक वर्णन किया गया है।

तद्वास्तु तन्तद्धनवस्तुसारप्राग्भारवीक्षास्तुतधातृसर्गम्।[3]

स्वर्गश्रियां जित्वरकान्तिकान्तमतिष्ठिपद्योऽजयमेरुदुर्गम्।।52।।

जिसनें अजयमेरु दुर्ग बनवाया, जो कि वस्तुकला का नमूना था, धन से पूर्ण और विधाता की सृष्टि को मात करने वाला था तथा अपनी कान्ति से स्वर्ग की शोभा को भी जीतने वाला था।[3]

जिस बाण भट्ट ने परिसंख्या अलंकार का निर्दर्शन कराते हुये अपनी 'कृति' कादम्बरी में वर्णन किया है उसी प्रकार नयचन्द्र ने हम्मीर महाकाव्य के प्रथमसर्ग के इस श्लोक में किया है।

राजा जयराज के राज्य में प्रजाजन नियमों का पालन करते थे। कोई किसी को मारता–या पकड़ता नहीं था। इसका वर्णन श्लेष एवं परिसंख्या अलंकार से युक्त इस श्लोक मे कितना सहज रूप में है –

यस्मिन्महीं शासति राजमार्गप्रोल्लङ्घनं तुङ्गसुरालयेषु।[4]

निर्स्त्रिंशताऽस्त्रेषु मदो द्विषेषु करग्रहोऽभात करपीडनेषु।। 55।।

---

1. हम्मीर महा0 – 1/43
2. वही – 1/47
3. वही –1/52
4. वही 1/55

जिसके पृथ्वी के शासन करने पर विशाल शराबखानों में ही मार्ग का उल्लंघन था, मन्दिरो मे नही, अस्त्रो में खड्ग दिखते है निष्करूणता कहीं नजर नही आती थी और पाणिग्रहण संस्कारो में ही था (हाथ पकड़ा जाता था) कहीं कर नहीं लिया जाता था। इससे राज्य की समृद्धता सूचित होती है।

अब जयपाल के बाद कवि ने 'वप्रराज' नाम के राजा के प्रताप का वर्णन बड़े ही सहज रूप में किया है। जिस राजा के पराक्रम के भयमात्र से स्त्रियाँ ऋतुमती हो जाती थी–

भयार्त्तवप्रायितबाहुदण्डः सर्वास्त्रविद्योपनिषत्करण्डः।[1]

लीलापराभूतसुपर्वराजः क्ष्माभृत्ततोऽराजत वप्रराजः।। 72

इसके बाद "वप्रराज" नामक राजा हुआ; जिसने सारे अस्त्र रूपी उपनिषदों का अध्ययन किया था, जिसके पराक्रम से भय के कारण स्त्रियाँ ऋतुमती हो जाती थी और जिसने युद्ध लीला से इन्द्र को भी मात कर दिया था।[1]

राजा वप्रराज इतना दानी था कि वह कभी किसी याचक के सम्मुख "न" शब्द नहीं करता था। इसी को कवि नयचन्द्र ने बड़ी काव्य चातुरी से प्रकट किया है–

खेलत्सु भूरिष्वपि याचकेषु दानैकलीलारसिकस्य यस्य।[2]

दापृष्ठचारी किल यो नकारो यदि प्रियोऽसौ न परः कदाचित्।। 79।।

प्रचुर संख्या में याचको को दान देने वालें इस दानी राजा के लिए तो "दा" धातु के पीछे लगने वाला ही "नकार" प्रिय वस्तु था, दूसरा "नकार" नहीं। वह दान देने से कभी मना नहीं करता था।[2]

इसके पश्चात् कवि ने 'शाकम्भरी' नामक स्थान पर 'शाकम्भरी' देवी का वर्णन किया है; इससे यह ज्ञात होता कि चौहान वंशीय राजा धार्मिक भी थे। यह यथार्थ वर्णन है।

अनल्पसंकल्पनकल्पवल्लीं विपक्षपक्षव्रजभेदभल्लीम्।[3]

त्रैलोक्यलोकावलिवन्द्यपादां सेवापरप्रत्तमहाप्रसादाम्।। 80।।

शाकम्भरीस्थानकृताधिवासां शाकम्भरीं नाम सुरीं प्रसाद्य।[4]

विश्वापतिर्विश्वहिताय शाकंभर्यां रुमां यः प्रकटीचकार।। 81।।

---

1. हम्मीर महाकाव्य – 1/72 2. वही – 79
3. वही – 1/ 80, 81

इस राजा ने प्रचुर संकल्प से पूर्ण, विपक्ष के भाले की भाँति वेध देनेवाली, त्रैलोक्य की वन्दनीय, 'शाकम्भरी' नामक स्थान पर निवास करने वाली, 'शाकम्भरी' नामक देवी को प्रसन्न करके, जगत कल्याण के निमित्त शाकम्भरी देवी में ही, इसने रूमादेवी को प्रकट कर दिया था। अब कवि नयचन्द्र सूरि ने वप्रराज के प्रताप का वर्णन कर चुकने के बाद सिंहराज नामक नृप के शौर्य एवं कीर्ति का वर्णन उत्कृष्ट रूप से किया है। जिसको पढ़कर पाठक आनन्द रस मे डूब जाता हैं–

उद्यच्छौर्यविनिर्जितोर्जितरिपुस्तम्बेरमौघोनघ–

स्त्रीसंचालितचारुचामरयुगव्याजोल्लसत्केसरः।[1]

आत्मीयासनमाश्रितो वनजुषामीशस्वभावं दध–

ज्जज्ञे सिंह इवोन्नतक्रमगतिः श्रीसिंहराजस्ततः।। 90

इसके बाद "सिहराज" नामक राजा हुआ जो शेर जैसी चाल से चलता था, जिसने अपने शौर्य से शत्रुओ के हाथियों के समूह को परास्त कर दिया था, पवित्र स्त्रियों के द्वारा सुन्दर चँवरों के जोड़े से जिसकी केशराशि दोलायमान होती थी और जो सर्वत्र स्वामित्व की प्रकृति को धारण करता है।[1]

उपर्युक्त श्लोक मे कवि की सुन्दर कल्पना के दर्शन होते है। चँवरों के चलने से राजा के बाल (केश) हिलते रहे होगें 'ऐसी कल्पना केवल कवि की काव्यचातुरी लेखन शैली की ही उपज कही जायेगी'।

कवि कह रहा है, औदार्य आदि सभी गुण निवास के लिये इधर–उधर भटके लेकिन उनको स्थान नहीं मिला और हरिराज के राज्य में आये–

यन्नाम प्रतिवर्णसंश्रुतसुधापूरापतद्यद्यशः,

कर्पूरोरुरजोभरप्रसृमराविर्भाविपङ्काकुले।[2]

वाणीनां पथि नाऽभजन्त पथिकीभावं यदीया गुणा

औदार्यप्रमुखाः किमद्भुतमहो! तत्तत्कवीनामपि।। 84

अहो। यह अद्भुत बात है कि उदारता आदि सत्कवियों के गुण भी उस "हरिराज" राजा के गुणों से साम्य नहीं कर सकते थे। उसके नाम के प्रत्येक अक्षर मे अमृत सागर भरा हुआ था तथा उसके यश रूपी कपूर की रज से समस्त वाणियों के पथ आकीर्ण हो गये थे।[2]

---

1. हम्मीर महा0– 1/90, 2. हम्मीर महा01/84

पर्वतों पर घूम–घूम कर भी औंदार्य आदि गुण निवास का स्थान नहीं पा सके अतः वे सब गुण पुरवासियों की भाँति रात–दिन उसके नगर में निवास करते है–

भ्रान्त्वाऽप्यदभ्रेषु धराधरेषु कुत्राप्यनासादितयोग्ययोगाः।

पौरा इवौदार्यमुखा गुणाः स्म दिवानिशं यस्य पुरे वसन्ति।।1/85

सिंहराज नामक चाहमान राजा की सेवा अन्य देशों के राजा किस प्रकार करते है; इसका वर्णन इस श्लोक में देखा जा सकता है ।

कर्णाटश्चटुपाटवप्रकटनो लाटः कपाटप्रद –

श्चोलस्त्रासविलोलहृत् परिगलद्धीजर्जरो गूर्जरः ।

अङ्गः सङ्गररङ्गभङ्गुरमतिः सम्पद्यते स्म क्षणा –

दिक्कुक्षिंभरि यत्प्रयाणपटहध्वाने समुत्सर्पति।। 1/97

इसके सेना के प्रयाण के वाद्यों की ध्वनि के दिशाओं में फैलाने पर कर्नाटक का राजा खुशामद प्रकट करने आ जाता था, लाटदेश का नृप अपने नगर के कपाट खोल कर स्वागत करता था और अङ्गराज क्षण भर में संग्राम के भय के कारण बुद्धिहीन हो गया है।[1]

इस प्रकार प्रथम सर्ग में चौहान वंश के वीरता पूर्ण कार्यो एवं उत्कृष्ठ कोटि की कल्पनायें पाठकों के लिए अत्यन्त आनन्दवर्धक है। इनका वस्तु वर्णन अत्यन्त सरल तथा हृदय ग्राह्य है।

महाकवि नयचन्द्र सूरि ने हम्मीर महाकाव्य में निम्नलिखित सर्गो में वस्तु वर्णन किया ।

प्रथमः सर्गः	हम्मीरपूर्वज–वर्णनम्
द्वितीयः सर्गः	भीमदेवप्रभृतिपूर्वज–वर्णनम्
तृतीयः सर्गः	पृथ्वीराजसंग्राम–वर्णनम्
चतुर्थः सर्गः	हम्मीरजन्म–वर्णनम्
पंचमः सर्गः	वसन्त–वर्णनम्
षष्ठः सर्गः	जलक्रीड़ा–वर्णनम्
सप्तम् सर्गः	श्रृङ्गार–सञ्जीवनो–वर्णनम्
अष्टमः सर्गः	हम्मीरदेवराज्याप्ति–वर्णनम्
नवमः सर्गः	हम्मीरदेवदिग्विजय–वर्णनम्

दशमः सर्गः	अल्लावदीनामर्षणो–वर्णनम्
एकादशः सर्गः	निसुरतखानवध–वर्णनम्
द्वादशः सर्गः	दिनद्वयसंग्राम–वर्णनम्
त्रयोदशः सर्गः	हम्मीरस्वर्गगमन–वर्णनम्
चतुर्दशः सर्गः	हम्मीर गुणस्तुति; काव्यकर्तुः प्रशस्तिः कविवाक्य–वर्णनम्

द्वितीय सर्ग में भीमदेव, विग्रहराज, गुन्ददेव, वल्लभराज, राम, चामुण्डराज, दुःशलदेव, विश्वलदेव, पृथ्वीराज, आल्हणदेव, आनल्लदेव, जगदेव, जयपाल, गङ्गदेव, सोमेश्वर आदि राजाओं की दानशीलता, वीरता, धैर्य, पराक्रम एवं धार्मिक, राजनीतिक आदि प्रवृत्तियों का वर्णन कवि ने सहज रूप मे किया है। इन राजाओं के आचरण एवं क्रिया कलापों पर अपनी सूक्ष्म दृष्टि डाली है। इन राजाओं की प्रत्येक घटना का वर्णन कवि ने यथार्थ रूप में किया है। उन्होने कहीं–कहीं कवि सहज कल्पना का भी सहारा लिया है ताकि वर्णन सुरूचि पूर्ण बन सकें। कवि अब यहाँ पर 'भीमदेव' नाम के राजा के वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन इस प्रकार किया है –

कौक्षेयकाग्रक्षतकुम्भिकुम्भोच्छलद्गलन्मौक्तिककैतवेन ।[1]

अपातयद् यो रिपुशौर्यवल्लेर्यशःप्रसूनानि चिरार्जितानि।। 2/3

राजा भीमदेव ने अपने खड्ग के अग्रभाग से शत्रुओं के हाथियों के मस्तक फोड़–फोड़कर मुक्ताफलो की मानों वर्षा कर दी और इसी बहाने उसने शत्रु पर पराक्रम प्रदर्शित करने वाली लता पर विकसित और प्रचुर समयावधि में अर्जित यशः पुष्पों को मानो बिखेर दिया।[1] इस राजा का प्रताप पृथ्वी पर चारों ओर फैल गया था शत्रुओं को यह क्षण भर में अक्रान्त कर देता था, शत्रु इसके दर्शन मात्र से निद्रा त्याग देते थे यह कवि की उदात्त कल्पना है।

स्वप्नेऽपि यद्दर्शनतो भयार्त्ता निद्रां प्रियामप्यजहुर्विपक्षाः।[2]

क्रियेत किं शर्करया तया वा या भक्ष्यमाणाऽऽशु दतो भनक्ति।। 2/4

स्वप्न में भी भयभीत हुए शत्रुगण उसके दर्शन मात्र से निद्रा और अपनी रानियों को भी छोड़ देते थे। उस शक्कर से क्या लाभ जो खाने के पश्चात् दाँतों को खोखला कर देती हो।[2]

---

1. हमीर महा0 2/3
2. वही 2/4

कवि ने किस तरह इसका वर्णन किया है जो व्यावहारिक जगत में उपयोगी सिद्ध हो रहा है ।

भीम देव के बाद अब दिग्रह राज नामक राजा हुआ, जो उत्पन्न होते ही अपने शत्रुओं का वध कर दिया। इस राजा का प्रताप मानों नवीन सूर्य था, जिसने कि शत्रुओं के मुंख कुमुदों को बन्द कर दिया, समुन्द्रपर्यन्त प्रजाओं को प्रसन्न कर दिया और अत्याचार के राहुओं को पाड़ित कर दिया था। इस राजा की कीर्ति पृथ्वी पर किस तरह फैल गयी, कवि ने इसे बड़ी पटुता से चित्रित किया है–

पुरा निजैःप्रौढतरैः प्रतापैरतापयद् कुपितो धरित्रीम्।

ततौ दयार्द्रीकृतचित्तवृत्तिर्यशःसुधाभिर्नितरामसिञ्चत्।।

पहले किए हुए अपने शक्तिमय कार्यों से इस क्रुद्ध राजा ने पृथ्वी को समाप्त कर दिया था तो बाद में दया से आर्द्र हुए इस राजा ने अपने कीर्ति रूपी सुधा से इसे सीच भी दिया था ।

इसके अनन्तर गुन्ददेव नामक राजा हुआ जो बहुत ही राजनीतिज्ञ एवं प्रजा वत्सल था। वह इतना वीर था कि उसकी कीर्ति चतुर्दिक फैल गयी।
कवि नयचन्द्र राजा गुन्ददेव के चरित्र का वर्णन इस तरह किया है –

कृतारिषड़वर्गजयो नयज्ञः श्रीगुन्ददेवोऽथ बभौ नृदेवः।

कवीन्द्रबद्धाऽपि यदीयकीर्तिजगत्समस्तं भ्रमति स्म चित्रम्।। 10

छः प्रकार के शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और ईर्ष्या) को जीतने वाले राजनीतिज्ञ 'गुन्ददेव' नामक राजा ने इसके वाद राज्य किया। आश्चर्य है कि कवियों द्वारा बाँधी हुई जिसकी कीर्ति भी सारे भूमण्डल में घूमने लगी।
(कवि रचित काव्यों द्वारा कीर्ति प्रसार हुआ)

कवि ने इन सम्पूर्ण चौहान वंशीय राजा के कल्याणकारी कार्य, सेवकों के प्रति उदारता एवं शत्रुओं के प्रति क्रूरता का जो वर्णन किया है। वह निरर्थक, अनावश्यक कार्यकलापों से विहीन है। इस सर्ग में राजाओं की वीरता एवं कल्पना पूर्ण रचना, पाठक को जिज्ञासु बना देती है।

---

1. **हम्मीर महा0 2/8**
2. **वही 2/10**

राजाओं की कीर्ति इतनी उज्जवल है कि चन्द्रमा की चांदनी को म्लान कर देती है, चौहान वंशी राजाराम की तलवार शत्रुओं को काटती थी, किन्तु रक्त स्पर्श नहीं करती थी–

यथा –

छिन्दन् शिरांसि प्रतिपक्षभूमी भृतामसिर्यस्य विशुद्धधारः।[1]

पस्पर्श रक्तं न यतो विशुद्धाः परस्य केनापि न संसृणन्ति।। 21

विशुद्ध धार वाली इस राजा की तलवार शत्रुओं के शीश काटती हुई, रक्त का स्पर्श भी नहीं करती थी कोई अनुराग नहीं दिखाती थी। विशुद्ध आदमी दूसरे आदमी की किसी वस्तु से सम्पर्क नहीं रखते।[1]

कवि ने नई स्थानों पर, सद्‌वचनों एवं सूक्तियों को उसी प्रकार गुम्फित किया है जिस प्रकार माला में मोतियों का गुम्फन होता है, जैसे उपर्युक्त श्लोक में दृष्टव्य है।

दुर्लभराज नामक राजा युद्ध भूमि में शत्रुगणो को अपनी भौहे टेढ़ीकर मानो पलायन पाठ पढ़ा रहा था, इस श्लोक में राजा की वीरता की छठा इस श्लोक में विद्यमान है ।

नृपोऽथं दध्रे वसुधां सुधांशु भाजिद्यशा दुर्लभराजसंज्ञः।[2]

भ्रुवैव भङ्गान् समराङ्गण यः प्रापीपठद् वैरिगणा निकामम्।। 25

इसके पश्चात् "दुर्लभ राज" नामक राजा ने वसुधा का भार धारण किया जो कि चन्द्रमा की शोभा को जीतने वाला था। यह राजा अपनी भौहो को टेढ़ी करके ही युद्ध भूमि में शत्रुगणो को पलायन का पाठ पढ़ा देता था।[2]

इसके अनन्तर "कुशलदेव" नामक शत्रु समूह को जीतने वाला राजा हुआ, जिसके मानस हृदय में आकरके चर्मरूपी हंस ने कौन–कौन से विलास नही कियें।

यहाँ पर कवि नयचन्द्र ने शत्रुओं की आवाजों की कल्पना वेदध्वनियो से की है।

यथा–

पलायमाना दरतो द्विषन्तो बम्बारवान् यान् समरेष्वकार्षुः।

जयश्रिय पाणिमहाय यस्य त एवं वेदध्वनयो बंभूवः।। 30।।

इसके डर से पलायन करते हुये शत्रुगण जो आवाजे करते थे, वे ही मानो इस नृपति की विजय श्री के विवाहोत्सव की वेद ध्वनियाँ थी।[3]

---

1. हम्मीर महा0 2/21 2. वही 2/25 3. वही 2/30

कविवर नयचन्द्र सूरि ने शत्रु पक्ष एवं मित्रपक्ष की कामिनियों मे परस्पर विरोध दिखाते हुये उनके कार्यो मे समानता किस प्रकार प्रकट किया है, इसकी स्पष्ट समीक्षा इस श्लोक से हो जाती है–

यस्यारिनारि गिरिगह्वरेषु सुह्रन्मृगाक्षी रतिमन्दिरेषु।[1]

स्थित्वा सुखं भूषणभूषिताङ्गी विवेद नैवोदितमस्तमर्कम्।। 35।।

इसके (विश्वलदेव) के शत्रुओं की रानियाँ पर्वत की गुफाओं मे कैदकर दी जाती थी और वे सूर्य के उदयास्त को भी नही जान सकती थी। इसी प्रकार इसके मित्रों की कामिनियाँ भी रति मन्दिरों में विलास मग्न रहकर भूषणादि से सुसज्जित होकर ऐसी मग्न रहती थी कि सूर्योदयास्त का उन्हे पता नहीं चलता था।[1] यह काव्यकर्त्ता की कुशलता को घोषित करता है, राजा की अगुलियों, हथेलियों और नाखूनों की कान्ति लोगों की चारूता का वर्णन अद्विितीय है। यह श्लोक एक अद्‌भुत उदाहरण है–

यथा –

त्यागेऽतिविश्वस्य विधे विधित्सोर्यङ्गुली पाणितलं नखाश्च।

स्वर्गोस्तनाः स्वर्द्रुमपल्लवाः स्वर्मणि किलाभ्यासकृतेऽग्रसृष्टि ।। 54।।

विधाता ने जब इस विश्व को त्याग मे परास्त करने वाले राजा की अंगुलियाँ, हंथेलियाँ और नख बनाये, इससे पूर्व अभ्यास करने के लिये कामधेनु के स्तनो, कल्पवृक्ष के पत्तो एवं स्वर्ग की मणि–चिन्तामणि का निर्माण किया था (यह इच्छानुसार याचको को दान देता था) वास्तव मे ऐसा वर्णन महाकाव्य की चारुता द्विगुणित की है।[2]

इसके अनन्तर कवि ने 'विश्वलदेव' नाम राजा के सौन्दर्य एवं पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है तब विश्व का स्वामी और समस्त जगत मे प्रसारित तेजवाला "विश्वलदेव" नामक राजा हुआ, जिसके हाँथ रूपी कमल मे इस वसुन्धरा ने वीज कोश रूपी कला की भावना प्राप्त की। राजा की कीर्तिरूपी लता के विकसित पुष्पस्वरूप वे मोती हुए जो कि शत्रुओ के हाँथियो के मस्तको से रणभूमि मे गिर गये थे। इस राजा की कीर्ति द्वारा पराजित हिमालय पर्वत क्या आज भी आँसू नही बहाता (अवश्य बहाता है) जो कि तपते हुये सूर्य के ताप के कारण बर्फ की शिलाओ के बहाने गलता रहता है।

---

1. हम्मीर महा० 2/35
2. वही 2/54

इस नृपति के गुणो को इच्छानुसार अवलोकन करके तृप्त होकर खुश हुआ देवो का समूह यह कष्ट तो धारण करता ही है, किं यह राजा क्यो नही इन्द्र का आश्रय प्राप्त करता है इस प्रकार के स्वाभाविक वर्णन को किस अलंकारिक रूप में वर्णन किया है । अलंकार चातुर्थ एवं कल्पना की उत्कृष्टता के अतिरिक्त उन्होंने कही मर्यादा का उल्लघंन नही किया। कवि ने ऐसी कलपना करके किस प्रकार वस्तु वर्णन किया है। इस द्वितीय सर्ग में वर्णन के माध्यम से अलंकारों की माला कितने सहज रुप में सुन्दरता से पिरो दिया है, राजा इतना सुन्दर है, कि वह कामदेवों को भी पराजित कर रहा था।

यथा– **वृन्दानिसङ्ख्ये बलिनामरीणां वीक्ष्योवरोधे च तनूदरीणाम् ।**[1]

यो विश्वविख्यातयशः प्रकाशो भृशं न कन्दर्पमुरीचकार ।।61।।

बलवान शत्रुओं के समूहों को युद्ध में देखकर और सुन्दरियों को अन्तःपुर में अवलोकन करके इस राजा का विश्वविख्यात यश का प्रकाश कामदेव को भी मात करता था।[1]

इस राजा के गुणों की महिमा का गान नाग कन्याएं जो क्षीर सागर की चञ्चल तरङ्गों की शोभा को भी पराजित करती है, वे बजती हुई बांसुरी के सुन्दर रव की भाँति ध्वनि करती रहती थी।

इसके अनन्तर पृथ्वी का चन्द्रमा स्वरूप, भीष्मपितामह जैसे शुभ्र गुण वाला श्री गङ्गदेव राजा हुआ, जिसके प्रताप की आग शत्रुओं की स्त्रियो की आहो की हवा से जलती रहती थी, इस राजा के यश को देख कर मानो चन्द्रमा पुलकित होता है। यहाँ पर राजा के यश की समता चन्द्रमा के यश से ही नही की गई, बल्कि राजा के यश के सम्मुख चन्द्रमा म्लान पड़ जाता है। यहाँ कवि ने रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकार को किस तरह पिरोया है। यह कवि की काव्य कुशलता का द्योतक है। राजा ने दानी कर्ण आदि को पीछे रखते हुये चौहान राजा जयपाल की दानशीलता का कितना सहज एवं सुन्दर वर्णन इस श्लोक में किया जो अनायास पाठको को प्रभावित करता रहता है–

यथा– गतेषु कर्णादिषु दानशौण्डेष्वयं जनो मा जनि दौःस्थ्यपात्रम्[2]

ध्यात्वेति यं दायकचक्रशक्रं मन्ये दयालुर्विदधे विधाता।। 66।।

कर्ण आदि दानियो मे श्रेष्ठ राजाओं के चले जाने पर भी यह राजा बुराई का पात्र नही थ क्योंकि दयालु विधाता ने उन्ही की पूर्ति के लिये दानश्रेष्ठ इसी राजा की

---

1. हम्मीर महा0 2/61
2. वही 2/66

उत्पत्ति की थी। राजा की तलवार सदैव शत्रुओं का स्वर्ग मे पहुचाने मे लीन रहती थी, उसमे समय की कृपणता नही थी।[2]

कवि की वर्णन चातुरी प्रत्येक श्लोक मे देखी जा सकती है। कवि ने विपरीत वस्तुओ से भी कार्य की सिद्ध की है, कहते है कि यदि अग्नि मे जल डाला जायतो अग्नि बुझ जाती है, किन्तु शत्रुओ की स्त्रियों के नेत्र अश्रु हविष्यान्न की भाँति राजा की प्रतापग्नि को बढाता है। इसकी छटा इस श्लोक मे समाहित है–

(यहाँ पर राजा सोमेश्वर की वीरता का वर्णन है)–

वह्नेर्द्विषन्नम्बिति यत्प्रतापा ग्निममभ्य वर्षन्नतरियोषितोऽस्रैः।[1]

हविर्वदेभिर्ववृधे सकामं वामे विधौ वामशेषमेव 70।।

"आग का शत्रु जल है" ऐसा सोचकर दुश्मन की नारियाँ इस नृप की प्रतापाग्नि को आँसुओं से बुझाती थीं, लेकिन फिर भी मानो हविष्यान्न प्राप्त करके इसका प्रतापनल बढ़ता ही जाता था।[1]

राजा इतना पराक्रमी एवं शक्तिशाली था कि हजार फनो वाला शेष नाग भी राजा से साम्य स्थापित नही कर सका। यहाँ कवि की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म मालुम पड़ती है; प्रकृति के कोई भी उपमान कवि के काव्य से बाहर नही हो पाये सेये कवि ने उनसबको अपनी लेखनी द्वारा काव्यबद्ध कर दिया है तथा उनकी कल्पनाये भी श्रेष्ठ है, यहाँ पर राजा का पराक्रम देखने योग्य है।

अनेन राज्ञा सममेकभावं कथं समायातु भुजंङ्गराजः।[2]

अधात् सहस्रेण स गां शिरोभिरयं पुनस्तां भुजैयकयैव।। 71।।

इस राजा से भुजंगराज शेषकिस प्रकार साम्य स्थापित कर सकता था जो कि हजार फणों से धरणी को धारण करता है, यह (राजा) तो एक भुजा मात्र से पृथ्वी का पालन करता था।[2]

राजा 'सोमेश्वर' की पत्नी अपने प्रिय स्वामी (पति) के आराधन मे लीन रहती थी। यहाँ पर ऐसा वर्णन करने का अर्थ यह है कि कपूर देवी एक पतिव्रता स्त्री थी, वह दूसरे पुरुषों को स्वप्न मे नही देखती थी।

---

1. हम्मीर महा0 2/70
2. वही 2/71

कविवर नयचन्द्र उसके द्वारा किस तरह पति की आराधना करवाकर उसकों पतिव्रता स्त्री का प्रतीक बनाया है, यह तात्कालिक समाज का दर्शन कराता है। रानी कपूर देवी की मुख की समता कमल पुष्प से की है, उनका यह वर्णन कल्पना का उत्कृष्ट कोटि का नमूना है यथा–

कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया प्रियाराधनसावधाना।[1]

जित यदास्येन जले निलीयाद्याप्यष्सुजं किन्न तपस्तनोति।। 72।।

"उसकी प्रियतमा "कपूरदेवी"थी जो कि अपने प्रिय के आराधन मे लीन रहती थी और जिसके मुख के द्वारा पराजित कमल क्या आज भी जल मे खड़ा रहकर तपस्या नही कर रहा है ?[1]

इसी तरह कवि ने "पृथ्वीराज" नामक राजा के युद्ध पराक्रम का वर्णन बडे ही आलंकारिक ढ़ग से किया है उसराजा की खड़ग मानो पुष्प विखेर रही थी। **यथा–**

द्विट्कुम्भिकुम्भतटदत्तदृढप्रहार प्रत्यङ्.ग लग्नव मौक्तिककैतवेन।[2]

क्ष्मामण्डलं फलितुमुन्मिषित प्रसून राजीव यस्य युधि खड्.गलताविरेजे।। 81।।

युद्ध भूमि मे इस राजा का खड्ग खिले हुये पुष्प समूह को विखेरता हुआ शोभादेता था। क्योकि दुश्मनो के हाँथियो के कुम्भस्थल विदीर्ण करने पर उसमे से निकले मोती खड्ग मे लगकर छिकटते रहते थे।[2]

कवि श्री नयचन्द्र ने जैसा अनूठा, कल्पना प्रसूत एवं यथार्थ के मिश्रण से युक्त वर्णन किया है, वैसा वर्णन अन्यत्र न के बराबर मिलता है। राजा पृथ्वीराज इतना बलशाली एवं पराक्रमी था, कि मानो लक्ष्मी उसके कर कमल मे एवं भगवान विष्णु स्वयं उसके पास निवास के लिये आते थे–

भेजे यस्य शयालुतां शयपयोजन्मन्य साविन्दिरा

तद्रागेण समैदसिच्छलमलंकृत्य स्वयं श्रीपतिः।

नैवं चेद् बलिवैरिविक्रम भरध्वंसेऽस्य कौतस्कुती

शक्तिः संयति संबभूव नितमामुल्लासिनी लधुतेः।। 2/84

---

1. हम्मार महा0 2/72
2. वही –2/81
3. वही – 2/84

लक्ष्मी इस राजा के कर कमल में, स्वयं विष्णु इसके खड्ग में अनुराग के बहाने निवास करते थे । यदि ऐसा नही होता तो बली शत्रुओ के ध्वंस करने में इस राजा की शक्ति कैसे सम्भव होती ?

नृप की कीर्ति भार के कारण हिमालय पराजित हो गया था। राजा अपने यश मात्र से ही पर्वत की उच्चता प्राप्त कर ली थी। इसका वर्णन कवि ने कितनी अनुपम सुन्दरता से किया है । जो वास्तव में काव्य प्रतिभा के धनी है–

औन्नत्येन यशोभरेण च पराभूतिं परांलम्भितो– [1]

उड्स्योच्चैर्लम्भयितुं पराभवपदं वाञ्छन् स्वयं तौ पुनः।

ईशाराधनमाततान हिमवान् कन्याप्रदानादिभि–

व्यर्थ किं यशसैककेन न तयोस्तं वेद मूंढो जितः ।।

उन्नति के कारण एवं कीर्ति भार के कारण इस राजा ने हिमालय को भी पराजित कर दिया था और था। और इस मूंढ़ पर्वतराज ने व्यर्थ ही पार्वती को शंकर भगवान से व्याहकर उनकी आराधना की। इस राजा ने तो अकेले यश मात्र से ही पर्वतराज जैसे उच्चता प्राप्त कर ली थी।.[1]

यह नृप (पृथ्वीराज) इतना दानी था, कि मानो स्वर्ग की देवियाँ भी इस राजा के दान की महिमा अपने कर कमलो मे वीणाएँ लेकर के मन्दकिनी के तट पर कामधेनु को चराती हुई, तथा चिन्ता मणि से जड़े हुये कल्पवृक्ष की छाया में आवृत्त चबूतरे पर बैठकर गाती रहती थी । प्रकृति के कोई भी उपमान शेष नही है जहाँ पर जैन आचार्य नयचन्द्र की तीक्ष्ण हृष्टि न गई हो। उनके एक एक श्लोक सुन्दर बन पड़े है –

जब राजा ने शत्रुओ के शीशो को काटा तो उनका रक्त मानो लाल समुद्र बह रहा है यहाँ अतिशंयोक्ति की झाड़ियाँ कवि ने लगा रखी हैं।

यत्खड्ग क्षुण्ण भूमीपति विततिशिरः संचरद्रक्तधारा –

वारां राशिं प्रसर्पत् क्षितितलमखिलं रक्त मेवा करिष्यत् ।।

एषांयाग्द च्छदच्छामृतकरकिरणक्षुब्धदुग्धाब्धिमुग्धा

यत्कीर्तिर्विस्फुरन्ती यदि सपदि न तच्छेवततामा पयिष्यत् ।।[2]

---

1. हम्मीर महा0 2/86

2. वही 2/84

यह नृपति अपने खड्ग से कटे शत्रु शीशो से निकले रक्त की धाराओं के समुद्र से सारी पृथ्वी को लाल कर डालता। यदि शुभ्र अमृत कर ("चन्द्रमा") की किरण समान क्षीराब्धि के तुल्य बिखरती हुई इस राजा की कीर्ति संसार को श्वेत नही कर देती।

रणभूमि मे बाण वर्षा करने वाले तथा महोत्सवों मे याचकों को दान देने वाले इस राजा की दान शीलता कभी नष्ट नही हुई, और न ही कभी वीरता नष्ट हुई। यह द्वितीय वीरांक यही समांप्त हो जाता है।[1]

पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनो में नाम तृतीय सर्गः में नृपति पृथ्वी राज के संग्राम का वर्णन किया गया है । अपने प्रसिद्धि के वेग से समस्त राजाओं को अपने अधिकार में करने वाले "सहाबदीन ने" शकराजा से उत्पीडित पश्चिम देशों के राजा इस पृथ्वी प्रसाद के द्वारा पर पहुंच गये इन्होने गोपांचल निवासी एवं अपने नाम के अनुरूप पृथ्वी को अनन्दित करने वाले श्री चन्द्रराज को अपना अगुआ बनाकर और अपनी ओर से उपहार हेतुलाये हुए मत्त गजो के मद से प्रसाद के हार भाग को आर्द्र कर दिया जाता था कवि के कहने का भाव यह है कि सहबुद्दीन से उत्पीड़ित नृप समूह अपनी रक्षार्थ पृथ्वीराज के पास आये और उपहार स्वरूप बहुत हाँथी एवं स्वर्ण आदि लाये इसके बाद राजा पृथ्वीराज के अनुमति से हरिपाल उन सब नृपों को दरबार में प्रवेश कर कराकर उचित स्थानों पर बैठाया तब नृपगण उसी प्रकार श्री विहीन हो गये थे जैसे सूखे हुए तालाब की श्री नष्ट हो जाती है।

यथा–

दीनाननाँस्तान् प्रविलोक्य पृथ्वीराजस्ततः पार्श्वचरानुवाच।[1]

काले सरांसीव निदाघसंज्ञे श्रियं किमेते दघते न भूपाः।।

तब उदास मुख उन्हें (राजाओं को) देखकर पृथ्वीराज ने पास में स्थित राजाओं से कहा कि ये राजा लोग गरमी के ऋतु में जैसे तालाब सूखकर श्रीहीन हो जाते हैं, वैसे ही क्यों उदास हो रहें हैं?[1]

कवि ने सत्य ही उद्घाटित किया है। उस समय मुसलमान राजाओं द्वारा छोटे–छोटे हिन्दू राजाओं को आक्रान्त किया जाता था। यहाँ पर भी चन्द्रराज आदि नृप, यौवन शासक सहावदीन से ऊबकर चौहान राजा पृथ्वीराज के पास रक्षार्थ आते है।

---

1. हम्मीर महा0 3/5

राजा के पूछने पर जब चन्द्रराज आप बीती ब्यथा का अपने मुख से वर्णन करता है, तब उनके दन्त चन्द्रमा की शोभा एवं समुद्र की लहरों को भी पराजित कर देते है, यह कितना आकर्षक वर्णन है।

यथा– **तं चन्द्रराजोऽथ जगाद चन्द्रश्रीगर्वसर्वङ्कषदन्तदीप्त्या।**[1]

हृद्युल्लसद्वाङ्न्मयदुग्धसिन्धोर्विस्तारयंस्तारतरानिवोर्मीन् ।।

तब "चन्द्रराज" ने चन्द्रमा की शोभा को परास्त करने वाली दन्त पंक्ति की दीप्ति से मानो समुद्र की लहरों का विस्तार करते हुए कहा; सहाबदीन तुर्कराज ने बहुत अधिक शक्ति प्राप्त कर ली है और वह क्षत्रिय वर्गो के संकट के लिये पृथ्वी पर धूमकेतु के समान उत्पन्न हुआ है।[1]

कवि नय चन्द्राचार्य ने यहाँ पर तत्कालीन समाज का यथार्थ वर्णन किया है। उस समय तुर्क शासको द्वारा किस प्रकार हिन्दू जनता को मारा जाता था ,उनकी रमणियों का हरण किया जाता था तथा किस तरह मन्दिरों को तोड़ा जाता था, इसका उदाहरण – इस श्लोक में देखा जा सकता है –

देशानशेषान् जहि नागराणां हरैणनेत्रा दह मन्दिराणि।[2]

विगृह्य यो बाहुजराजराजेः कुलानि चक्रे विपदाकुलानि।।

समस्त देश भागों को उसने अधिकार में कर लिया है, नगर निवासियों की रमणियों का हरण कर लिया है और मन्दिरों को जला दिया है, उसने क्षत्रियों के मण्डलों को युद्ध करके विपत्ति में डाल दिया है।[2]

कवि ने जितने मनोयोग और जिस कल्पना शक्ति से नायक हम्मीर के वंशज राजाओं का वर्णन किया है उसी तरह उसी कल्पना शक्ति से मिश्रित प्रतिनायक यवन शासकों का वर्णन किया है।

आगे यवनों से व्यथित राजा लोग पृथ्वीराज से कहते हैं कि, हे राजाओं के तिलकभूतराजन! पृथ्वी पर ऐसे राजा कोई नहीं है जिनकी पर्वत कन्दराएं भयभीत क्षत्रियों से उसने अपनी शक्ति से नहीं भरी हो; उसनें युद्ध में क्षण भर में समस्त क्षत्रिय समूह को यम सदन में भेज दिया है। वीर क्षत्रिय सोचते है कि कही यह परशुराम तो पुनः अवतीर्ण नहीं हो गये है। शकराज को देखकर, "अरे, यह आ गया" यह आ गया; ऐसा सोचकर लोग दशों दिशाओं में आँखें फाड़ –फाड़ कर देखते हुये डर के मारे त्रस्त हो उठे।

---

1. हम्मीर महा0 3/6 **2. वही 3/8**

इस तरह तुर्कराज के शौर्य को कवि ने एक अनूठे ढंग से वर्णित किया है। इस प्रकार राजाओं द्वारा कहे हुये दुख (करूणायुक्त) वचनों को सुनकर उद्विग्न हुआ, पृथ्वीराज शहाबुद्दीन को बाँधने की प्रतिज्ञा करता है और उससे युद्ध करने के लिये अपनी सेना को लेकर सज धजकर चल देता है। उस समय नगर की रमणियों ने राजा के ऊपर मंङ्गलकारी वस्तुएँ–अक्षत दूर्वा, पुष्पादि की वर्षा की। कवि ने युद्ध में जाते हुये राजाओं एवं उनकी सेनाओं का विचित्र वर्णन किया है। राजा की सेना द्वारा उड़ाई की धूल ने मानों सूर्य को आच्छादित कर दिया। यहाँ इस श्लोक में घोड़ों द्वारा उड़ाई गई धूल की छटा द्रष्टव्य है–

रजोव्रजैर्वाजिखुराभिघातोत्थैर्जानुदघ्नत्वमपि प्रयाताः।[1]

मदोदकैः सैन्यमतंङ्गजानां वंशद्वयस्य (?) सरितो बभूवुः।।

घोड़ों के खुरों द्वारा उड़ाई गयी धूल के समूहों से घुटनों तक की गहराई तक पहुँची हुई, सेना के मस्त हाँथियों के मद की नदियाँ दो बाँस के प्रमाण की हो गई है।[1]

पृथ्वीराज एवं सहाबुद्दीन दोनो पक्षो की सेनाये जब आमने–सामने आती है तो दोनो सेनाओ की तीन वस्तुएँ क्रमशः एक साथ मिल–गई, पहले तो धूल के समूह, फिर हथिनियों के कपाल से झरते हुए मद पर मंडराते भौरों का गुंजन और फिर योद्धाओं के भयङ्कर सिंहनाद यहाँ पर कितनी स्पष्ट कल्पना कविवर नयचन्द्र ने की है –

प्राग् रेणु जालानि ततः करेणुकुम्भभ्रमत्षट्पदझंकृतानि।

ततो भटानां स्फुटसिंहनादाः सैन्यद्वयस्याप्यमिलंस्तदानीम्।। 3/25

इस तरह तृतीय सर्ग के वस्तु–वर्णन मे कवि द्वारा वर्णित संग्रामवर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। युद्धों के सजीव वर्णन में कवि की जिस प्रतिभा की अभिव्यक्ति हुई है, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। युद्ध मे हाँथी, घोड़े किस तरह अपनी करामात दिखा रहे है इसका वर्णन निम्न श्लोक में है– हाँथी किस तरह रथ को संग्राम भूमि मे कौए की तरह उठाकरके दिया इसकी शोभा अत्यत श्रेष्ठ है–

कंश्चित स्प(स्य?) दात् स्प(स्य?)न्दनमापतन्तं घृत्वा करी काक मुखे सुखेन।[3]

अवाप्य तीव्रां भ्रमिमन्तरिक्षे प्रास्फालयत् सङ्गरभूशिलायाम्।। 31

---

1. हम्मीर महा0 – 3/21
2. वही 3/25
3. वही 3/31

भयंकर युद्ध हुआ इसके पश्चात् कौओं के समूहों की भांति पृथ्वीराज के योद्धओं की तलवारों से आघात पाये, तुर्कलोग वहाँ से लुप्त हो गये–

अथोद्धटैश्चारभटैस्तुरष्काश्चण्डासिदण्डैरभिताड्यमानाः।

नेशुः समन्ताल्लुगुडप्रयातैर्यथा कुलान्येकविलोचनानाम्।। 37।।

तब शकराज अपने उजड़े हुए शिविर को देखकर हांथ मे तलवार लेकर युद्ध के लिये दौडा, उसे आते देखकर चौहान राजा भी चमकती हुई तलवार लेकर, चमकती क्रोधग्नि के कारण लाल–लाल आँखों वाला तीव्र वेग से उसकी ओर दौडा। तब वीर समूह सोच रहे थे मानो कि दो जंगली हाँथी भारी तलवारो के रूप में उछलती सूडो से आपस मे लडने के लिये (आमने–सामने) आगये हो– इस श्लोक मे दोनो योद्धओं का साम्य दो हाँथियो से एवं उनकी तलवारो की साम्य सूडों से कवि ने किया है–

करोदरोद्वासिमहासिदण्डच्छलोल्लसत्पुष्करदुर्निरीक्षौ।[1]

अभ्युद्यतौ वन्यगजौ किमेतौ वितर्क्यमाणाविति वीरवारैः।। 3/41

दोनो के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। पृथ्वीराज ने सहाबुद्दीन को बन्दी बना लिया और पुनः उसे इसलिये छोड़ दिया कि मै पुनः (दोबारा) किससे युद्ध करूँगा। तुर्कराज सहाबुद्दीन ने क्रमशः सेना एकत्रित कर सात बार चौहान शासक पृथ्वीराज से युद्ध किया और सातो बार पराजित हुआ।

पृथक पृथक् सङ्गररङ्गभङ्गयेत्थं सप्तकृत्वः क्षितिवासवेन।

विनिर्जितोऽसौ यवनावनीशो मम्लौ च जग्लौ च भृशं नृशंसः।।[2]

युद्ध में पराजित होकर शकराज जैसे चन्द्रमा सूर्य की ओर चला जाता है उसी प्रकार खर्पर देश के स्वामी की ओर (सहायतार्थ) चला गया। इसके अनन्तर मङ्गलदेश के अधिपाति से विशाल सेना प्राप्त कर सहाबुद्दीन छलपूर्वक पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है; किन्तु पूर्व में किये गये युद्ध के कारण भयभीत "शकराज" ने पृथ्वी राज को देखकर यह सोचा कि जैसे मृगो के द्वारा सिंह नही जीता जा सकता, उसी प्रकार यह भी हमारे लिये अजेय है। तब यवनराज ने अपने विश्वस्त व्यक्तियों को भेजकर प्रचुर मात्रा में सुवर्ण देकर पृथ्वीराज के अश्वपाल के प्रधान को तथा तूर्यवाहको को फोड़ लिया तब रात्रि के अन्तिम प्रहर में सहाबुद्धीन पृथ्वीराज की सोती हुई सेना पर अचानक आक्रमण कर देता

---

1. हम्मीर महा0 3/37 2. वही 3/41 3. वही 3/46

है। तब शत्रु से मिला हुआ अश्वपाल प्रमुख द्वारा पृथ्वीराज को नटारम्भ नामक घोड़ पर चढ़ा दिया जाता है। वाद्यों के बजने पर वह घोड़ा नृत्य करने लगता है। तब राजा उस घोड़े से उतरकर जैसे ही भूमि पर आता है, उसी समय अव्यवस्थित हालत पर पृथ्वीराज के चारों ओर यवन लोग उसी प्रकार आकर घेर लेते हैं, जिस तरह चिड़िया सर्प को चारो ओर से घेर लेती है –

भज स्थिरत्वं व्रज मा विषादं इत्युक्तिभाजो यवना जवेन।[1]

किं कार्यतामूढममुं तथास्थम्वेष्टयन द्राक् चटका इवाहिम्।।

यहाँ पर कवि ने तुर्कशासक सहाबुद्दीन की साम एवं भेद की नीति को उजागर किया है, क्योकि जब तुर्क शासन यह जान लेता है कि पृथ्वीराज को जीतना मुश्किल है तब पृथ्वीराज के आदमियों को मिलाकर छल से रात्रि के अन्तिम पहर में आक्रमण करता है और असावधान नृप पर चारो तरफ से कई लोग मिल कर वार करते है। जब पहले ऐसा नियम था कि एक योद्धा ही योद्धा से युद्ध करेगा और वह भी ललकार कर अथवा सावधानावस्था में ।

इस तरह राजा ने अकेले ही बहुत देर तक युद्ध किया किन्तु तब किसी शक योद्धा ने पीछे से धनुष की डोरी गले मे डाल दिया तब सब योद्धओ ने मिलकर राजा को बाँध लिया। अब उस सद्गुणी, दुष्ट विनाशक, तेज आभायुक्त किन्तु विधि वशाद "सहाबदीन" शकपति द्वाराकैद किये जाने पर राजा ने भोजन आदि त्याग दिया। इसके पश्चात् पृथ्वीराज के बन्दी बनाये जाने पर जयराज ने भी एक महीने पर्यन्त मुसलमानी सेना से युद्ध किया। तब किसी म्लेच्छाधिपति ने दुःखी मन से कहा भी कि "तुम्हे इस पृथ्वीराज ने कई बार युद्ध में हराकर छोड़ दिया था। हाय! तुम इसे एक बार भी नही छोडते हो" ने कहा–'ये हिन्दू लोग इसी कारण से राजनीति के रहस्य से हीन कहे जाते हैं।

म्लेच्छावनीपमिममेवमन्यदा कश्चिज्जगाद सविषादमानसः।[2]

त्वामेषकोऽमुचदनेकशो रणे त्वम् नैकवेलमपि हा! जहास्यमुम्।। 69

उपर्युक्त श्लोक मे मुस्लिम शासको के क्रूरतम स्वभाव का परिचय कवि ने दिया है। कवि ने सहाबदीन के मुख से इस प्रकार कहलवाया कि–"ये हिन्दू लोग इसी कारण से राजनीत के रहस्य से हीन कहें जाते है,

---

1. हम्मीर महा0 2/61 **2. वही 2/69**

धर्मोचितामपि तदेति तद्गिरं श्रुत्वा भृशं स कुपितो नृशंसधीः।[1]

उच्यन्त एत इत एव विद्रवद्राजन्यकोपनिषदस्तमित्यवक्।।70

इसमें जयचन्द्र ने हिन्दू लोगों के सरल उदार हृदय होने पर करारा व्यग्यं किया है। यही विडम्बना है आज भी समाज मे देखा जाता है कि हिन्दू लोग उदार हृदय के है, वही दूसरी ओर मुसलमान कट्टर स्वभाव के होते है। यह यथार्थ वर्णन यर्थाथ के धरातल पर खरा उतरा है। यह वस्तु वर्णन सामाजिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

पृथ्वीराज को सहाबदीन किले मे चुना देता है। पृथ्वीराज के इस स्वर्गगमन को कविवर नयचन्द्राचार्य, कितने सहज एवं आकर्षक रूप मे किया है कि इसकी अनुपम शोभा इस श्लोक मे झलकती है–

शैवा यत् 'शिवमामनन्ति 'सुगतं' बौद्धा यदाचक्षते',[2]

सर्वज्ञं' यदुदाहरन्ति नितमामर्हन्मते छेकिलाः।

तद्ब्रह्माद्भुतचिन्मयं स्थिरमनास्तत्र स्थितोऽसौ स्मरन्

पृथ्वीराज नृपो नृपालितिलको लेभेशिवं शाश्वतम्।। 72

जिसे शैव मतानुयायी 'शिव' मानते है, बौद्ध 'सुगत' बतलाते है जैन लोग जिसे 'सर्वज्ञ' कहते है, उसी अद्भुत, चिन्मय ब्रह्म स्वरूप का स्मरण करता हुआ 'पृथ्वीराज' नृपति शिवधाम को प्राप्त हो गया। कवि ने मृत्यु का भी कितना स्वाभाविक वर्णन किया है।

पृथ्वी राज की यह विनाश गति श्रवण करके गौड कुल सूर्य "उदयराज" भी स्व–सैन्य के साथ युद्ध करके स्वर्ग को चलागया।

पृथ्वीपतेरित विनाशगतिं निशम्य दूनः स गौडकुलपङ्कजबालसूर्यः।[3]

स्थानं निजं तदुपगम्य बलं स्वयं च युध्वा दिवस्पतिपदं तरसाऽऽससाद।। 73

इसके पश्चात अश्रुसिक्त नयनवाले "हरिराज" नामक राजा ने पृथ्वीराज का अन्तिम क्रिया–कर्म किया तथा वाद में समस्त पृथ्वी को अधिकार मे कर लिया कुछ ही समय पश्चात इस राजा हरिराज नाम वाले चौहान नृप ने ख्याति लब्ध हो गया है। इसके यश एवं पराक्रम का वर्णन कवि ने बड़े ही अनूठे ढ़ंग से किया है, जिसे पढ़कर पाठक आनन्दरस मे मानो डुबकी लगाने लगता है।

---

1. हम्मीर महा0 3/70 2. वही 3/72 3. वही 3/73

निम्न श्लोक कवि की काव्य चातुरी (काव्य कुशलता) को प्रकट करता है–

भूचक्रे स्वयशोऽद्रितुङ्गशिखरादभ्युदगतैरंशुभिः –

ब्रह्माण्डाहतिभग्नवेगविधुरैः पश्चान्निवृत्तैःपुनः।

देवानामपि कुम्भजन्ममुनये दातुं किमर्थं व्यधा

न्नित्योल्लासिविकासिकाससुभगंभूष्णुश्रियं यो दिवम्।।[1]

सम्भवतःइस हरिराज भूप ने अपने यश रूपी उन्नत पर्वत से निकली हुई रश्मियों से अगस्त्य मुनि को देने के लिए स्वर्ग को अर्द्धभाग मे विभक्त कर दिया था। यह स्वर्ग इस राजा की विकसित काश के पुष्पो जैसी शुभ्रता की शोभा लिए हुआ था। इस राजा की कीर्ति के प्रवाह की लहरे प्रसारित होने पर चन्द्रमा 'दीन हो गया था, गंगा तरंग विहीन, सुमेरु, पर्वत कृष्ण वर्ण, शंकर भगवान् गर्वहीन, कुमुद मदरहित एवं इन्द्र का गजराज ऐरावत भी तेजहीन हो गया था। इस राजा ने अपनी क्रोधाग्नि में शत्रुवीरो की हवि डाल कर तथा शोक से क्रन्दन करती हुई उनकी रानियों के आसुओं के प्रचुर जल से पृथ्वी तल पर ऐसी अति वृष्टि करदी कि शीघ्र ही अन्याय रूपी बीजों के अंकुर विनष्ट हो गये। यहीं पर तृतीय अंक समाप्त हो जाता है।

कवि ने चतुर्थ सर्ग मे प्रमुख रूप से हम्मीर के जन्म का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया। हम्मीर के जन्म से पूर्व कुछ राजाओ ने पृथ्वी पर शासन किया है। उन चौहान राजाओं के यश, कीर्ति एवं उनकी दान शीलता, पराक्रम आदि गुणों का संक्षिप्त रूप में भव्य वर्णन कवि ने विभिन्न उपमानों के माध्यम से किया है, जो अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। उन राजाओ के नाम संक्षिप्त नाम इस प्रकार हैं– हरिराज, रणथम्भौर का राजा गोविन्दराज, वाल्हण। वाल्हण के दो पुत्र हुये जिनमे से प्रथम का नाम प्रह्लादन एवं द्वितीय का नाम वाग्भट था। राजा ने प्रह्लादन को राजा एवं वाग्भट को प्रधान अमात्य बनाया। प्रह्लादन शिकार (मृगया) के लिये वन मे जाता है वहाँ शेर उसे घायल कर देता है और वह राजा भी शेर को मार देता है। राजा की बहुत चिकित्सा होती है किन्तु वह अपने को दुःचिकित्स्य जानकर वह अपने पुत्र वीर नारायण को युवराज नियुक्त कर भाई वाग्भट को उसका संरक्षक नियुक्तकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वीर नारायण यौवन को प्राप्त करके "कत्सवाह नामक राजा की पुत्री को व्याह लाने के लिये 'आम्रपुरी' नामक नगरी को गया वहाँ पर उसके ऊपर –

---

1. हम्मीर महा0 3/77

जल्लालदीन आक्रमण करता है तब वीर नारायण भागकर "रणथम्भौर" आ जाता है। शकराज भी उसके पीछे से सेना लेकर आ जाता है किन्तु वीर नारायण को अजेय जानकर उसको छल से मारने की योजना बनाकर, अपना दूत भेजकर जल्लालदीन वीर नारायण को मित्रता करने हेतु बुलवाता है। वीर नारायण शकराज से मिलने हेतु दिल्ली जाना चाहता है तभी, नीतिशास्त्र मे पारङ्गत उसके चाचा वाग्भट उसे समझाते है ऐसा करना उचित नही है किन्तु वह मना करने पर भी विपरीत आचरण करते हुये दिल्ली जाकर शत्रुपक्ष से मिल जाता है दूसरे दिन शकराज वीरनारायण को जहर देकर मरवा देता है। उधर वाग्भट् ने मालवाधिपत को मारकर उसका राज्य हस्तगत कर लिया। कुछ समय पश्चात नीतिज्ञ वाग्भट ने अपनी चतुराई शौर्य, एवं पराक्रम के बल से पुनः रणथम्भौर को शकों से छीन लिया, तथा अपनी कीर्ति को प्रसारित करते हुए पृथ्वी पर इन्द्र की भाँति 12 वर्ष राज्य सुख का भोग किया। उसके राज्य मे प्रजा अत्यन्त सुखी थी।

उस राजा (वाग्भट) के स्वर्ग–लोक की चंचलनेत्रा रमणियो की कटाक्ष रूपी बाणों की लक्ष्यता प्राप्त कर लेने पर, उसके स्वर्गत हो जाने पर, उसका विजय युक्त प्रताप वाला "जैत्रसिंह" नामक पुत्र राजा बना जो कि संसार के नेत्रों को चन्दन के वृक्ष की भाँति आनन्द देने वाला था। कुछ ही समय मे यह राजा जैत्र सिंह प्रजा को अत्यन्त प्रिय हो गया–

समूलकाषंकषिताऽन्यायसन्तमसोदयः।[1]

तिग्मांशुरिव लोकानां यः प्रियं भावुकोऽभवत्।। 132।।

अन्याय रूपी अन्धकार को समूल नष्ट करने वाला, यह राजा सूर्य की भाँति समस्त प्रजा का प्रिय हो गया। कवि का इस तरह का वर्णन भला किसको प्रिय नही लगेगा। यहाँ राजा को उसकी प्रजा उसी तरह प्रिय हो गई जिस प्रकार शीत ऋतु मे सूर्य सबको प्रिय लगता था। चतुर्थ सर्ग का वस्तु वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है।

राजा यौवनावस्था को प्राप्त हो जाता है और राजा का विवाह गुणवती एवं कल्याणवती "हीरादेवी" के नाम्नी कन्या के साथ हुआ। वह "हीरादेवी" कामदेव की पत्नी रति को भी सुन्दरता मे पराजित करती थी।राजा के साथ कामदेव के आनन्द का भोग करती हुई उस ने शुभ गर्भ को धारण किया।

---

1. हम्मीर महा0 4/132

हर्ष से युक्त मन से प्रियतम की प्रेरणा से उस रानी ने समय आने पर, लक्ष्मी ने जिस प्रकार कुसुमायुध कामदेव को जन्म दिया था, उसी प्रकार पुत्र को जन्म दिया।

प्रहर्षुलमनः प्रेयःपूरितोद्दामदौहृदा।[2]

समये सुषुवे सूनुंद सा श्रीरिव सुमायुधम्।। 142

यहाँ पर कवि नयचन्द्र ने उस जन्म लेने वाले शिशु की तुलना कुसुमायुध कामदेव से कर अपनी वर्णन चातुरी को प्रकट किया है। बालक के जन्म के पश्चात एक आकाशवाणी होती है, जो कवि की कल्पना शक्ति की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करती है। इस श्लोक मे किस तरह आकाश वाणी हो रही है–

असौ शकासृग्बाष्पूरैः संस्नाप्य धरणीमिमाम्।[3]

इष्टा तन्मुण्ड पाथो जैरित्यासीद् व्योम्नि गीस्तदा।। 143

तब आकाश वाणी हुई कि यह बालक शक लोगों की रक्त धाराओं से इस पृथ्वी को स्नान करवा करके, उनके शिर रूपी कमलों से इसकी पूजा करेगा। यहाँ पर कवि नें वस्तु वर्णन को बड़ा ही रोचक बनाया है। जब उस बालक ने जन्म लिया तो उसके अंगो से उस समय ऐसी कान्ति का प्रवाह फैल रहा था, मानो सूतिका गृह मे हजारों सूर्य देदीप्य मान हों–

बालाङ्गसङ्गिरोचिर्भिरभितोऽपि प्रसृत्वरैः।[4]

अभ्युद्यतसहस्रार्कमिवासीत् सूतिकागृहम्।। 144

बालक के जन्म के समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं, शुभ वायुसंचार करने लगा, आकाश निर्मल हो गया और सूर्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित होने लगा। उस बालक के जन्म से प्रकृति भी प्रसन्न थी, नगर वासियों की तो बात ही मत पूछिये, स्वाभाविक है कि पुत्र जन्म के समय जब साधरण लोग अत्यधिक प्रसन्न होते है, तो राजपुत्र के जन्म के समय राज्य मे कितना हर्ष न रहा होगा। उसके जन्म लेने पर राजा ने ऐसी स्वर्ण वृष्टि की कि याचकों का दारिद्र्य दूर हो गया इस श्लोक मे राजा के दान का वर्णन कवि ने उन्मुक्त कण्ठ (लेखनी) से किया है–

---

1. हम्मीर महा0 4/141,
2. वही 4/142
3. वही 4/143
4. वही 4. वही 4/147

तज्जनौ स्वर्णधाराभिरवर्षद् भूपतिस्तथा।

मूलतोऽपि यथा शुष्यदर्थिरोरववासकः।।[1] 147

कवि को, वास्तविक, व्यवहारिक, सामाजिक क्रिया कलापों का ज्ञान था। उसने अपनी प्रतिभा द्वारा कथा को अलौकिक रूप दे दिया है। जिसका अध्ययन या श्रवण करने मात्र से कठोर से कठोरहृदय, पाठक का हृदय रससिक्त हो जाता है। कवि के कल्पना प्राचुर्य ने काव्य को श्रेष्ठ बना दिया है। ऐतिहासिक होते हुये भी यह महाकाव्य पाठकों को नीरस नही लगता है। जैनाचार्य होते हुये भी कवि को हिन्दुओं के सभी संस्कारो का ज्ञान था, तभी राजा दश दिन के पश्चात बालक का नाम करण एक समारोह मे करता है इसका वर्णन इस श्लोक में सहज ही दृष्टव्य है–

कृत्वा दशाहिकमहं विश्वं विश्वसुखावहम्।[2]

हर्षाद् हम्मीरदेवेति नामाऽमुष्मै पिता ददौ।। 148

इस बालक का दशाह्निक (दस दिन पश्चात होने वाला) समस्त विश्व को आनन्द देने वाला, महोत्सव करके प्रसन्न चित्त से राजा ने इसे 'हम्मीर' देव नाम प्रदान किया।[2] इसके अनन्तर क्रमशः चन्द्रमा की भाँति वह बालक दिनां दिन बढ़ने लगा तथा बिना प्रयास के ही हम्मीर ने सभी शास्त्रों को गुरु के पास रहकर अत्यन्त अल्प समय मे जान लिया यहाँ पर कवि ने 'हम्मीरदेव' की कुशाग्र बुद्धि की ओर संकेत किया है निम्न श्लोक मे उसके द्वारा सीखे गये शास्त्रों वर्णन अनुपम है–

न तच्छास्त्रं न तच्छस्त्रं न च तज्जनरञ्जनम्।[3]

सदाशयाम्बुजे तस्य न यदभ्रमरायत।। 151

ऐसा कोई शास्त्र या प्रजा का रंजन नहीं था जो उसके सज्जन हृदयरूपी कमल पर भ्रमरवत नहीं मंडराया हो।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि उस बालक हम्मीर ने सभी शास्त्रों, शस्त्रों को कुशलता से सीख लिया एवं प्रजारञ्जन के कार्यो में निपुण हो गया। कुछ समय बाद हम्मीर यौवनावस्था को प्राप्त हुआ इस अवस्था में कवि ने उसके एक–एक अंग का वर्णन भिन्न–भिन्न उपमानों से किया है जिसकी छटा दर्शनीय है–

---

1. हम्मीर महा0 4/147
2. वही 4/148
3. वही 4/151

केशाः केकिकलापकान्तिजयिनो वक्त्रं शशिप्रीतिभित्[1]

कण्ठः कम्बुरिपुःकपाटपटुताविक्षेपि वक्षःस्थलम्।

दोर्दण्डौ परिघापघातनिबिडौ पादौ कृताब्जापदौ,

किं किं रम्यतरं न यौवनपदं प्राप्तस्य तस्याऽभवत्।। 155

उसके केश मयूर के पुच्छ की कान्ति को भी मात करने वाले थे, मुख चन्द्रमा की प्रीति को समाप्त करने वाला था, कण्ठ शंख को, वक्षःस्थल कपाटों के चातुर्य को, भुजदण्ड अर्गला के आघात को तथा चरण कमलों को भी परास्त कर देने वाले थे। यौवन में आये हुए 'हम्मीर' की क्या–क्या वस्तु (अंग) अधिक सुन्दर नहीं थे– सब अंगादि रम्यतर थे।[1] ऐसा रम्यतर वर्णन पाठक को सहज रूप में ही 'मुग्ध' कर लेता है, ऐसे श्लोकों में कवि की काव्य कुशलता, छलकती है। इस श्लोंक में बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण है–

नारीभिःसुमचाप इत्यमरभुजन्मेति च प्रार्थिभि–[2]

र्गङ्गाभूरिति सत्यसङ्गरपरैर्ब्रहमेति तत्त्वोन्मुखैः।

स्वर्भुग्भूरिति योद्धृभिर्यम इति प्रत्यर्थिपृथ्वी धवैः,

कैः कैरेष कथं–कथं न युवतामध्याश्रितस्ततर्कितः।। 177

रमणियों के द्वारा कामदेव के समान यह माना जाता था याचकों के द्वारा इन्द्र के समान, सत्यवादियों के द्वारा भीष्म के समान, तत्त्वज्ञानियों द्वारा ब्रह्म के समान, योद्धाओं के द्वारा स्वर्ग भोगने योग्य के समान और शत्रु राजाओं द्वारा यम के समान माना गया है। किन–किन के द्वारा यह किस–किस प्रकार जवानी के भाव को प्राप्त कराया गया नहीं सोचा गया अर्थात विभिन्न प्रकार से लोग उसे मानने लग गये।[2]

वह इतना सुन्दर था कि सभी रमणियाँ उसे अपने मन मे पतिरूप मे वरण करना चाहती थी। इस प्रकार वह एक वीर, योद्धा, नीतिज्ञ, प्रजावत्सल एवं साहसी नृप था। जैत्र सिंह के 'हम्मीर' के अतिरिक्त भी दों पुत्र थे जिनमें प्रथम (ज्येष्ठ) राजनीति निष्णात सुरत्राण एवं सबसे छोटा शत्रुवीर विदारण में कुशल वीरम था, जो कि हम्मीर के क्रमशः बड़े एवं लघु भ्राता थे। इसके अनन्तर जैत्रसिंह ने अपने पुत्र हम्मीर का विवाह सात कन्याओ से कर दिया। यही पर चतुर्थ सर्ग समाप्त होता है।

1. हम्मीर महा0 4/155
2. वही 4/157

कविवर नयचन्द्र ने पंचम सर्ग मे 'वसन्त वर्णन' एवं षष्ठ सर्ग मे 'जल क्रीडा' वर्णन एवं सातवें सर्ग मे 'श्रृंगार संजीवन' का बड़ा ही मनोहारी, आकर्षक वर्णन किया है। आठवे सर्ग मे हम्मीर के राज्य प्राप्ति का वर्णन है। नवम सर्ग मे हम्मीर देव का दिग्विजय वर्णन है।

छः गुणो को और तीनो शक्तियों को धारण करने वाले इस राजा का मन निर्बाध दिग्विजय के लिये इच्छा करने लगा। तब ज्योतिषियो के द्वारा उचित ग्रहों के योग से युक्त शुभ लग्न निकाल देने पर अपने गोत्र की पूज्य वृद्धाओ के द्वारा मंगल कामना व पूजा किये जाने के बाद पूर्व दिशा को पृष्ठ मे रखकर तथा पश्चिम दिशा को सामने रखता हुआ, अपने ह्रदय मे वीर भाव का संचार करता हुआ, राजा हम्मीर अश्व पर आरुढ़ हो गया। इस सर्ग मे कविवर श्रीनयचन्द्र सूरि ने युद्ध का मानो सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। ऐसा ज्ञात होता है, नयचन्द्र युद्ध विद्या मे कुशल थे। राजा हम्मीर जब युद्ध करने जा रहे थे, तब उनका रथ इतना तेज चल रहा था कि मानो वह तब भूमि का स्पर्श तक नही करता था।[1]

उच्चैर्ध्वजालीर्बिभ्राणैः प्रशस्तस्यन्दनैस्तथा।[1]

यथा तदन्तर्विक्षिप्तैस्तिलैर्भेजे न भूतलम्।। 10

जिस प्रकार से रथो के अन्दर फेंके गये तिल पृथ्वी तल पर नही गिरे थे, उसी प्रकार ऊँची–ऊँची ध्वजाओं वाले श्रेष्ठ रथ भी इतने तेज चल रहे थे कि भूमि का भी स्पर्श नही करते थे।[1] आकाश के अन्तराल को प्रखर हुंकार से मुखरित करने वाले चंञ्चल पैदल सैनिक (चतुरंगिणी सेना के) राजा के मन को प्रसन्न कर रहे थे। राजा हम्मीर की सेना इतनी विशाल थी कि उनके द्वारा उडाई गई धूल से मानो सेना की छाया के लिये मण्डप सा आकाश मे तान दिया गया था।

पद प्रताप प्रोद्धूतैरभितोऽपि रजोव्रजैः।

छायार्थमिव सैयन्स्य प्रतेने दिवि मण्डपः।। 13

यहाँ पर कवि की कल्पना पराकाष्ठा को छू रही है कोई व्यक्ति राजा के हाथियो की प्रचुरता बताते थे तो कोई पैदल सैनिको की, कोई घोड़ो की, तो कोई उसके रथों की अधिकता बताते थे।

केचिद् गजानां केचिच्च पतीनां केऽपि वाजिनाम्।

रथानाम् केचनावोचन् सैन्ये तस्य प्रभूतताम्।। 14

---

1. हम्मीर महा0 9/10 2. वही 9/13 3. वहीर 9/14

राजा हम्मीर अपनी दिग्विजय का विस्तार करते हुये अर्जुन नामक राजा, मण्डलराज "भोज" आदि राजाओं को पराजित कर उनसे कर लेकर वह क्षिप्रा नदी के तट पर पहुँचता है । यहाँ पर कवि ने क्षिप्रा नदी का वर्णन बड़ी कुशलता से किया है–

क्षिप्रां विप्रांजलि त्यक्तैः सिक्तवप्रा पयःकणैः।[2]

दृष्ट्वा तस्याभवन् सैन्याः सज्जा मज्जनहेतवे।। 20

यहाँ ब्रह्मणों के द्वारा अपनी अंजलियो से छोड़े गये जल कणों के द्वारा जिसके तट सिंचित हो चुके ऐसी क्षिप्रा नदी को देख कर उस हम्मीर के सैनिक स्नान करने को तैयार हो गये। स्नान करने के पश्चात् निकले हुए सुन्दर कान्ति वाले घोड़े भी नदी के किनारे अपनी गर्दन के बालो को हिला–हिला कर मानो जल वर्षण कर रहे थे।
यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि ने स्वयं अपनी आँखों से घोड़े को सिर हिलाते देखा हो। यह कवि की कल्पना चातुरी अकारण ही पाठक को प्रभावित करती हैं इस क्षिप्रा नामक नदी की तुलना कवि ने तरुणी से किया है। यहाँ इसकी शोभा दर्शनीय है–

उन्मज्जत्कुम्भिकुम्भा सा स्रवन्ती सैनिकाशयम्।[2]

हरतिस्म चकोराक्षी यथा पीनोन्नमत्कुचा।। 23 ।।

सैनिको के हृदय को प्रसन्न करती हुई, वह नदी चकोर की आँखो वाली तरुणी की भाँति आकर्षित कर रही थी और उसमे हाँथियो के कपोल भाग जो डूब उतरा रहे थे मानो उसके पृथुल तथा उन्नत स्तनों की भाँति शोभा दे रहे थे।[2] यहाँ पर कवि ने नदी का मानवीकरण किया है। कवि, नयचन्द्र ने जैन कवि होते हुये भी शंकर भगवान की स्तुति की है। राजा हम्मीर ने क्षिप्रा नदी मे स्नान कर, दान आदि देकर, शंकर भगवान की पूजा की यथा–

नृपोऽपि निर्मितस्नानो हितदानैकतानधीः।[3]

तत्रानर्च महाकालं कालं दुष्कर्मवैरिणाम्।। 24

राजा ने भी स्नान करके दान आदि देकर दुष्कर्म रूपी शत्रुओं के लिये काल स्वरूप "श्रीमहाकाल" शंकर की यहाँ पर अर्चना की।[3] मेवाड़ पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर हम्मीर "आबू" पर्वत पर पहुँचा। कवि ने अपने वस्तु वर्णन मे नदियो, पहाड़ो, सरोवरो को भी उच्च स्थान दिया है। यहाँ पर आबू पर्वत की शोभा दर्शनीय है–

---

1. हम्मीर महा0 9/20,

2. वही 9/23

3. वही 9/24

हरिन्मणिगणस्यात्र प्रोल्लसन्त्यो मरीचयः।[1]

नवदूर्वावणभ्रान्तिं तद्धयानामजीजनन्।। 29

आबू पर्वत की हरी–हरी मणियों की निकलती हुई किरणें भी घोड़ो के लिए नई–नई दूब के जंगल का सा भ्रम पैदा कर रही हैं।[1] नृपति हम्मीर एक धार्मिक प्रवृत्ति का था, वह सदैव श्रेष्ठ जन, ऋषि मुनियों का सम्मान करता था। इसका वर्णन इस श्लोक मे है–

प्रणम्य महतीभक्तिः सर्वदामर्बुदा ततः।[2]

आश्रमेऽरुन्धतीजानेर्विशश्राम क्षणं नृपः।। 36

तब महान भक्ति वाले राजा ने सब मनोरथ पूर्ण करने वाली "अर्बुदा" को प्रणाम करके, अरुन्धती के पति श्री वसिष्ठ ऋषि के आश्रम मे क्षण भर के लिये विश्राम किया।[2] कवि ने यहाँ पर हम्मीर के विजय यात्रा के साथ, उस क्षेत्र के प्रसिद्ध पर्वतों, नदियों, देवालयों, वनों का वर्णन उसी प्रकार किया है। जिस तरह भोजन में नमक मिल जाने से उसका स्वाद बढ़ जाता है अर्थात भोजन सुस्वाद हो जाता है उसी प्रकार से इन पर्वतों आदि के वर्णन से हम्मीर विजय यात्रा में कवि ने चार चाँद लगा दिये है, अर्थात वर्णन, अत्याधिक मनोरम हो गया। इससे मेरे पास ऐसा कोई शब्द नही है जिससे मैं, इस वर्णन सौन्दर्य को व्यक्त कर सकूँ। कवि ने इस श्लोक में यह उद्‌घाटित किया है कि– "मन्दाकिनी" में स्नान करने से लोग रोग मुक्त हो जाते है यथा–

मन्दाकिन्यां विधायोच्चैः स्नपनं शमनं रुजाम्।[3]

अपूजयज्जगत्पूज्यमथा सावचलेश्वरम्।। 37

"मन्दाकिनी" नदी मे रोग मुक्ति करने वाले स्नान को प्रचुर मात्रा मे करके इस राजा ने "अचलेश्वर" भगवान् का जो संसार के लिये पूज्य हैं– पूजन किया।[3]

अब आगे बढ़ते हुये (विजय प्राप्त करते हुये) नृप–हम्मीरदेव ने अपने उन्नत शौर्य से निर्धन 'वर्धनपुर' मे उतर कर "चंगा" नामक नदी को भी बदरंग कर दिया।

इसी क्रम मे कविवर श्री नयचन्द्र जी नें "पुष्कर" नामक तीर्थ का बड़े ही सहज रूप मे वर्णन किया है–

"ततोऽवतीर्य वर्यश्रीनिर्धनं वर्धनं पुरम्।[4]

चाङ्गामापि गलद्रङ्गा चक्रे चक्रेरि(श) विक्रमः।। 40

---

1. हम्मीर महा0 9/29 2. वही 9/36
3. हम्मीर महा0 9/37 4. वही 9/40

इस विजय राजा ने 'अजयमेरु' (अजमेर) नगर को मध्य मे करके (जीतकर) "पुष्कर" तीर्थ मे पहुँच कर महान पुण्य का अर्जन किया। कवि की दृष्टि इतनी तीक्ष्ण (पैनी) थी कि उनसे कोई वस्तु छूटने नही पायी। एक तरफ पर्वत नदियों का वर्णन किया तो, दूसरी ओर 'झीलो' का भी मनोरम दृश्य उपस्थित किया है। नवम सर्ग का वस्तु वर्णन अत्यन्त उत्तम कोटि का है। नयचन्द्र ने इस श्लोक मे "शाकम्भरी" नामक झील के खारेपन का कारण शत्रु स्त्रियों के अश्रुजल को बताया है–

अदसीयरिपुस्त्रैणगलल्लोचनवारिभिः।[1]

तदादिलवणस्येह मन्ये खानिरजायत।। 45

मैं मानता हूँ कि इस राजा के दुश्मनों की स्त्रियों के निकले हुए अश्रुजल से ही 'शाकम्भरी' झील लवण की खान हो गई थी।[1]

राजा का विजय अभियान बढ़ रहा था उसने "करूशल", महाराष्ट्र, खाड़िल्ल, त्रिभुवनादि राज्यों के राजाओं को श्री विहीन करके, चारों दिशाओं में राजाओं के लिए अपनी आज्ञा शिरोधार्य करवा कर, यह नृप (हम्मीर) अपने नगर के समीप आ गया। राजा के आने पर नगर में मानों पुरजनों के अनुराग का समुद्र प्रवेश कर गया और वह उड़ती हुई लाल–लाल ध्वजाओं के बहाने से मानों उमड़ने लगा। अर्थात नृप के वापस आने से सभी पुरवासी अत्यन्त प्रसन्न थे–

"अमान् पुरान्तरे पौररागम्भोधिर्नृपागमे ।[2]

"वेल्लद्रक्तध्वजब्याजाद् दधावुद्वेलतामिव।।49।।

राजा हम्मीर नगर द्वार से, नगर के अन्दर प्रवेश करता है, उस समय ब्राह्मणों द्वारा आशीर्वचन दिये जाते है, बन्दीजन जयघोष करते है, बड़े–बड़े योद्धा राजा को क्रमशः प्रणाम करते है, राजा के ऊपर रमणियां अक्षत एवं फूलों की वर्षा कर रही थी, उस समय सभी दिशायें मुखरित हो उठी थीं। इस श्लोक मे कलशों की तुलना भवन लक्ष्मियों के स्तन से किया है। यथा –

उत्तम्भिता प्रतिद्वारं पौरैरुत्सववाञ्छया।[3]

कलशा रेजिरे सदमश्रीणामुरसिजा इव।।53।।

नागरिकों के द्वारा उत्त्सव की इच्छा से प्रत्येक द्वार पर उठाये गये कलश भवनलक्ष्मिनियों के स्तनों की भाँति शोभा दे रहे थे।[3]

---

1. हम्मीर महा0 9/45 2. वही 9/49 3. वही 9/53

यहाँ वस्तु वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही बन गया, जो पाठक को बलात् अपनी ओर आकृष्ट सा कर रहा है। कलशों की तुलना भवन लक्ष्मियों के स्तन से करके कवि ने अपने वर्णन की छटा चतुर्दिक बिखेर दिया है। कथानक कहीं भी अवरूद्ध नहीं होता, न ही वर्णन में दुरूहता आने पायी है। यहाँ कविवर श्री नयचन्द्र का वर्णन वास्तव में अनुपम है। जब हम्मीर नगर के अन्दर से होकर अपने राज महल की ओर जा रहा था, तब उसको देखने के लिए सभी स्त्रियां अपने कार्य को अधूरा छोड़ कर चली आयी। यथा–

क्षिप्त्वैकं कुण्डलं कर्णे करेऽन्या बिभ्रती परम्।[1]

रेजे पुरः स्फुरच्चक्रा सेनेवानङ्गभूपतेः।। 55

एक कान में कुण्डल धारण करके और दूसरा कुण्डल हाथ में लिए हुए स्त्रियां मानों चलते हुए चक्र हांथ में लिये हुए, कामदेव की सेना की भाँति प्रतीत हो रही थी।[1] समाप्त नहीं होने के कारण अन्य स्त्री की पांचों अंगुलियों से पकड़ी हुयी चोटी कमल के अन्दर से निकली हुई भँवरों की भ्रान्ति को धारण कर रही थी।

हम्मीरदेव के दर्शन हेतु निकली हुई नगर की तरुणियों के अंग किस तरह सुशोभित हो रहे थे, इसका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन कवि नयचन्द्र ने किया है। उन रमणियों के अङ्ग अनुपम हैं, निम्न श्लोक में ऐसा ही वर्णन देखा जा सकता है–

कुम्भिकुम्भे क्षणादात्मस्तनापहृति शङ्किनी।[2]

काचिदन्वेषयामास पाणिना स्वमुरो मुहुः।। 61।।

कोई तरुणी हॉथी के उन्नत कपोल स्थल को देख कर बार–बार अपने स्तनों को टटोल रही थी, उसे शंका थी कि कहीं उसके स्तनों की ऊँचाई हाथी न चुरा ले।[2] कवि नयचन्द्र का चाहे वीरता का वर्णन हो या श्रृंगार वर्णन या फिर प्रकृति वर्णन, प्रत्येक वर्णन श्रेष्ठ कोटि का है। यहाँ पर एक स्त्री की नूपुरों की झंकार का वर्णन कितनी चातुरी से किया है।

सुप्रसाधितसव्याङ्घ्री रणद्भिनूपुरैः परा।[3]

अर्धनारीश्वरालोकरागिणां रागमादधे।। 66।।

केवल बाँयें ही चरण को श्रृङंगार करने वाली अन्य स्त्री बजने वाले नूपुरों के कारण ऐसी शोभा दे रही थी। मानों वह अर्धनारीश्वर भगवान शंकर के भक्तों को रिझा–

---

1. हम्मीर महा0 9/55 2. वही 9/61
3. वही 96/6

रही हो। निम्न श्लोक में कवि नें राजा हम्मीरदेव के सौंदर्य का वर्णन बड़े अनूठे ढ़ंग से किया है–

दृग्द्वयेन पिबन्त्योऽस्यासीमं लावण्यवारिधिम्।[1]

जिग्युश्चुलुत्रयापीतससीमाब्धिं मुनिं स्त्रियः।। 69।।

इस राजा हम्मीर के सौन्दर्य रूपी समुद्र को दोनों नेत्रों से पीती हुई स्त्रियाँ ऐसी मालुम होती थी, मानो कि तीन–चुल्लुओं से समुद्र को पीने वाले मुनि को भी जीत लिया हों।[1] वहाँ की तरुणियाँ राजा को एक कटाक्ष से किस तरह वेध देती थी इसका उदाहरण यह श्लोक है–

अवाप्तावसराः काश्चित् कटाक्षैर्विव्यधुर्नृपम्।[2]

ता धानुष्क इवामुष्य कामः काण्डैर्व्यडम्वयत्।। 70।।

किन्ही स्त्रियों ने अवसर पाकर राजा को अपने कटाक्षों से वेध दिया था, उन्हे ही इसके कामदेव ने धनुर्धारी की भाँति बाणो की तरह काम मे ले लिया।[2] कोई–कोई तरुणियाँ राजा के सौन्दर्य की सुधा को पीकर के तृप्त नही हुई थी तो भी वे तुरन्त ही शिरः कम्प द्वारा अपनी तृप्ति बताती थीं। कवि राजा के सौन्दर्य का वर्णन कर चुकने के अनन्तर कथानक को आगे बढ़ाता है।
इस प्रकार नगर की स्त्रियों के नेत्रों द्वारा राजा के सौन्दर्य का पान किया गया और वह अपने महल मे पहुँच गया।

धर्म, अर्थ और काम से सम्बन्धित व्याख्याएँ तथा ये तीनों पुरुषार्थ उचित अवसर पाने पर राजा की सेवा करते थे। अपने पराक्रम से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त करने वाला एवं अच्युत (विष्णु) के समान स्थिति वाला होने पर भी, वह नृप जनार्दन (विष्णु) नही था। अब अगे कवि ने नृपति हम्मीरदेव की राज्य की धनाढ़यता का वर्णन अत्यन्त चातुरी से किया है– हम्मीर के राज्य मे रामचन्द्र की राज्य की भाँति ही कोई दुःखी नही था।
यथा–

अहिंसाटोपमाबिभ्रद्विलसत्सर्वमंङगलः।

महेश्वरोऽपि तद्राज्ये न विषादी जनोऽद्भुतम्।। 75।

---

1. हम्मीर महा0 9/69 **2. 9/70**

3. वही 9/75

उसके राज्य मे महान् धनाढ्य व्यक्ति भी अहिंसा धारण करते थे एवं सबकी मंगल कामना मे रत थे तथा कभी दुःखी नही रहते थे, यह अद्‌भुत बात थी।[3] उपर्युक्त श्लोक मे कवि ने हम्मीरदेव के राज्य की सम्पन्नता की ओर संकेत किया है। वहाँ की प्रजा खुशहाल थी प्रत्येक व्यक्ति धन–धान्य से पूर्ण थे, कोई किसी की हत्या आदि नही करते थे–

इसके अनन्तर दूसरे दिन राजा ने पुरोहित को बुलवा कर कोटि यज्ञों के फल के विषय उनसे पूछा। फल जान लेने पर नृप हम्मीर ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को, पुरोहितों को बुलवाकर यज्ञ प्रारम्भ करवाया, तब नगर मे सुरापान का निषेध शुरु हो गया, सात प्रकार के व्यसनों की मनाही कर दी गई एवं कारागार मे स्थिर कैदियों की मुक्ति भी प्रारम्भ हो गई।

मारेर्निवारणं सप्तव्यसनानां च वर्जनम्।[1]

मोक्षणं गुप्तिगुप्तानां प्रावर्तत तदा पुरे।।84।।

कोटि यज्ञों मे हवन हेतु जो वेदिका बनायी गयी थीं, उनकी सुन्दरता का वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता से किया है। नयचन्द्र ने निम्न श्लोक मे वेदी का मानवी करण किया।

तोरणभ्रूलतोतुङ्गकल्याणकलशस्तनी।[2]

शुशुभे वेदिका तत्र यज्ञश्रीरिव देहिनी।। 85।।

यज्ञ स्थल पर यज्ञ लक्ष्मी की भाँति सशरीर वेदिका शोभा देने लगी जिस पर लगे तोरण द्वार मानो उसकी भौंहे हो और ऊँचे–ऊँचे मंङ्ल कलश मानो उसके उन्नत स्तन हो।[2] कवि की छोटी–छोटी वस्तुओं का वर्णन भी बड़ा आकर्षक प्रतीत होता है, जो पाठक को बलात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। यज्ञ प्रारम्भ था, सभी ब्राह्मणों ने तैतीस करोड़ देवताओ का आवाहन किया। नृप वेदी के पास यजमान के रुप में सुशोभिता था। यज्ञ के निर्विघ्न सम्पन्न हो जाने पर, नृप ने स्वर्ण एवं चाँदी का इतना दान किया कि उसका समस्त खजाना रिक्त हो गया। निम्न श्लोक मे नृप की दान शीलता झलकती है–

नृपविश्राणितस्वर्णकूटेषु नटतो द्विजान्।.[3]

निरीक्ष्य निर्जरा मेरुक्रोडक्रीडामंद जहुः।। 94।।

---

1. हम्मीर महा० 9/84 2. वही 9/85

3. वही 9/94

राजा के द्वारा दिये हुये सोने की ढ़ेरो पर नाचते हुये ब्राह्मणो को देखकर देवता लोगों ने मेरु पर्वत की गोद मे होने वाली क्रीड़ा के गर्व को भी त्याग दिया।[3]

श्री हम्मीर की कोई तो, हाँथी दान करने वाले के रूप मे, कोई घोड़े दान करने वाले के रूप मे, कोई प्रचुर स्वर्ण मुद्रा देने वाले के रूप मे स्तुति कर रहे थे। कवि ने यहाँ पर नृपति हम्मीर की अतिशय दानशीलता का वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मे किया है निम्न श्लोक मे कवि की कल्पना शक्ति झलक रही है। कवि ने अपने वर्णन मे अतिशयता की सीमा को पार करने का साहस दिखाया है–

विश्राणनं सृजन् चिन्ताकल्पनाकामनाऽतिगम्।[1]

स चिन्तामणिकल्पद्रुकामकुम्भेष्वधाद् घृणाम्।। 97।।

इस राजा ने विचारों से, कल्पना से एवं कामना से भी परे दान दिया और इस प्रकार उसने चिन्ता मणि–पत्थर, कल्पवृक्ष एवं कामकुम्भों के प्रति भी अनादर रख दिया।[1] इसके अनन्तर नृप ने मिश्री मिले हुये दूध आदि से निर्मित भोज्य पदार्थ ब्राह्मणों को पर्याप्त मात्रा में खिलाया। तब राजा ने पुरोहित के द्वारा बताये गये एक मास के मुनि व्रत को प्रीति पूर्वक धारण किया। उधर अलाउद्दीन ने हम्मीर की वीरता वर्णन सुनकर अपने भाई उल्लूखान से इस प्रकार कहा–रणथम्भौर का नृप जैत्र सिंह पहले मेरे प्रताप के भय से, कर चुकता था, किन्तु उसका पुत्र अत्यन्त गर्वीला हम्मीर नाम से विख्यात है। वह दण्ड या कर देना तो दूर, मुझसे बोलता तक नही। वह अब तक प्रतापी होने के कारण अजेय है, किन्तु मेरे द्वारा खेल–खेल में जीत लिया जायेगा। इस तरह कहते हुये अलाउद्दीन ने रणथम्भौर को नष्ट करने हेतु अष्टायुति घुडसवारो की सेना लेकर भेजा।

उल्लूखान ने अठारह दिनो तक गाँवो को जलाते हुये गेहूँ के खेंतो को चराते उखाड़ते बिताया। इधर तीन प्रकाश की शुद्वियों के व्रत के कारण राजा के मौन रहने पर व्रती रहने पर "धर्मसिंह" की बुद्धि के अनुसार सेनापति महाबलशाली 'भीमसिंह' समर मे वीरता दिखाने वाले वीरों के समूह से युक्त सेनालेकर शत्रुसेना से लड़ने चल दिया। उन की सेनाओ के मध्य घोर संघर्ष हुआ। कवि ने दोनों ओर की सेनाओं का एवं युद्ध का सचित्र वर्णन किया है। कवि ऐसा दिखाया है, मानो दैत्यो एवं देवताओ के मध्य युद्ध हो रहा है–

---

1. हम्मीर महा0 9/97

शकानां बाहुजानां च मिथोऽप्यथ निरीक्षणात्।[1]

अजागरीन्महावैरं दैत्यानां द्युसदामिव।। 118।।

शकों और क्षत्रियों के मध्य युद्ध के निरीक्षण से ऐसा लगता था मानो दैत्यो मे और देवताओ में शत्रुता जाग गई हो।[1]

कवि ने बड़ा ही अतिशयोक्ति पूर्ण युद्ध का वर्णन किया है, जिससे उनके वस्तु वर्णन की शोभा द्विगुणित हो गई है। कवि की कल्पना शक्ति भी बड़ी तीव्र है, जिसका दर्शन निम्न श्लोक मे हो रहा है–

मा भूद्युद्ध रसच्छेदोऽस्माकं तापनतापनात्।[2]

इतीव प्राग् भटास्तेनुर्गगने काण्डमण्डपम्।। 120।।

सूर्य की गर्मी से हमारे युद्ध रस का भंग न हो, यह सोचकर मानो पहले से ही योद्धओ ने बाणों का मण्डप आकाश में तान दिया था।[2]

दोनो योद्धाओ के मध्य भयंकर युद्ध होता है, किन्तु कवि की वर्णन चातुरी उसे और भी गम्भीरता प्रदान कर रही है। कल्पनाएँ भी कवि की अनुपम है। कवि ने रक्त रंजित तलवारो की साम्य किस तरह राक्षसों की जिह्वाओं से किया है, ऐसा वर्णन इस श्लोक मे हम देख सकते है–

विसृजारुणिता रेजुर्वीराणां तरवारयः।[3]

लोला इव पलादानां रणे कीलालपायिनाम्।। 128।।

वीरों की खून से लाल हुई तलवारे ऐसी शोभा दे रही थी, मानो वे रक्त पीने वाले राक्षसों की जिह्वाएँ हो।[3]

हम्मीर कवि का नवां सर्ग तो युद्ध महाकाव्य जैसा प्रतीत होता है, कवि ने संग्राम का ऐसा वर्णन किया है, मानो वह स्वयं सम्पूर्ण युद्ध की घटनाएँ अपनी आँखो से देखा हो। निम्न श्लोको मे युद्ध का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन दृष्टव्य है–

तदा भटप्रकाण्डानां युद्धं किमिव वर्ण्यते।[4]

तदयुध्यन्त शस्त्राण्यप्यन्योऽन्यास्फालनच्छलात्।। 134।।

तब श्रेष्ठ योद्धाओं के युद्ध का क्या वर्णन किया जाय, क्योकि वहाँ तो एक दूसरे पर आक्रमण के बहाने से मानो शस्त्र ही लड़ रहे थे।[4]

---

1. हम्मीर महा0 9/118 **2. वही 9/120**

3. वही 9/128 **4. वही 9/134**

बलोच्छलितधूलीभिर्महाध्वान्ते प्रसर्पति।[1]

स्वान्योपलक्षणं जज्ञे केवलं स्वस्वभाषया।।135।।

सेनाओ के द्वारा उडाई हुई धूल से घना अन्धकार हो जाने पर केवल योद्धाओं की भाषा से ही अपने तथा पराये व्यक्तियों का ज्ञान होता था।[1]

यहाँ पर कवि का भाव यह है कि युद्ध में इतनी ज्यादा धूल उड़ रही थी कि कुछ दिखाई नही पड़ रहा था केवल आवाज से ही स्वजन तथा शत्रुओं की पहचान की जा सकती थी। जब शकों की सेना हारने लगी तो उनके योद्धा चौहान योद्धाओं के पैर पर सिर रख कर जीवन दान माँग रहे थे। इसे निम्न श्लोक मे नयचन्द्र ने, चौहान योद्धाओं की सबलता तथा शकसेना की दुर्बलता को प्रकट किया है–

केचित्तृणं दधुर्दद्भिर्निपेतुः केऽपि पादयोः।[2]

त्वग्दगौरित्यवदन् केऽपि जीवं त्रातुं शकब्रुवाः।। 142।।

और कोई शकाधम तो अपने जीवन को बचाने के लिए दाँतो से तिनका धारण करके शरण मे आ जाते थे, कोई पैरो मे गिर जाते थे, कोई यह कह कर प्राणो के भीख माँगते थे कि "मै तो तुम्हारी गाय हूँ"।[2]

इस प्रकार से शकों की सेना को नष्ट कर भीमसिंह लौट आया। इसके पश्चात् क्रुद्ध उल्लूखान भी चुप–चाप रवाना हो गया। शकों से छीने हुये वाद्य को प्रसन्नता के कारण भीमसिंह ने वनप्रदेश मे बजा दिया, अपनी विजय समझ कर सभी मुस्लिम सेना एकत्र हुई और भीम को मार डाला। तब व्रत के पूर्ण होन जाने पर नृप हम्मीर ने भीम सिंह का साथ छोड़कर आने वाले धर्मसिह की दोनों आँखे निकलवा लिया और धर्मसिंह का पद छीन कर भोजदेव को दिया।

इसके अनन्तर धर्मसिंह ने मन मे अपमान के कारण शत्रुता रख करके 'धारादेवी' को नृत्य की शिक्षा दी और राजा से अपने को पुनः पद देने हेतु कहलवाया। धारादेवी ने कहा प्रभु यदि धर्मसिंह को पुनः उसका पद दे दिया जाय तो वह मरे हुए घोडो से द्विगुणित घोड़े पुनःले आयेगा। राजा ने अन्धे धमसिंह को उसका पद दे दिया। निम्नलिखित श्लोक मे कवि ने भूपति हम्मीरदेव के तृष्णा पर व्यंग्य किया है–

---

1. **हम्मीर महा0 9/135**
2. **2. वही 9/142**

बिन्दवोऽपि स्फुरल्लोभमदेनान्धम्भविष्णवः।[1]

सपत्नान् सोदरीयन्ति सपत्नीयन्ति सोदरान्।। 165।।

बढ़ते हुए लोभ के मद से अन्धे हुए छोटे–छोटे लोग भी अपने शत्रुओं को भाई बना लेते है और भाइयो को शत्रु।[1]

उधर अपने अपमान का बदला लेने के लिये अन्धा धर्मसिंह क्रोध के कारण हम्मीर के राज्य को नष्ट करने हेतु राजा को लोभ मे डालकर प्रजा से कठोर कर लेना प्रारम्भ कर दिया तथा भोजराज को अपमानित किया। तब भोजराज ने राजा से शिकायत की किन्तु राजा ने भी अन्धे धर्मसिंह का पक्ष लिया और कहा धर्मसिंह की आज्ञा किसी के द्वारा टाली नही जा सकती। अपमानित भोज देव राजा को दुष्टबुद्धि जानकर अपने भ्राता पीथसिंह, सहित काशी यात्रा के बहाने हम्मीर का राज्य छोड़कर निकल जाता है। भोज देव के चले जाने पर प्रसन्न मन वाले राजा ने दण्ड नायक के पद पर "रतिपाल वीर" को नियुक्त कर दिया और कुछ समय मधुरता पूर्वक व्यतीत किया।

अल्लावदीन मर्षणों नाम दशमः सर्ग। दशवे सर्ग मे भूपति हम्मीर के योद्धा महिमासाहि, रतिपालादि अलावदीन की सेना को पराजित कर उल्लूखान को खदेड़ देती है। भोजदेव अपमानित होकर राज्य से निकल जाता है और उससे बदला लेने की भावना जाग्रत हो जाती है, तथा वह जाकर हम्मीरदेव के शत्रु अल्लावदीन से मिल जाता है। भोजदेव कहता है ''कि यदि बुराई करने वाले अपने सगे भ्राता का भी वध कर दें तो उसमे कोई बुराई नही", निम्न श्लोक मे कवि की नीति सम्बन्धी ज्ञान देखा जा सकता–

अपकारपरान् सहोदरान्अपि हन्यात् किल नास्ति पातकम्।[2]

अभिमानवतां नयोन्मुखैः स्थितिरेषा जगदे सनातनी।। 5।।

अपकार करने वाले सगे भाइयों को भी मार दे, तो कोई पाप नही होता। नीतिवद् व्यक्तियों ने कहा है कि अभिमान रखने वालों की यह सनातन स्थिति होती है।[2] ऐसी धारणा को उचित चरितार्थ करता हुआ, भोजदेव अल्लावदीन के पास पहुँचता है, तब उसके आगमन से आनन्दित हुये अल्लावदीन ने उसे (भोजदेव को) 'जगरा' नाम की नगरी प्रदान कर दी। सिरोपाँव आदि दिये। यह नगरी मुग्द्ल नरेश की थी।

---

1. हम्मीर महा० 9/165
2. वही 10/5

तत्समागमनहर्षवशात्माऽल्लावदीननृपतिः स ततोऽस्मै।[1]

वस्त्रनिर्वपणपूर्वमयच्छन्मुद्‌गलेशनगरीं जगरां ताम्।। 10।।

इसके भोजदेव का स्वागत सत्कार कर, उसे जगरा का राज्य सौप कर एक दिन अल्लावदीन ने भोज से हम्मीर को पराजित करने का उपाय पूछा जो निम्न श्लोक मे दृष्टव्य है–

आत्मनीनमधिगत्य तमुच्चैरन्यदेति यवनेन्दुरपृच्छत।[2]

ब्रूहि भोज कथमेष हमीरो जीयते युधि मया द्रुतमेव।। 14।।

उसे (भोजदेव को) अपना बना हुआ जानकर, एक दिन यवनराज ने पूछा–"हे भोजदेव बोलो! यह हम्मीर कैसे मेरे द्वारा शीघ्र ही युद्ध मे जीता जा सकता है।" इस तरह पूछने पर, भोजदेव शकाधिपति अल्लावदीन को हम्मीर की, वीरता को यह कहते हुये बताता है कि वे क्रोध न करें। यहॉ नयचन्द्र की वर्णन चातुरी झलक रही है–क्योकि निम्न श्लोक मे कवि ने हम्मीर देव नृपति की वीरता का वर्णन 'भोजदेव' के मुख से कराया है–

शैथिल्यं कुन्तलेषु प्रसभमुपनयन् पीडयन् मध्यदेश[3]

स्थानभ्रष्टां च काञ्चीं विदधदुपचयन् काममङ्गेषु लीलाम्।

यो भूमेश्चञ्चलाक्ष्याः पतिरिव तनुते भाग्यसौभाग्यलक्ष्मीं

स श्री हम्मीर वीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।। 16।।

कुन्तल देश को शिथिल करता हुआ, मध्य देश को आक्रान्त करता हुआ, काञ्चीं नगरी को नष्ट करता हुआ और स्वच्छन्द रूप से अङ्गरूप में, अपना विस्तार करता हुआ, जो हम्मीर वीर चञ्चल ऑखो वाली भूमि के पति की तरह भाग्य और सौभाग्य की लक्ष्मी विस्तृत करता है, वह कैसे खेल–खेल मे युद्ध भूमि में जीता जा सकता है।[3]

कवि की यह प्रमुख विशेषता है कि वह वर्णन की चरम सीमा को लांघ कर वर्णन करता है। भोजदेव के मुख से अनेक उपमानों के माध्यम से हम्मीर की वीरता पराक्रम का वर्णन बड़े ही सहज रूप मे करवाया है इस बात का दूसरा उदाहरण यह श्लोक है–

---

1. हम्मीर महा0 10/10
2. वही 10/14
3. वही 10/16

यं व्यालोक्यापि खड्गग्रहणपटुकरम् बिभ्यतां पार्थिवानाम्[1]

निःश्वासो नासिदण्डो न च कुलममलं नापि शौर्य न धैर्यम्।

किन्त्वेकं तूर्णमेवापसरणमयते ध्यानमार्गेऽध्वगत्वं

स श्रीहम्मीर वीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव।। 19।।

जिसे तलवार हाथ मे लिए हुये देखकर, डरे हुये राजाओं की न केवल सॉसे ही अथवा न तलवार, न पवित्रकुल, न शौर्य–धैर्य ही भाग जाता है, किन्तु उनका ध्यान ही तुरन्त भाग जाता है वह श्री हम्मीर वीर कैसे खेल–खेल मे ही युद्ध भूमि मे जीता जा सकता है।[1] इस तरह भोजदेव ने विभिन्न प्रकार से हम्मीर देव की वीरता का वर्णन कर चुकने के बाद, अल्लावदीन से कहा, कि हे स्वामी यदि इस हम्मीर को जीतना चाहते हो तो शीघ्र ही सेना को प्रस्थान (प्रयाण) की आज्ञा दे दो क्योकि इस प्रकार (हम्मीरदेव) का देश इस समय नये–नये पुष्पों के अंकुरो से भरपूर है और उसकी समस्त भूमि हरीतिमा से युक्त है–

तदमुं जिगीषसि यदीश! सर्वथा त्वरया तदा प्रवितर प्रयाणकम्।[2]

यदमुष्य नीवृदधुना नवोल्लसत्सुमनः प्ररोहहरितीकृतावनिः।। 29।।

इस तरह भोजदेव के वचनों को सुनकर अल्लावदीन ने उल्लूखान को बुलाकर एक लाख घुड़सवार देकर हम्मीर को नष्ट करने हेतु भेजा। उल्लूखान हिन्दूवार नगर मे पहुंचता है। दोनो सेनाएँ भयङ्कर युद्ध करती है। हम्मीर के आठ योद्धा, आठों दिशाओं से म्लेच्छो की सेना पर किस तरह टूट पड़ते है और कौन योद्धा किस दिशा मे लड़ रहा है, इसका वर्णन निम्न श्लोकों मे दृष्टव्य है–

श्री वीरमेन्द्रो दिशि माघवत्यां दिशि प्रतीच्यां महिमाख्यसाहिः।[3]

श्री जाजदेवो दिशि दक्षिणस्यां दिश्युत्तरस्यामपि गर्भरूकः।। 38।।

आग्नेयभागे रतिपालवीरः समीरभागे तिचरः शकेशः।

ईशानभागे रणमल्लमल्लः श्री वैचरो नैर्ऋतनामभागे।। 39।।

इत्थं यथायुक्ति कृतप्रतिज्ञा वीरा रणोत्साहलसच्छरीराः।

हम्मीर हम्मीर इति ब्रुवाणाः शकाधिपीये शिबिरे निपेतुः।। 40।।

"श्री वीरमेन्द्र" पूर्वदिशा से, "महिमासाहि" पश्चिम दिशा से, "श्रीजाजदेव" दक्षिण

---

1. हम्मीर महा0 10/19 2. वही 10/29 3. वही 10/40

दिशा से, "गर्भरूक" उत्तर दिशा से, "रतिपाल" नामक वीर आग्नेय कोण से, शकेश "तिचिर" "वायव्य" कोण से, रणमल नामक योद्धा "ईशान" कोण से एंव श्री वैचर "नैर्ऋव्य" कोण से युक्ति पूर्वक शकाधिप अल्लावद्दीन के भाई "उल्लूखान" के शिविर के ऊपर– आक्रमण करने लग गये। इन्होने प्रतिज्ञा कर ली थी एवं सब रण के उत्साह से युक्त शरीर वाले थे।[1,2,3] दोनों सेनाएँ एक दूसरे पर विभिन्न प्रकार से वार कियें। यहाँ कवि नयचन्द्र ने युद्ध का भी बड़े ही आकर्षक एवं अनुपम रूप में वर्णन किया।

चौहान योद्धाओं द्वारा छोड़े गये बाणों से म्लेच्छ योद्धा किस तरह सुन्दर पंखों से युक्त की भाँति सुशोभित हो रहे थे इसका चित्रण इस श्लोक में है–

चाहमानभटपाणिपङंकजोन्मुक्तमार्गणगणैश्चितीकृताः ।[1]

रेजिरे करिवरा रणाङ्गणे पर्वता इव नवोल्लसच्छदाः ।। 49 ।।

चौहान योद्धाओं के कर कमलों से छोड़े गये बाण समूह से बेधे गये हुए बड़े–बड़े श्रेष्ठ हांथी रणभूमि में ऐसी शोभा दे रहे थे मानो नये–नये सुन्दर पंखों वाले पर्वत हों। यहाँ कवि की वर्णन पटुता से वस्तु वर्णन अत्यन्त आकर्षक तथा हृदयग्राही हो गया है, जो पाठकों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। कवि ने लिखा है इतना भयंकर युद्ध हुआ कि इसमें योद्धाओं के एवं हाँथियों के कटे अंग युद्धभूमि में किस तरह शोभा दे रहे थे। इसका वर्णन निम्न श्लोक में है–

क्वचिच्छिरोभिः क्वचिदङ्घ्रिपद्मैः क्वचित् करैःक्वापि च बाहुदण्डैः ।[2]

आरेचिता सङ्गरभूरराजन्निर्माणशालेव जगद्विधातुः ।। 55 ।।

संसार को रचने वाले विधाता की निर्माण शाला की भाँति ही युद्धभूमि शोभा दे रही थी, जिसमें कहीं चरणकमल, कहीं हांथ, तो कहीं भुजाएं बिखरी पड़ी थी।[2]

भयंकर वीरता वाले क्षत्रिय योद्धाओं के पराक्रम से भयभीत होकर उल्लूखान पलायन करके दिल्ली पहुँचा, ज़बकि अन्य महावत हाँथी छोड़कर भाग गये, कुछ अपनी जान बचाकर जीवित गुप्त स्थानों में छिप गये। रतिपाल नामक योद्धा ने हम्मीर की ख्याति (कीर्ति) को फैलाने के लिए क्रोध के कारण यौवन मृगाक्षियों से नगर में मठ्ठा (छाछ) बिकवाया।

---

1. हम्मीर महा० 10/49
2. वही 10/55

तत्रैणनेत्रा यवनाधिपानां बध्वाऽत्यमर्षाद् रतिपालवीरः।[1]

व्यचिक्रयत् ख्यातिकृते क्षिन्तीन्दोस्तक्रं प्रतिग्राममभूमिरेषः।। 61।।

वहाँ "रतिपाल" नामक योद्धा ने यवन योद्धाओं की मृगाक्षियों को अत्यन्त क्रोध के कारण बॉध करके उनसे हर एक गाँव में छाछ बिकवाई, क्योकि वह राजा हम्मीर की ख्याति को चाहता था।[1] इस कार्य से हम्मीर का यश शीर्ष पर पहुँच जाता है और शकों का अपयश। इसके अनन्तर हम्मीर ने अपने योद्धाओं को पुस्कृत किया। हम्मीर के योद्धागण हम्मीर से कहते है कि जो "भोजदेव" गद्दारी करके शत्रु से मिलकर जगरा नामक राज्य में राज कर रहा है उसे नष्ट कर दिया जाय। अब हम लोग ज्यादा दिन तक सहन नही कर सकते। तब हम्मीर ने अपने योद्धाओ को आदेशित किया, नृप हम्मीर का आदेश पाते ही हम्मीर के योद्धा सेना सहित पहुँच कर, "जगरा" नामक नगरी को नष्ट करके, भोज के भाई "पीथम " को कुटुम्ब सहित बाँध लाते है। उधर उल्लूखान दिल्ली पहुँचकर शकाधिपत को सारा वृतान्त सुनाता है, तभी भोजदेव भी पहुँचकर अल्लावद्दीन के सम्मुख रोता है, तथा सारा वृतान्त कहकर, भूमि मे लोट जाता है। भोज कहता है, हम्मीर की प्रेरणा से "महिमासाहि" मेरे कुटम्ब को बॉध कर ले गया है। सारा वृतान्त सुनकर अल्लाबद्दीन अत्यन्त क्रोधित हो जाता है। उसका क्रोध उसी प्रकार बढता है, जैसे अग्नि मे घी डालने से अग्नि बढ़ जाती है। इसका वर्णन कवि ने अत्यन्त चातुरी से निम्न श्लोक मे किया है–

रणभङ्गाकुलसोदरपरिदेवनदलिकसंकुले नितमाम्।[2]

नृपहृदि कोपहुताशे घृताहुतिर्भोजभणितिरभूत्।। 78।।

तब भोज के वचन, रण से भागे हुये भाई के विलाप के कारण दुःखी राजा अल्लावदीन के क्रुद्ध हृदय मे, वैसे ही पड़े जैसे कि आग में घी की आहुति[2]; अर्थात् अल्लावदीन का क्रोध द्विगुणित हो गया। इसका वर्णन कवि ने किस तरह सहज रूप मे कर दिया। इस घटना से अल्लावदीन ने विभिन्न प्रकार से अपना क्रोध प्रदर्शित किया है, जिसको कवि ने विभिन्न उपमानो के माध्यम से वर्णित किया है। शकाधिपति अल्लावदीन कहता है–

---

1. हम्मीर महा0 10/61
2. 2. वही 10/78

रे! रे! हम्मीर !वीरस्त्वमसि परमसौ साम्प्रतं वीरता ते [1]

नूनं व्यक्तीभवित्री मम नयनपथे प्राप्तपान्थव्रतस्य ।

भ्राम्यत्युच्चैर्वनान्ते मदमलिनकपोलस्थलो हन्त। दन्ती

तावद् यावान् मृगेन्द्रः पतति न पुरतो जृम्भया व्यत्तवक्त्रः।। 86।।

हे हम्मीर! तुम वीर हो, किन्तु तुम्हारी वीरता तो अब मेरे नयनों के सामने आने पर ही प्रकट होगी। हाय मद जल के बहने के कारण मलिन कपोल वाला हांथी तो तभी तक जंगल में घूमता रहता है, जब तक कि जंभाई लेता हुआ मुँह खोलने वाला सिंह सामने नही आ जाता है।[2]

तत्काल ही यवनराज अल्लावद्दीन ने अपने ही कर कमल से लिखे हुए पत्रों सहित भेजे हुए दूतों के द्वारा समस्त देशों के ऐसे वीरों को बुलाया जो फड़कते हुए अभिमान से युक्त थे तथा प्रचण्ड भुजदण्डो की वीरता से सबको विस्मित करने वाले थे। यही पर दशम सर्ग समाप्त हो जाता है। ग्यारहवे सर्ग में "निसुरतखान"के वध का वर्णन है।

सर्ग के प्रारम्भ में प्रथम ही श्लोक में कवि ने उन–उन स्थानों का नाम गिनाया है, जिन स्थानों या राज्यों से शकराज अपनी–अपनी सेनाएँ लेकर हम्मीर से लड़ने आये थे। कवि की काव्यपटुता का निदर्शन इस श्लोक में होता है, कवि ने माला में मोतियों कि भाँति निम्न राज्यों के नामों को एक ही श्लोक में पिरो दिया है।

अङ्गस्तिलङ्गों मगधो मसूरः कलिङ्ग–वङ्गौ भट–मेदपाटौ।[2]

पञ्चाल–वङ्गाल–थमीम–भिल्ल–नेपाल–डाहाल–हिमाद्रिमध्याः।। 1।।

अंग, तिलक, मगध, मसूर, कलिङ्ग, बङ्ग, भट, मेदपाट, पञ्चाल, थमीम, भिल्ल, नेपाल, गुहाल, हिमाद्रिमध्य आदि देशों के सारे ही शकराज अपनी–अपनी अभिमानयुक्त प्रौढ़ सेनाओ सहित यवनेश्वर अल्लावदीन की नगरी मे आ पहुँचे।[2] दूसरी तरफ से सुपुष्ट भुजाओं वाले निसुरत खॉ को मित्र प्राप्त करके उल्लूखॉ का क्रोध और बढ़ गया। कवि नयचन्द्र ने सेना को अगणित बताया है उन्होने निम्न श्लोक मे यह प्रदर्शित कयिा है कि सेना की गणना करना असम्भव कार्य था–

1. हम्मीर महा0 10/86
2. वही 11/1

गजाः कियन्तस्तुरगाः कियन्तो रथाः कियन्तः कति वा भटाश्च।[1]

जनैर्जनानामिति बादितानां संख्या नहीत्युत्तरमेकमेव।। 14।।

कितने घोड़े है, कितने हाँथी है, कितने रथ हैं और कितने योद्धागण हैं, इस प्रकार पूँछने वाले लोगों के लिये तो आदमियों के लिये केवल एक ही उत्तर था कि कोई संख्या इनकी नहीं बताई जा सकती है।[1] यहाँ पर कवि का भाव यह था कि यवनों की सेना अगणित थी। पर्वतों की घाट को देखकर पूर्व मे अनुभव किये गये डर को याद कर करके भयाकुल उल्लूखान, निसुरतखान नामक अपने भाई को बुलाकर मधुरता से बोला।

ततोऽद्रिधट्टान् प्रसमीक्ष्य पूर्वानुभूतभीसंस्मरणाद् भयालुः।[2]

आहूय खानो निसुरत खानं सहोदरं सुन्दरमित्युवाच।। 19।।

उल्लूखान कहता है कि, ये पर्वत प्रवेश करने में कठिन है और उसके (हम्मीर के) योद्धा भंयकर वीर हैं। अतः हम्मीर की सेना को बिना छल के सरलता से नहीं जीता सकता है। तब उल्लूखान सन्धि के बहाने पहाड़ की घाटियों पर छिप जाता है। कवि ने नीति का कितना श्रेष्ठ निदर्शन किया है, निम्न श्लोक में मानों कवि ने नीति की पिटारी छिपा दी है–

तद्वाहुजान् सन्धिमिषेण विप्रतार्याद्रिधट्टेषु सुखं विशामः।[3]

उपायसाध्ये खलु कार्यबन्धे न विक्रमं नीतिविदः स्तुवन्ति।। 21।।

अतः क्षत्रियों को संधि के बहाने से धोखा देकर हम पहाड़ की घाटियों में सुख पूर्वक रहें। किसी भी कार्य के उपाय से ही साध्य होने पर नीतिज्ञ व्यक्ति विक्रम प्रदर्शन को अच्छा नहीं मानते।[3]

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने बड़े ही सहज रूप से सूक्ति के माध्यम से नीति को चित्रित किया है। मोल्हण नामक दूत ने इस रणस्तम्भपुर (रणथम्भौर) में नृप की आज्ञा से प्रवेश किया तथा वह रणथम्भौर को देखकर आश्चर्यचकित हो गया। वह मोल्हण नामक दूत रणस्तम्भपुर की अनुपम सौन्दर्य का अनेक प्रकार से वर्णन करता है। कवि ने अपनी कवि सहज कल्पना से दूत के मुख से कितने अनूठे ढंग से रणथम्भौर की विशेषता निम्नश्लोक में कहलवाया है –

---

1. हम्मीर महा0 11/14
2. वही 11/19
3. वही 11/21

यस्मिन् मृगाक्षीवदनेन्दुभाभिर्विसारिणीभिर्विजितः शशाङ्कः।[1]

खयाम्बुपूरे प्रतिबिम्बदम्भात् किमेष दुःखात् प्रददौ न झम्पाम्।। 28।।

जिस नगर में मृगनयनी तरूणियों के बदन रूपी चन्द्रमा की शोभा द्वारा तो चन्द्रमा भी जीत लिया गया था। क्या इस चन्द्रमा ने दुःखी होकर जल राशि में प्रतिबिम्ब के बहाने से छलाँग लगा ली थी।[1]

यहाँ पर कवि नयचन्द्र के वर्णन चातुरी का निदर्शन दृष्टव्य हैं। इस क्रम में कवि ने वहाँ (रणस्तम्भपुर) के भवनों की शोभा को अतिशयता के साथ वर्णित किया है। वहाँ के भवनों की छटा निम्न श्लोक में देखी जा सकती है–

जालैर्मणीनामधि कुट्टिमोद्यद्वासैः समन्तात् प्रसरन्मयूखैः।[2]

प्रासादशृङ्गेषु दशेन्धनाली निन्येऽवकेशित्वमुषासु यत्र।। 31।।

पक्के मकानों पर लगे हुये मणि–समूहों में से निकलने वाली किरणों द्वारा प्रातः काल होने पर महलों के शिरोभागों पर स्थित दीपकों के प्रकाश धुंधले कर दिये गये थे।[2]

यहाँ पर कवि ने रणस्तम्भपुर की सम्पन्नता को प्रदर्शित किया है, क्योंकि वहाँ चौर कर्म आदि नहीं होता था। सभी सम्पन्न थे, तभी तो वहाँ के लोग गृहों के दरवाजे रात्रि में बन्द नहीं करते थे। इसी बात को कवि ने कितने अनूठे ढंग से निम्न श्लोक में गुम्फित किया है, उसकी छटा दर्शनीय है –

निवासवद्भिः सुमनोभिरेभिर्विमानताऽस्मासु कृतेति दुःखात्।[3]

नैवास्वपन् निश्यपि निर्निमेषकपाटपक्ष्माणि गृहाणि यत्र।। 39।।

यहाँ के घर भी रात्रि में अपनी किवाड़ रूपी पलकों को बिना बन्द किये हुये रहते थे। सोते नहीं थे – यह सोचकर कि घर में निवास करने वाले इन पुष्पों ने हमारा अपमान किया है।[3] (रात्रि में पुष्पम्लान हो जाते है– इस कारण) कवि के इस तरह वर्णन ने वस्तुवर्णन को उच्च कोटि का बना दिया है।

कवि ने महलों, वहाँ की रमणियों, झरोखों आदि का वर्णन करते हुये कथानक को भी मन्दगति से आगे बढ़ाया है। वह मोल्हण नामक दूत राजा के महलों का किस तरह भ्रमरवत देखता है इसी की छटा निम्न श्लोक में झलकती है–

---

1. हम्मीर महा0 11/28
2. वही 11/31
3. वही 11/39

निभालयन् लोचनलोभिलक्ष्मि क्रीड़ानिकेतं पुरमेतदुच्चैः।[1]

नृपालयश्रीकरकैरवेषु दृशं भृशं स भ्रमरीचकार।। 45।।

नेत्रों को आकर्षित करने वाली शोभा से युक्त कौतुक से भरपूर इस नगर को देखता हुआ, वह दूत (श्री मोल्हण) रणथम्भौर में राजा के महलों की लक्ष्मी को नेत्रों से देखने लगा जैसे कमलों की शोभा को भ्रमर देखते है।[1] नृपहम्मीर उदयाचल के शिखर पर उदित–सूर्य की भांति, सिंहासन पर बैठा हुआ अत्यन्त चपल तरंगों वाली, अपने अंगो की शोभा से समस्त कनक वर्ग को लघुता प्रदान कर रहा था। ऐसे नृप हम्मीर से सिर झुका कर वह दूत अल्लावदीन की वीरता का वर्णन करते हुये कहता है, कि हमारे नृप शकाधिपति अल्लावदीन इस तरह कहते है –

हम्मीर! राज्यं यदि भोक्त मीहा तत् स्वर्णलक्षं चतुरो गजेन्द्रान।[2]

अश्वोरणानां त्रिशती सुतां च दत्त्वा किरीटीकुरु नो निदेशम्।। 60।।

हे हम्मीर! यदि राज्य को भोगने की तुम्हारी इच्छा है तो एक लाख स्वर्ण मुद्रा, चार मदमत्त हाँथी, तीन सौ घोड़े और भेड़े तथा अपनी पुत्री को, हमें देकर हमारे आदेश को सर आँखो पर चढ़ालो।[2] यदि हमारी ये शर्ते नहीं मानी जातीं तो हमारी आज्ञा का उल्लघंन करने वाले जो चार पठान तुम्हारे यहाँ है, उन्हें हमें देकर गोद में आयी हुई राज्य लक्ष्मी के संग क्रीड़ा करों।

दूत के ऐसे वचनों को सुनकर, भयंकर भृकुटी धारण करने वाले और भयंकर रूप से क्रुद्ध हुए हम्मीर ने ऐसे वचन बोले जैसे कि विष बेल के पुष्पों पर भौरे गुंजन करते हों। (विष युक्त बचन बोला) कवि नयचन्द्र ने यहाँ पर क्रोध को भी कितने सहज ढ़ग से प्रस्तुत किया है। हम्मीर कहता है कि यदि तुम दूत न होते तो ऐसे वचन बोलने पर मैं जिह्वा काट लेता। नृप हम्मीर दूत से दोनो शक योद्धाओ की (उल्लूखॉन तथा निसुरत खॉ) को युद्ध करने की शपथ दिलाता है। मुसलमान सुअर के मांस को अपने धर्म को नष्ट करने वाला मानते हैं, इसीलिये हम्मीर मुसलमान योद्धओं को निम्न श्लोक मे किस तरह शपथ दिलायी है वह निर्दर्शनीय है–

स्वर्ण गजा दन्तितुरङ्गमाणां पदे प्रदेया यदि खङ्गघाताः।[3]

भवत्प्रभू सूकर मांसमेव सद्यः स्वदेतां यदि जातु यातः।। 66।।

---

1. हम्मीर महा0 11/45

2. वही 11/60 3. वही 11/66

हाँथी और घोड़ो के पैरों पर यदि खड्गो के प्रहार किये जाये तो स्वर्ण की प्राप्ति होती है और यदि तुम्हारे दोनो स्वामी (उल्लूखॉ, निसुरतखॉ) आ जाते हैं, तो वे सुअर के माँस का स्वाद प्राप्त करेगें।[3] हम्मीर ने कहा कि मेरे जीते जी एक विशोंपक का सौवाँ भाग भी नही मिल सकता, जो तुम्हारे मालिकों को अच्छा लगे वही शीघ्र करें। तुम्हारा मालिक मूर्ख है, यह कहते हुये हम्मीर ने दूत को राज्य से बाहर निकलवा दिया तथा किले की सुरक्षा बढ़ा दिया। उधर अत्यन्त रोष युक्त दूत ने भी जाकर अपने मालिक अल्लादीन से सब निवेदन कर दिया, जो कि हम्मीर राजा ने कहा था। और उन्होने भी बिना विलम्ब किये हुये ही युद्ध के लिये सेना सजा लिया। कवि नयचन्द्र ने युद्ध के लिये जाते हुये घोड़े का अत्यन्त श्रेष्ठ वर्णन किया है जो कवि की बर्णन चातुरी को प्रदर्शित करता है।

महीध्रमभ्रङ्कषमप्यमुं स्ववीर्याग्रतः क्षुद्रमिवेक्षमाणाः।[1]

डुढ़ौकिरे योद्धुमतिप्रवृद्धोत्साहास्ततस्ते समरोत्कवाहाः।। 78।।

गगन चुम्बी शिखर वाले इस पर्वत को भी अपनी बहादुरी के कारण क्षुद्र मानते हुये उत्साह युक्त युद्ध के घोड़े तब लड़ने के लिये आगे चल दिये।[1]

निम्न श्लोक में कवि ने क्षत्रियों के बाणवर्षा को बड़े अनूठे ढ़ंग से निदर्शित किया है –

क्षत्रप्रकाण्डप्रविमुक्तकाण्डपक्षोद्भवः कोऽपि स वायुरासीत्।[2]

यत्रोन्मदिष्णौ रिपुदर्पसर्पोऽप्यासीत् क्षणं व्याकुलचित्तवृत्तिः।। 84।।

श्रेष्ठ क्षत्रियों द्वारा चलाये हुये बाणों के युद्ध भागों से युद्ध में ऐसी वायु पैदा हो गयी थी जिसके नशे के कारण शत्रु का दर्प रूपी सर्प भी व्याकुल चित्त वाला हो गया था।[2] उपर्युक्त श्लोक में क्षत्रियों के बाण चालन की पटुता की ओर मनोहरी चित्रण किया है। जो अन्यत्र दुर्लभ प्रतीत होता है। निम्नश्लोक में कवि की, कवि सहज कल्पना निदर्शित होती है –

सद्यान्त्रिकैर्भैरवयन्त्रगोला मुक्तामिथोऽप्यूर्ध्वमधः पतन्तः।[3]

अपि द्वयानामरूचन् भटानां पीना उरोजा इव वीरलक्ष्म्याः।। 88।।

अच्छे गोलचियों (तोपचियों) द्वारा ऊपर की ओर चलाये गये तोप के गोले, नीचे गिरते हुए ऐसे शोभा देते थे, मानों दोनों ओर के योद्धाओं की वीर लक्ष्मियों के वे मोटे पुष्ट धयोधर हो।[3]

---

1. हम्मीर महा0 11/78 2. वही 11/84 3. वही 11/88

कवि ने शकों तथा क्षत्रियों के वीरता का वर्णन करने में तनिक भी पक्षपात नहीं किया है, दोनों ही पक्षों के वीरतापूर्ण कार्यो का वर्णन अत्यन्त सहज रूप में किया है।

निम्न श्लोक में शकों के बाण चालन की विशेषता निदर्शित है।

दुर्गस्थवीरव्रजमौलिमौलीनपाहरन् बाणगणाः शकानाम्।[1]

समीर गुञ्जाइव पादपानां पुष्पाणि शाखाशिखरोद्भवानि।। 93।।

शकों के बाण समूह किले पर स्थित वीरों के शीशों को वैसे काट रहे थे जैसे कि हवा द्वारा उड़ाये हुये गुञ्जाफल शाखा की फुनगी पर स्थित पुष्पों को गिरा देते है।[1]

इस प्रकार अनेक उपायों से आगे बढ़ाने का साहस प्रदर्शित करने वाले यवनराज के शकवीरों की कालरात्रि की तरह तीन मास बीत गये। दूसरे दिन गोला फटने से निसुरत खाँ की मृत्यु हो गई।

प्रवर्तमाने समरेऽन्यदाऽथापस्फाल गोलः शकगोलकेन।[2]

प्रभ्रश्यता तच्छकलेन मूर्ध्नि हतो व्यनेशन्निसुस्तखानः।।100।।

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ होने पर शको के गोले से, एक तोप का गोला टकराकर फट गया, जिसके निकले हुये टुकड़े से सिर पर आघात पाकर निसुरत खान विनष्ट हो गया।[2] तब अचानक इसे मृत देखकर आँखो में आंसू भरकर मध्यम शकराज उल्लूखाँ खूब रोया तथा किसी तरह धैर्य धारण कर स्वर्ण मञ्जूषा में निसुरत खाँ का शव तथा युद्ध वर्णन के साथ एक ज्ञापन पत्र दिल्ली के बादशाह अल्लावदीन के पास भेजा। इसे देखकर शोकाभिभूत होकर क्रोध से कांपता हुआ युक्ति पूर्वक निसुरत खाँ समस्त अन्तिम कृत्य करके, वह यवनों का एक मात्र अधिकारी अल्लावदीन शीघ्र ही शत्रु से अपमान का बदला लेने के लिये रणथम्भौर की ओर चल दिया। यही पर एकादश सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

द्वादश सर्ग में दो दिन के संग्राम का वर्णन है – कवि ने दोनों नृपों के मध्य युद्ध का सजीव तथा सांगोपांग अनुपम वर्णन किया है। जिससे वस्तु वर्णन और चमत्कृत हो गया है। इस सर्ग में कहे गये श्लोक हृदय ग्राह्य व सूक्ति–सुधा हैं। अन्य सर्गों की अपेक्षा यह सर्ग श्लाघ्य है। पूरे महाकाव्य का हृदय है। इस सर्ग में कवि ने युद्धकुशलता का अपूर्व कौशल दिखाया है। अल्लावदीन –

---

1. हम्मीर महा0 11/93 2. वही 11/100

बादशाह को आया हुआ सुनकर उदार बुद्धिधनवाले और रणभूमि के लिये मेघस्वरूप राजाहम्मीर ने दुर्ग के ऊपर (छाजले) सूप बँधवा दिये, जिसको देख शकाधिपति अल्लावदीन ने आश्चर्य चकित हो दूसरे से पूछा, तब प्रसन्नता पूर्वक हम्मीर राज ने इस प्रकार की वाणी कही–

म्लेच्छावनीदयित! चारु–चारु भो। चक्रे त्वयाऽऽगमदमुत्रयद्भवान्।[1]

पूर्णेनसि प्रचुरवस्तु संचयैर्भाराय किं भवति सूर्पसंचयः।। 4।।

हेम्लेच्छराज! आपके द्वारा शुभ कार्य किया गया है, जो आप यहाँ आये हैं। खूब वस्तुओं के संचय के कारण घर के पूर्ण होने पर सूपों का सञ्चय भार के लिये क्यों होता है ?[1] (अर्थात हमारे पास पर्याप्त भोजनादि समाग्री है, घेरा डालने से कोई लाभ नहीं) हम्मीर युद्ध का प्रस्ताव रखता है। अल्लावदीन युद्ध स्वीकार करता है। उस समय सूर्य अस्ताचल की ओर चला जाता है। दोनों ही योद्धा प्रातः काल की बड़ी ही उत्सुकता से प्रतीक्षा करते है।

प्रातः होते ही दोनों पक्षों में भयङ्कर युद्ध होता है। पैदल सैनिकों से पैदल सैनिक, घुड़सवारों से घुड़सवार; गजवाहिनी सेना से गजवाहिनी सेना लड़ने लगी। युद्ध के पूर्व वीरों की वीर, पत्नियों की, माताओं की क्या भावनायें होती है, उनके प्रदर्शन के अतिरिक्त युद्ध के पूर्व की गयी मंगल कामनाओं व शुभ लक्षणों को भी कवि ने बड़ी कुशलता पूर्वक बताया है। युद्धक्रम को कविवर नयचन्द्र ने बड़ी कुशलता से ध्यान में रखा है। युद्ध की तैयारियाँ, युद्ध के भाव, पूर्व योजनाएँ तथा युद्ध का प्रत्यक्ष दर्शन सा वर्णन उनकी काव्यकुशलता का परिचायक है। युद्ध में सैनिक किस तरह घायल होकर गिरते हैं, उनके कटे हुये अंग युद्ध भूमि में किस प्रकार दुगुने उत्साह से लड़ते है, घायल सैनिकों का अंग विकार, बहती हुई रक्त धाराएँ, ह्रदय विदारक होती हैं। ऐसे दृश्यों को बड़े कुशलता से व्यक्त किया है। हाँथियों का पराक्रम व वीरों का पराक्रम सराहनीय है। वीर गति को प्राप्त वीर का किस भाँति स्वर्गबधुओं द्वारा सहर्ष वरण किया जाता है इन सभी का भावपूर्ण वर्णन किया गया है। मृतक वीरों पर श्रृंगाल, पक्षियों, जीवजन्तु तथा शक लोग रक्त पीकर आनन्दित होते है। उसका खुला चित्र पाठकों के मस्तिष्क में स्वयं अंकित हो जाता है। इस सर्ग के अवलोकनार्थ रचनायें है जो स्थिति को सामने व्यक्त कर देती है – कोई माँ किस तरह अपने पुत्र को आशीर्वाद प्रदान किया है –

---

1. हम्मीर महा0 12/4

पुत्राद्य संगरमवाप्य सत्वरं विस्तारयेर्भुजपराक्रमं तथा।[1]

वीरप्रसूतिलकतां यथा श्रये कञ्चिज्जगाद जननी प्रमोदिनी।। 22।।

वीरागंना अपने अनन्य मनस्क पति को किस भाँति उलाहना भरे शब्दों के प्रहार से युद्ध के लिये प्रेरित करती है। यह भारतीय नारियों की सर्वश्रेष्ठ महानता को व्यक्त करता है ऐसी नारियाँ महनीय है –

पूर्व त्वदेकहृदयामरालयं गच्छाम्यहं ज्वलनवर्त्मनाऽमुना।[2]

किं वा मदेकहृदयोऽसि वर्त्मना त्वं काऽप्यचवोचदिति सस्मितं हितम्।।17।।

कोई रमणी मुस्कराकर हितपूर्ण वाणीमें बोली – मैं अग्नि मार्ग से तुम्हारे हृदय की एकाकिनी सहचरी होती हुई पहले ही स्वर्ग पहुँच रही हूँ क्या तुम भी इस युद्ध मार्ग में मेरे हृदय के एकाकी सहचर हो इस प्रकार कह कर युद्ध में अनन्यमनस्क पति को युद्ध के लिये उत्साहित कर रही है। जब वीर योद्धा युद्ध के लिये जाते थे तब भारतीय नारियाँ मंगल सूचक कलश लेकर योद्धाओं के मार्ग पर खड़ी होती था। इसी तरह का उदाहरण निम्न श्लोक में कविवर नयचन्द्र ने चित्रित किया है –

कुम्भान् निधाय शिरसिप्रपूरितान् एलालवङ्गरसशीतलैर्जलैं।[3]

प्रीत्यानुयातुमसुवल्लभान् निजान् सज्जीबभूव निखिलो भटीजनः।। 27।।

इलायची, लौंग से युक्त शीतल जल से भरे हुये घटों को शीश पर रखकर प्रेमपूर्वक अपने प्राणप्रिय पतियों का अनुसरण करने को समस्त वीर योद्धाओं की पत्नियाँ तैयार हो गयीं।[3] इसी तरह किसी योद्धा ने किसी तरह शत्रु के हाथ को काट कर उस की तलवार किस तरह छीन लिया उसका सजीव वर्णन किया है –

विस्मेरमारचरिता विकञ्चुकां स्नेहाधिकां विशदकान्ति धारिणीम्।[4]

छित्त्वा करम् प्रतिभटस्य कोऽप्यलात् तद्वल्लभामिव कृपाणवल्लरीम्।। 46।।

किसी योद्धा ने शत्रु शरीर के हांथ को काटकर, मुस्कराकर काम चरित करने वाली, विना म्यान की, प्रेम युक्त, शुभ्र कान्ति धारण करने वाली तलवार को उसकी प्रियतमा की भाँति छीन लिया था।

इसी भाँति शको द्वारा युद्ध में खून बहाने एवं उसी रक्त को पीने का एक उदाहरण कवि नयचन्द्र ने प्रस्तुत किया है –

---

1. हम्मीर महा0 12/22
2. वही 12/17
3. वही 12/27
4. वही 12/46

जज्ञे तदा रणभृतां च रक्षसां यज्ञे महाहठभरः परस्परम्।[1]

एके प्रथीयसितरामसृग्नदीं चक्रुः पराणि पपुरेव तत्क्षणात्।। 58।।

तब संग्राम करने वाले राक्षसों का यज्ञ में महान परस्पर का हठमालुम हो गया था क्योंकि एक ओर के राक्षस रक्त की नदी बहाते थे तो दूसरी ओर तुरन्त ही उसे पी जाते थे।[1] हाँथियों का अपूर्व कौशल एक धोबी की भाँति दिखाया है, जिस प्रकार धोबी वस्त्रों को जमीन पर बिना किसी प्रयास के फेंक देता है; उसी प्रकार हाँथी ने एक घुड़सवार को सूड़ से उठाकर जमीन पर फेंक दिया।[1] यथा –

एकः करी समर सीम्निक सादिनं चिक्षेप कन्दुकमिवाधिपुष्करम्।[2]

धृत्वा करेण च कटौ परो हयं प्रास्फलयद् रजक वस्त्रवद् भुवि।। 72।।

शत्रुओं के हाँथियों के कुम्भ स्थल से गिरे मोतियों के समूह से आकीर्ण युद्धभूमि ऐसी शोभा देती थी मानों वीरों की लक्ष्मी का आलिंगन कर सोये हुए वीरों की पुष्पों से सजी हुई शय्या हो[3]–

द्विटकुम्भिकुम्भविनिपातिमौक्तिकश्रेणिप्ररूढ़रुचिराजिभूरभात्।[3]

वीरश्रियं प्रपरिरभ्य दोष्मतां शय्येव पुष्पखचिता सुषुप्सताम्।। 83।।

दो दिन तक युद्ध चलता है, इसका वर्णन कवि ने निम्न श्लोक में चित्रित किया है–

इति तिरस्कृतभारत सारते रणभरे स्फुतरिते दिनद्वययमि।[4]

दिनकरः प्रतिवक्तुमिवावधिं चरमभूमिधराग्रमसेवत।। 86।।

इस प्रकार महाभारत के समान, रणयुद्ध के दो दिन तक चलने पर, सूर्य मानों अवधि को बताने के लिये अस्ताचल के शिखर पर चला गया। इस समर में यवनों के महान ओजयुक्त 85,000 वीर यमलोक पहुँच गये।

एतस्मिन समरे वीरा यवनानां महौजसः।[5]

पञ्चाशीति सहस्राणि यमावास मयासिषुः।। 88।।

म्लेच्छ वीरों के स्वामी अल्लावदीन तथा उल्लूखान ने अधिक समय हो जाने, पर अपने शिविर को जल्दी से प्रयाण किया।[5]

इस प्रकार महाकवि नयचन्द्र ने युद्ध की सभी क्रिया कलापों को कुशलता पूर्वक वर्णन कर महाकाव्य को प्रसिद्धि के द्वार पर मनोनीत कर दिया।

---

1. हम्मीर महा० 12/58 2. वही 12/72 3. वही 12/83

4. वही 12/86 5. वही 12/88

त्रयोदशः सर्ग में हम्मीर के स्वर्ग–गमन का वर्णन है।

दूसरे दिन प्रचुर श्रृंगार से युक्त चतुर हृदय राजा हम्मीर ने श्रृङ्गार चातुरी नामक सभा को अलंकृत किया। कवि ने हम्मीर के भवन, आंगन, दीवारों का वर्णन विभिन्न प्रकार के श्रृगांरिक उपमानों से किया है, उस सभा में विभिन्न प्रकार के वाद्य बज रहे थे; वीरम, महिमासाहि आदि सभा को सुशोभित कर रहे थे, रतिपाल हास्य रस की सृष्टि करता हुआ, गोष्ठी को रसमय बना रहा था। धारा देवी नामकी नर्तकी अपने नृत्य तथा अंग प्रदर्शन से लोगों को मदमस्त बना रही थी। उसके विलास पूर्ण नृत्य से दरबारियों के पाणि पल्लव हिलते हुये ऐसे ही शोभा देते थे, मानो धतूरे की बेल के मूर्च्छना देने वाले पत्ते हिल रहे हो।

यथा –

तस्या लास्येन वेल्लन्तो रेजिरे पाणिपल्लवाः।[1]

मोहनव्रततेः कामं स्फुरन्तः पल्लवा इव।। 18।।

कवि नयचन्द्र किसी भी क्षेत्र में पीछे नहीं है। उन्होने धारा देवी के नृत्य को इतने अनूठे ढंग से चित्रित किया है, मानों उन्हे सभी नृत्यों का यथार्थ ज्ञान रहा हो। इसका उदाहरण कवि ने निम्न श्लोक में प्रस्तुत किया है यथा –

मयूरासनबन्धेन नृत्यन्ती विलुलोप सा।[2]

वाच्यं विधेर्मयूरस्य दुःक्रमाधानसंभवम्।।23।।

मयूरासन से नाचती हुई वह विलुप्त हो गई। मयूर का कठिनता पूर्वक पालन करना विधाता के लिये भी अपवाद ही है।[2]

दरबारियों की दृष्टि उसके सिर से लेकर पैरों तक बार–बार उस तरह उतर–चढ़ रही थी, जैसे कि बंदरियां किसी लता (मृटुल पेड़) पर आरोहावरोह कर रही हो।[2] यथा –

सभ्यानामसकृत् तस्यां दृष्टिरापादमस्तकम्।[3]

चक्रेऽवरोहमारोहं व्रतत्यां वानरी यथा।। 26।।

यह कवि ने 'धारादेवी' की सुन्दरता की ओर संकेत किया है। वह इतनी सुन्दर थी कि उसे सभी दरवारी नीचे से ऊपर तक बार–बार देखते थे। जहाँ ऊपर महल में नृत्य हो –

---

1. हम्मीर महा0 12/18 **2. वही 12/23**

3. वही 12/26

रहा था ठीक उसी के सामने शकराज का शिविर था। शकराज ने उस नर्तकी के पृष्ठ भाग को देखकर अपने योद्धाओं को कहा कि कोई ऐसा धनुर्धर है, जो इस नर्तकी को बाण से विद्ध कर दें, तब बन्दी उड्डान सिंह को जेल से मुक्त कर उसे ऐसा कार्य करने को कहा गया। उसने क्षण भर मे उसे एक ही बाण से बेध दिया। वह घाटी में विजली सी गिर पड़ी। इससे क्रुध होकर महिमासाहि ने अल्लावदीन को मारने की अनुमति हम्मीर से मांगी, किन्तु हम्मीर ने उस उड्डान सिंह को मारने का आदेश दिया। क्षणभर में उसने उड्डान को तत्क्षण मार दिया इससे घबड़ा कर वहाँ से शकों ने अपना शिविर हटाकर, दूर तालाब के पीछे लगाया। शकराज ने पर्वत के निकट सुरंग बनवाई तथा उसे मिट्‌टी पत्थर, घास फूस से पटवा दिया, तब हम्मीर ने उस सुरंग में तोप के गोले से आग लगा दिया तथा उस पर खौलता हुआ तेल डलवा दिया।

उस तेल के सुरंग में भर जाने पर शत्रु वैसे ही छल लगे जैसे कि जलते पानी में मछलियां उछलिती हों –[1]

तेन तैलेन पूर्णायां सुरङ्गायां द्रिषद्भटाः।[1]

उदच्छलन् यथा मीनाः सरस्यां ज्वलदम्भसि।। 43।।

यहाँ कवि के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कवि ने स्वयं ही तेल से जलकर उछलते हुये शक–सैनिकों को देखा हों।

शकाधीश अल्लाबदीन और उसके जिन वीर सैनिकों ने सुरंग खोदी थी उन्हीं सैनिकों के ही शरीरों से उस सुरंग को भर दिया गया–[1]

यथा–

शकाधीशः शकैरेतां सुरङ्गां यैरचीखनत्।[2]

अनूपुरन् द्राग् दोष्मन्तस्तेषामेव कलेवरै :।। 47।।

इस प्रकार से जिन–जिन यत्नों को, किले को लेने की इच्छा के लिये, शकराज ने किया उन्हीं–उन्हीं उपायों को लगातार नृप हम्मीर ने असफल कर दिया।

इसके अनन्तर वर्षा ऋतु आ जाती है।वर्षा ऋतु का वर्णन भी कवि ने बड़ी पटुता से किया है।

---

1. हम्मीर महा0 13/43
2. वही 13/47

यथा— उद्गीते केकिभिर्गीते तूर्यिते घनगर्जिते।[1]

नन्र्त्त नर्त्तकीवोच्चैस्तडिद्गगनमण्ड़पे।। 54।।

मोरों द्वारा केका ध्वनि से मानो गीत गाने पर और बादलों की गड़गड़ाहट के मानो बजने पर नर्तकी की तरह आकाश में बिजली नाचने लगी।[1]

जैसे—जैसे वह बादल गरजता था, वैसे—वैसे ही शक लोगों की रमणियां भी जो कि क्षत्रियों के द्वारा विधवा बना दी गई थीं, वे विलाप करती थी। कवि ने शत्रु स्त्रियों की वियोगावस्था का वर्णन किया है।

इसके अनन्तर अल्लावदीन रतिपाल को सन्धि करने के लिये बुलवाता है। हम्मीर उसे जाने की अनुमति दे देता है। रतिपाल के पहुँचने पर अल्लावदीन स्वयं उठकर, उसका खूब सत्कार करता है तथा अपनी बहिन के हाथों उसे खाना खिलवाता है तथा उस (रतिपाल) को फोड़ लेता है तथा उसे मदिरा पिलाता है। जब वह वापस आता है तो उसका मुंह दुर्गन्ध देता। यहाँ पर कवि ने वीरम के मुख को किस तरह मदिरा पान को बुद्धि का विनाशक बताया है। मदिरापान समाज में अत्याचार फैलाने में सहायक है अतः कवि ने मदिरापान को समाज की कुरीति मानते हुये इसका विरोध किया है। मदिरा पीने वाला व्यक्ति अकरणीयकार्य को भी कर सकता है यथा —

अकृत्यकरणागम्यगमनाभक्ष्यभक्षणात्।[2]

मद्यं विशिष्यते यस्मादस्मात् संपद्यते त्रयम्।। 95।।

जिस व्यक्ति के लिये मदिरापान ही विशेष पेय है, उसमें ये तीन गुण होते हैं वह अकरणीय कार्य भी कर डालता है, न जाने योग्य स्थान पर भी जा सकता है और अभक्ष्य वस्तुएं भी खा सकता है।[2]

कवि नयचन्द्र के एक—एक श्लोक लौकिक जगत में बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे है। उन्होने निम्न श्लोक में यह वर्णित किया है कि बिना विचार किये ही शक के आधार पर किसी को दण्ड देना या कोई कार्य करना उचित नहीं है—

जब वीरम रतिपाल पर शंका करता है कि यह शत्रु से मिल गया है, इसे मार दिया जाय तब हम्मीर कहता है कि बिना प्रमाण के शक के आधार पर इसका वध हमारे अपयश का कारण बनेगा और लोग मेरी निन्दा करेगें—

---

1. हम्मीर महा0 13/54
2. वही 13/95

ध्रुवं सपरिवारोऽपि दुर्मतिर्विभुरेव नः।[1]

यदेवमविमृश्यैव रतिपालं प्रजघ्निवान्।।101।।

रतिपाल यह बात सम्पूर्ण राज्य में प्रकाश की भाँति फैला देता है कि अल्लावदीन राजा की पुत्री मांगता है तब हम्मीर की पुत्री देवल्लदेवी स्वयं, पिता नृपहम्मीर के पास पहुँच कर कहती है यदि मुझे दे देने से राज्य की रक्षा हो जायेगी, तो फिर मुझे क्यों नहीं दे देते। यहाँ कवि नयचन्द्र भारतीय नारियों का साहस तथा सूक्ति युक्त श्लोक में नीतिपूर्ण सिद्धान्त को वर्णित किया है, जो बहुत ही उपयोगी है। देवल्लदेवी कहती है कि—

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरित्याह वाक्पतिः।[2]

त्रातुमावर्धितक्ष्मां मां ददतस्व का क्षतिः।।113।।

आपने कुल को बचाने के लिये एक व्यक्ति का त्याग कर देना चाहिये यह नीति है — ऐसा किसी विद्वान ने कहा है। तो आपकी विशाल राज्य भूमि को बचाने के लिये मुझे दे देने से आपको क्या हानि ?

पुत्री की ऐसी वाणी सुनकर हम्मीर क्रोध से जल उठता है तथा कहता है कि जिस स्त्री ने तुम्हे ऐसा सिखा कर मेरे पास भेजा है। मै उसकी जिह्वा काट लूँगा। नृप हम्मीर देवल्ल देवी (पुत्री) से पुनः कहता है कि ऐसा करने से मेरा तीनों ही लोकों में अपयश होगा। कवि ने यहाँ पर 'नीति' का निदर्शन किया है। हम्मीर कहता है यथा —

अयशः पटहो लोके परलोके च दुर्गतिः।[3]

स्वकुलाचारविध्वंसो धिङ् नृणां जीवितं ततः।।124।।

"ऐसा करने पर" अपयश के बाजे बजेगें (इस लोक में) परलोक में भी दुर्गति होगी और कुलमर्यादा का नाश होगा। ऐसे में आदमी के जीने पर धिक्कार है।[3] ऐसा कहकर नृप देवल्लदेवी के मुख को बन्द कर उसे महल में भेज देता है। उधर रतिपाल रणमल्ल से बोला—राजा हम्मीर तुम्हे पकड़ने के लिये 5–6 सिपाहियों सहित आ रहे हैं। ऐसा कहकर वह अपने घर चला गया और नृप से कहा रणमल्ल नाराज है उसे आप 5–6 व्यक्तियों के साथ जाकर मना लीजिए। उसके कथनानुसार जैसे नृप रणमल के पास जाते है पूर्व से ही संकित वह नृप को देखकर पलायन कर जाता है और जाकर शत्रु से

---

1. हम्मीर महा0 13/101 2. वही 13/113

3. वही 13/124

दोनों मिल जाते है। नृप हम्मीर ने अपने भण्डार अधिकारी से पूछा भण्डार में कितना अन्न है ? जाहड़ ने सोचा यदि ऐसा कह दूँगा तो नृप सन्धि कर लेगा और युद्ध नहीं होगा, उसने कहा कि कुछ भी नहीं है। रणमल्ल और रतिपाल दोनों के शत्रु से मिल जाने पर तथा अन्न की समाप्ति का समाचार सुनकर राजा हम्मीर चिन्त्रित होकर महिमासाहि आदि दोनों सहोदरों को बुलाकर कहा तुम लोगों का यहाँ संकट की घड़ी (समय) में रहना उचित नहीं है इसलिये तुम लोग जहाँ कहो मै तुम्हे वही भेजवा दूँ राजा हम्मीर की ऐसी वाणी सुनकर मुगल पठान महिमासाहि अत्यन्त दुःखित होकर अपने निवास स्थान पहुँच कर अपनी ही खड्ग से सभी लोगों (कुटुम्बों) का गला घोटकर रक्त की नदी बहा देता है और हम्मीर को मिलने के बहाने बुलाता है। हम्मीर रक्त के तालाब में कटे हुये शिशुओं के और स्त्रियों के भी तैरते हुये शीशों को देखकर मूर्च्छित हो जाता है।

कवि के ऐसे वर्णन को पढ़ने मात्र से पाठक का हृदय द्रवित हो जाता है। यह घटना पाठक के अन्तकरण का स्पर्श करती है। कुछ समय बाद राजा जब होश में आया तो महिमासाहि के गले में लिपटकर खूब विलाप किया। जब लौटकर उसने देखा तो भण्डार अन्न से पूर्ण था। राजा ने उसी क्षण भण्डार के अधिकारी–जाहड़ को बुलाकर उसे मौत के घाट उतार दिया। इसके अनन्तर नीतिज्ञ नृप हम्मीर ने पुरवासियों को मुक्ति का द्वार खोल दिया और रानियों को अग्नि में प्रवेश करने की आज्ञा देदी। इसके अनन्तर आरङ्गदेवी पट्ट महिषी समेत दिव्य आभूषण वाली, अत्यन्त संयतचित्त वाली महिलायें स्नान करके नवीन वस्त्रादि धारण करके राजा को प्रणामकर अग्नि में प्रवेश किया। तब नृप ने अपने पुत्री से लिपट कर खूब रूदन किया और वह मृगलोचनी भी चिता में प्रवेश कर गयी। नृप ने वीरम को राज्य सौंपना चाहा किन्तु वह भी निस्पृह था। जनापवाद के भय से राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। तब नृप ने सम्पूर्ण धान्यादि को सरोवर मे ड़लवा दिया। वर्षा कम हो जाने पर श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि रविवार को अल्लावदीन पुनः युद्ध करने के लिये अपनी सेना लेकर आ गया। इधर हम्मीर की ओर से भी बलशाली महिमासाहि आदि चारों पठान योद्धा अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर युद्ध भूमि में जा डटे। युद्ध हो रहा था तभी वीरमदेव स्वर्गगामी बना। इसका कितना अनूठा वर्णन कवि ने निम्न श्लोक में किया है–

सा कीदृगस्ति स्वःश्रीर्यां नृपः परिर्णिनीषते।[1]

इति द्रष्टुमिवायासीद् वीरम् प्राग् नृपाद् दिवम।। 207।।

" वह कैसी स्वर्ग की लक्ष्मी है ? जिसे राजा वरण करना (ब्याहना) चाहता है" इसी को मानो देखने के लिये राजा हम्मीर से पूर्व 'वीरमदेव' स्वर्ग मे पहुच गया था।[1]

नयचन्द्र ने मृत्यु को भी कितने उत्कृष्ट रूप मे वर्णित किया है यह इनके वर्णन चातुरी का एक अनुपम उदाहरण है। वीरमदेव की मृत्यु के बाद नृपति हम्मीर स्वयं युद्ध करने के लिये रणभूमि मे पहुँचा और पहुचते ही लाखो मुस्लिम सैनिको को मार गिराया। नृप हम्मीर के बाण वर्षण से शत्रु सेना वेश्या की भांति किस तरह युद्ध भूमि से पलायन कर रही थी। इसकी छटा निम्न श्लोक मे दृष्टव्य है–

शरौघान् क्षिपतस्तस्य शकराजवरुथिनी।[2]

वसुहीनस्य वेश्येवक्षणेनासीत् पराङ्मुखी।। 221।।

शकराज की सेना क्षणभर को ऐसी मालुम होती थी जैसे वह धनहीन विलासी से दूर पलायन करने वाली वेश्या हो।[2]

क्रमशः युद्ध करते हुये, चौहान राजा हम्मीर ने बाणों से विध जाने पर यह सोचते हुये कि मै शत्रु के हाथ न लगू, स्वयं अपनी तलवार से अपने कण्ठ को काटकर स्वर्ग को प्रयाण गया है–

यथा– **श्री हम्मीरोऽथ वीरव्रजमुकुटमणिर्म्लेच्छबाणप्रहारैः**[3]

सर्वाङ्गेषु प्ररुढैः क्षितितलमभितो भावितो भीष्मकर्माः।

जीवन्तं ग्राहिषुर्मा क्वचिद्पि यवना मामिति ध्यातबुद्धिः

कण्ठं छित्त्वात्मनैव स्वमटति च दिवं स्मात्तसूरातिथित्व।। 226।।

भयंकर रण कर्म करनें वाला वीर कुल का मुकुट, मणि म्लेच्छों के बाणों के प्रहार से सभी अंगों में लगे बाणों से समस्त पृथ्वी पर सब ओर से सम्मानित राजा हम्मीर स्वंय ही अपने कण्ठ को काट कर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया। यह सोचकर कि कहीं मुझे यवन लोग जीते हुए ही न पकड़ ले और देवताओं का अतिथ बन गया।। इस हम्मीर के स्वर्ग गमन का वर्णन अत्यन्त काव्य कुशलता से किया है। [3] यहीं पर त्रयोदश सर्ग की समाप्ति हो जाती है।

---

1. हम्मीर– महा0–13/207 2. वही 13/221

3. वही 13/226

चतुर्दश सर्ग में हम्मीर के गुणों की स्तुति तथा काव्यकर्तु की प्रशस्ति आदि का वर्णन किया गया है। 14वे अंतिम सर्ग का नाम "हम्मीर गुणस्तुतिः काव्यकर्तुः प्रशस्तिःकवि वाक्य वर्णनम् नाम चतुर्थदशः सर्गः"।

इस सर्ग से कवि ने हम्मीर तथा स्वामिभक्त महिमासाहि के स्वर्ग चले जाने के पश्चात् उनकी वीरता तथा उनके गुणो की भूरि–भूरि प्रशंसा की है तथा रणमल्ल, रतिपाल आदि स्वामी द्रोही की खूब निन्दा की है। कवि नयचन्द्र ने यहाँ पर वर्णित किया है कि हम्मीर के स्वर्ग चले जाने पर धर्म, करुणा, उदारता, आदि सभी गुणों ने अपनी प्रशन्नता त्याग दी है–

यथा –

धर्मः शर्मपदं मुमोच करुणारण्यं शरण्यं यया[1]

वौदार्य विजगाल वालललितं शिश्राय वीरव्रतम्।

नीतिर्भीतिमुपाजगाम कमला वैधव्यमुद्रां दधौ

श्री हम्मीर! नृपालभालतिलक! स्वर्ग गतेऽद्य त्वयि।। 2।।

हे हम्मीर महीपति। हे राजाओं के भाल के तिलक आज तुम्हारे स्वर्ग चले जाने पर धर्म ने अपनी प्रसन्नता त्याग दी, करूणा वन की शरण में चली गई, उदारता नष्ट हो गई वीरों की प्रतिज्ञा बालकों का खेल बन गई, राजनीति भयभीत हो गई और लक्ष्मी विधवा हो गई।[1]

क्रमशः हम्मीर की वीरता का वर्णन कितने उत्कृष्ट रूप में किया इसका उदाहरण निम्न श्लोक है –

सन्ति क्षोणिभुजः क्षितौ कति न ते ये स्वप्रियाप्रीतये।[2]

वाहं वाहमनेकवाहनिवहान् प्रौढ़िं दृढ़ां तन्वेते।

म्लेच्छातुच्छकिरीटकोटिघटनैर्यो दन्तुरं सत्वरं

चक्राणः क्षितिमण्डलं स तु परं हम्मीर एकः कलौ।। 9।।

पृथ्वी पर कितने भूपाल नहीं है – बहुत से नहीं है कि अपनी महारानियों की प्रसन्नतार्थ अनेक अश्व समूहों पर आरोहण करके अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करते है ।

---

1. हम्मीर महा 14/02,
2. वही 14/09

किन्तु कलियुग में तो हम्मीरराज ही एक ऐसा राजा था, जिसने म्लेच्छों के बड़े बड़े मुकुटों को पृथ्वीतल पर फैलाकर उसे तुरन्त ही चित्र विचित्र वर्णन कर दिया था।

कवि ने हम्मीर को कलयुग को एक मात्र वीर मानते हुये उसकी विभिन्न वीरता पूर्ण कार्यों का वर्णन बड़ी काव्य कुशलता से किया है यथा –

भोक्तुं ध्वाङ्क्षमियेष विक्रमविभुः पङ्गुं स जैत्रो जले[1]

मज्जद्द्राग्मलयैणराड्रिपुपुरो मार्दङ्गिकत्वं दधौ।

इत्थं स्वं स्म विऽम्बयन्ति कति नो हम्मीर राजन्! परं

यत् त्वं चक्रिथ तच्चकार कुरूते कर्त्ताऽथवा कः कलौ।।11।।

जब शक्तिशाली विजेता जल में जाते हुए विकलाङ्ग कौए को धूर्त यवन राज को खाना चाहा तो, मलयराज ने डिण्डिम घोष करके उसे सावधान कर दिया था। हे हम्मीर नृपते! इस प्रकार से कितने आदमी स्वदर्शन नहीं करते है खूब करते है, किन्तु जो तुमने किया वह वीरत्व कार्य कलियुग में किसने किया कौन करता है अथवा कौन करेगा।[1]

कवि नयचन्द्र के गुणों के प्रशंसक है, तो स्वामिद्रोही एवं देश द्रोह के आलोचक भी है निम्न श्लोक में कवि ने रतिपाल तथा रणमल्ल जैसे अधम व्यक्तियों की किस तरह आलोचना किया है –

धिक् धिक् त्वां रतिपाल! याहि विलयं रे सूरवंशाधम्![2]

द्राग् वक्त्रं रणमल्ल! कृष्णय निजं पापिस्त्वमप्युच्चकैः।

एको नन्दतु जाज एवं जगति स्वाभाविकप्रीतिभृत्

येनात्रायि दिवंगतेऽपि नृपंतौ दुर्ग किलाहर्द्वयीम्।।16।।

हे सूर्यवंश के अधम् व्यक्ति रतिपाल! तुम्हे धिक्कार है, तुम विलयको प्राप्त हो जाओ। हेरणमल्ल! हे पापी! तुम तुरन्त ही अपने मुख पर खूब कालिख पोत लो। केवल एक ही स्वाभाविक स्वामी से प्रीति करने वाला व्यक्ति "जाज राज" ही संसार में आनन्द प्राप्त करे, जिसने राजा हम्मीर के दिवंगत होने पर दो दिन तक दुर्ग की रक्षा की।[2]

उपर्युक्त श्लोक में कवि ने रतिपाल रणमल्ल को धिक्कारते हुये, साथ ही राजा जाजदेव की प्रसंशा भी किया है। इसी सर्ग में हम्मीर के गुण स्तुति के साथ ही काव्यकर्ता की प्रशस्ति वर्णित है। निम्न श्लोक में कवि नयचन्द्र ने कृष्णगच्छ नामक विद्धान की स्तुति बड़े अनूठे ढंग से चित्रित किया है –

---

1. हम्मीर 14/11   2.वही 14/16

जयति जनितपृथ्वीसम्मदः कृष्णगच्छो[1]

विकसितनवजातीगुच्छवत् स्वच्छमूर्तिः।

विविधबुधजनालीभृङ्गसङ्गीतकीर्तिः

कृतवसतिरजस्रं मौलिषु च्छेकिलानाम्।। 22।।

पृथ्वी को अति हर्ष प्रदान करने वाले, विकसित हुई नई चमेली के पुष्पों के गुच्छों की भाँति पवित्र मूर्ति – वाले, विभिन्न प्रकार के विद्वानों की पंक्ति रूपी भौरों के द्वारा जिनकी कीर्ति गाई जा रही है, ऐसे और विद्वान लोगों के शिरोभूषण "कृष्णगच्छ" की जय हो। कवि ने अपने गुरु जयचन्द्र सूरि की स्तुति की है।[1] इसके बाद स्वयं के विषय में लिया है –

पौत्रोऽप्ययं कविगुरोर्जयसिंहसूरेः काव्येषु पुत्रतितमां नयचन्द्रसूरिः।[2]

नव्यार्थसार्थघटनापदपंङ्क्तियुक्तिविन्यासरीतिरसभावविधानयत्नैः।।27।।

कवि गुरू श्री जयसिंह सूरि के इस पौत्र ने भी नवीन – नवीन अर्थ, घटना पदों में रीति रस भाव आदि के विन्यास का प्रयत्न करके काव्य को उत्पन्न किया।[2]

तदनन्तर कवि नयचन्द्र ने विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की विभिन्न प्रकार से स्तुति किया है। कवि ने यह उद्घाटित किया है, जब सरस्वती की कृपा होती है, तभी छोटे–2 (अल्पबुद्धि) कवि भी काव्य प्रणयन में सफल होते है और यदि सरस्वती की कृपा न हो तो जो प्रमुख कवीन्द्र है उनका भी काव्य उपहास की वस्तु प्रतीत होता है। ऐसा ही उदाहरण कवि ने यहाँ पर प्रस्तुत किया है। यथा –

जल्पन्त्येके कवीन्द्राः सरसमनुभवादेव कुर्वन्ति काव्यं[3]

तन्मिथ्या हन्त! नो चेत् तदिह विदधतां तद्वतां येऽपिधुर्याः।

एषोऽस्माकं प्रसादः सततमपि गिरां देवतायाः स्मृतायाः।

धत्ते लालित्यमुच्चैः खलु चपलदृशां पुण्यतारूण्यमेव।। 29।।

कोई विद्वान कहते है कि जो भी कार्य कलाओं में प्रमुख कवीन्द्र है, वे अपने अनुभव से ही सरस काव्य की रचना करते है। किन्तु यह मिथ्या बात है। यह तो हमारे ऊपर बारम्बार उपासना की जाने वाली वाणी की देवी सरस्वती की ही कृपा है कि चपल नयनवाली ललनाओं की पवित्र तरुणता ही प्रचुर लालित्य धारण करती है और हमें प्रेरणा

1. हम्मीर महा0 14/22 2. वही 14/27

3. वही 14/29

देती रहती है। नयचन्द्र ने ,कविता ,वनिता और गीत कब रस में प्रद्दौत है इसका वर्णन बड़ी चातुरी से किया है यथा–

कविता वनिता गीतिः प्रायो नादोः रसप्रदाः।

उग्दिरन्ति रसोद्रेकं ग्राह्यमानाः पुरः पुरः।।37।।

कविता ,वनिता (स्त्री) और गीति–ये सव प्रारम्भ में प्रायः रसप्रद नही होते किन्तु सबके सम्मुख इनका भाव समझ लेने पर ही ये सब रस की वर्षा करने लगतें है ।[1]

पीत्वा श्रीनयचन्द्रवक्त्रंकमलाविर्भाःविकाव्यामृतः [2]

को नामामरचन्द्रमेव पुरतः साक्षान्न पश्येद् ध्रुवम्।

आदावेव भवेदसावमरता चेत् तस्य नो बाधिका

दुर्वार : पुनरेषः धावतुतमां हर्षावलीविभ्रमः।। 46।।

श्री नयनचन्द्र सूरि महाकवि के मुख कमल से निकले हुए काव्य रूपी अमृत का पान करके कौन "श्री अमरचन्द्र" नामक पूर्व कवि को अपने सामनें साक्षात नही देखता ? अर्थात् अवश्य देख लेता है। यदि प्रारम्भ में ही उसकी बाधिका अमरता नही हुयी यदि वह देवत्व को प्राप्त नही हुआ (मर नही गया) तो यह हर्ष की लहरों का अनिवार्य समूह खूब इधर–उधर प्रचुर मात्रा में उछलता ही रहेगा।[2]

महाकाव्य के अन्त में श्रीजयसिंह सूरि के शिष्य नयहंस के द्वारा लिखित महाकाव्य नयचन्द्र सूरि की प्रशस्ति का वर्णन है । इसका उदाहरण निम्न श्लोक में है –

नयचन्द्रकवे : काव्यं रसायनमिहाद्भुतम्।

सन्तः स्वदन्ते जीवन्ति श्री हर्षाद्याः कवीश्वराः।। 3।।[3]

नयचन्द्र कवि का यह काव्य संसार में एक अद्भुत रसायन है इसका आस्वाद सज्जन ही ले सकते है और श्रीहर्ष आदि कवियों की कीर्ति भी जीवित रहती है।[3]

लार्लियममरस्येव श्री हर्षस्यैव वक्रिमा।

नयचन्द्रकवेः काव्ये दृष्टं लोकोत्तर द्वयम्।। 4।।[4]

श्री अमर चन्द्र कवि जैसा यहाँ लालित्य हैं और श्रीहर्ष कवि जैसी इस काव्य में वक्रोतियाँ है। इस प्रकार नयचन्द्र कवि के काव्य में ये दोनों आलौकिक गुण वर्तमान है।[4]

---

1. हम्मीर महा0 14/37 2. वही 14/46
3. वही शिष्यकृता काव्य प्रशस्ति–3 4. वही 4

यशोऽर्थिनां काव्यकृतां कवीनां पुण्यं च पापं च न किञ्चदेव।[1]

पुण्यस्य पापस्य च यन्निदानं मनस्तदेषां यशसैव रुद्धम्।। 6 ।।

यश चाहने वाले कवियों का पाप व पुण्य कुछ भी नहीं होता है। पुण्य और पाप का जो भी निदान है वह उनके मन के द्वारा ही निर्धारित किया जाता है।[1]

इस तरह महाकवि नयचन्द्र ने उपरोक्त सर्गो में रचना चातुर्य दिखाकर वस्तु वर्णन किया है। उनका वस्तु वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है।

सप्तम अध्याय

प्रकृति-चित्रण एवं ऋतु वर्णन

महाकाव्य में प्रकृति वर्णन

प्रकृति नदी चिरकाल से मानव की सहचरी बनकर अपने विविध सतरंगी आकर्षक उपादानों द्वारा उसके जीवन मे घुल मिलकर एक होती रही है। कभी–कभी वह वन्य मानव की जननी बनकर अपनी सुखद एवं स्निग्ध क्रोड मे आश्रय देती रही है, तो कभी सृष्टि की ओर आकर्षित करती हुई विधाता की विधायिनी शक्ति का आभास देती रही है, तो कभी सहृदयों को सहचरी के रूप मे अपने मनोहरो हाव–भावों से रिझाती हुई, उत्कृष्ट कोटि के कवियो को प्रेरणा देती रही है। यही कारण है कि हमारा आदि काव्य प्रकृति के मृदु अञ्चल मे करुणा स्रोत क़े साथ प्रकट हुआ था।

महाकवि वर्डवर्थ तो प्रकृति को आनन्दमय ही मानते है। पर्वतों की उत्तुंग श्रृखलाये और निर्झरो का मादक संगीत उन्हे आनन्द प्लावित ही दृष्टिगत होता है। हिन्दी काव्य के विश्वप्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त तो ललना सौन्दर्य को भी प्राकृतिक सुषमा पर न्यवछावर कर देते है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया ।
बाले तेरे बाल जाल में , कैसे उलझा दूँ लोचन ।।
भूल अभी से इस जग का।।

मानव की सृष्टि के आदि से ही प्रकृति से तन्तु पट जैसा सम्बन्ध रहा है । हमारा सारा साहित्य प्रकृति रमणीय आंचल में विचरित हुआ हृदयगत मनोंभावों के प्रबल हो उठने पर मानव का प्रकृति से तादात्म्य अधिकाधिक हो जाता है मानव की दृष्टि में प्रकृति का संवेदन शील स्वरूप ही हिन्दी साहित्य को छायावाद जैसी वस्तु दे सका है।

संस्कृत वाड्मय के आदि कवियों से ही प्रकृति वर्णन की परम्परा रही है। संस्कृत साहित्य के आदि ग्रन्थ वेद की ऋचाओ मे प्रकृति वर्णन द्रष्टव्य है। इसके अनन्तर संस्कृत साहित्य के आदि कवि वाल्मीकि ने रामायण मे प्रकृति चित्रण किया है।

संस्कृत साहित्य के आदि ग्रन्थ रामायण के 16वे सर्ग मे वाल्मीकि ने हेमन्त ऋतु वर्णन किष्किन्धा काण्ड के अष्टाविशति सर्ग में वर्षा ऋतु वर्णन, गिरि वर्णन, त्रिशः सर्ग मे शरद ऋतु वर्णन किया है। इसके अनन्तर कवि कुलगुरु कालिदास ने भी अपने ग्रन्थ मे अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ सर्ग मे प्रकृति वर्णन को काव्य का अंग बनाया है। प्रकृति के बिना काव्यो मे उत्कृटता नही आ सकती।

संस्कृत वाङ्मुय के आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने अपने रामायण नामक ग्रन्थ मे किस तरह हेमन्त ऋतु का वर्णन किया है यथा–

खर्जूर पुष्पा कृतिभिः शिरोभि पूर्ण तण्डुलैः ।[1]

शोभन्ते किचिदालम्बाः शालयः कनकप्रभः ।।17।।

ये सुनहरे रंग के जड़हन धान खजूर के फूल के से आकार वाली बालों से जिनमें चावल भरे हुये है, कुछ लटक गये है इन बालों के कारण इनकी बड़ी शोभा होती है।[1]

हेमन्तु ऋतु में धूप किस तरह हितकर प्रतीत होती है इसका वर्णन महर्षि बाल्मीकि ने रामायण के 16वें सर्ग में कितने अनूठे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है यथा –

आग्राह्य वीर्यः पूर्वाह्ने मध्याह्ने स्यर्शतः सुखः ।[2]

सरक्त किञ्चिदापाण्डुरातपः शोभते क्षितौ ।।19।।

इस समय अधिक लाल और कुछ–कुछ श्वेत पीत वर्ण की धूप पृथ्वी पर फैलकर शोभा पा रही है। पूर्वाह्न काल में तो कुछ इसका बल जान ही नही पड़ता है, परन्तु मध्यान काल में इसके स्पर्श से सुख का अनुभव होता है।[2]

इसी क्रम रामायण के किष्किन्धा काण्ड में 28वें सर्ग में संस्कृत साहित्य के आदि कवि बाल्मीकि ने वर्षा ऋतु का बड़ा ही मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया है, जिसकी छटा दर्शनीय है। यथा –

सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वपि च पाण्डुभिः ।[3]

स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रण मिवाम्बारम ।। 5 ।।

सन्ध्या काल की लाली प्रकट होने से बीच में लाल तथा किनारे के भागों में श्वेत एवं स्निग्ध प्रतीत होने वाले मेघ खण्डों से अच्छादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है। मानो उसने अपने घाव में रक्तरञ्जित सफेद की पट्टी बाँध रखी हो।[3]

मेघोदर विर्निमुक्त कर्पूर दल शीतलाः ।[4]

शक्यमञ्जलिभिः पातु वाताः केतकगन्धिनः ।। 8 ।।

मेघ के उदर से निकली, कर्पूर की दली के समान ठण्डी तप्त केवड़े की सुगन्ध से भरी हुई इस वरसाती वायु को मानो अर्ज्जलियों में भरकर पिया जा सकता है।[4]

---

1. वाल्मीकि रामायण– 16/17

2.वही 16/19

3. वही 28/05

4. वही 28/8

मेघ कृष्णाजिन धरा धारायज्ञोपवीतिनः।[1]

मारुता पूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः।।10।।

'मेघ रूपी काले मृगचर्म तथा वर्षा की धारारूपी यज्ञोपवीत धारण किये वायु से पूरित गुफा (याह्रदय) वाले ये पर्वत ब्राह्मचारियो की भाँति मानो वेदाध्ययन आरम्भ कर रहे है।[1]

उपर्युक्त श्लोक मे वाल्मीकि ने बादलो को काले मृग, वर्षा की धारा को, यज्ञोपवीत सदृश वर्णित किया है। निम्न श्लोक मे कवि ने वर्षा ऋतु की भूमि को मधुशाला सी चित्रित किया है जिसकी शोभा दर्शनीय है, यथा–

कदम्ब सजीर्जुन कन्द वालद्या

वनान्त भूमिर्मधु वारिपूर्णा।

मयूर मत्ताभिरूत प्रनृत्तै

शपान भूमि प्रतिमा विभाति।। 34।।[2]

कदम्ब ,सर्ज, अर्जुन और कमल से सम्पन्न वन के भीतर की भूमि, मधु–जल से परिपूर्ण हो, मोरों के मदयुक्त कलरवो और नृत्यों से उपलक्षित होकर, आपान भूमि (मधुशाला) के समान प्रतीत होती है।[2]

महर्षि वाल्मीकि ने आकाश से गिरते हुये जल का सादृश्य निर्मल मोतियों से किया है। जो कितना ही ह्रदयग्राही वर्णन है।

मुक्ता समाभं सलिलं पतद्रवै[3]

सुनिर्मलं यत्र पुटेषु लग्नम्।

ह्रष्टा विवर्णच्छदना विहगाः

सुरेन्द्र दत्तं तृषिता पिबन्ति।। 35।।

आकाश से गिरता हुआ मोती के सदृश स्वच्छ एवं निर्मल जल पत्तों के दोनों में संचित हुआ देख प्यासे पक्षी पपीहे हर्ष से भरकर देवराज इन्द्र के दिये हुए उस जल को पीते है।[3] वर्षा से भीगे जाने कारण उनकी पांखे विविध रंग की दिखाई देती है ।

इस तरह संस्कृत वाङ्मय के आदि कवि वाल्मीक ने अपने महाकाव्य रामायण एवं अन्य कृतियो मे प्रकृति चित्रण बडे ही आकर्षक ढ़ंग से चित्रित किया है। इसके पश्चात संस्कृत साहित्य के कवि कुलगुरु कालिदस ने प्रकृति वर्णन की इस परम्परा को आगे–

---

1. वाल्मीकि रामायण– 28/10   2.वही 28/34

3. वही 28/35

बढाया। कलिदास की उपमाये प्रसिद्ध है। उपमा कालिदासस्य। कालिदास ने उपमान रूप मे प्रकृति को चुना है। कालिदास ने अपने ग्रन्थ "अभिमान शाकुन्तल के प्रथमसर्ग मे ग्रीष्म ऋतु का आकर्षक वर्णन किया है जो साहित्य मे दुर्लभ है। ग्रीष्म ऋतु मे कौन–कौन सी वस्तुये सुखकर होती है इसका उदाहरण कवि कालिदास ने निम्न श्लोक मे प्रस्तुत किया है। यथा–

सुभगसलिलावगाहाः पाटल संसर्ग सुरभि वन वाताः।[1]

प्रयच्छाय सुलभ निद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः।। 3।।

जल मे स्नान सुखकर ज्ञात होता है, गुलाबों के सम्पर्क से वन की वायुएँ सुगन्ध युक्त होती है घनी छाया मे नींद सरलता से आती है और दिन सायंकाल के समय मनोहर होते है।[1]

ईषदीषच्चुम्बितानि भ्रगरैः सुकमार केसर शिखानि।[2]

अवतं सयन्ति दयमानाः प्रमदाः शिरीष कुसुमानि।। 4।।

युवतियाँ दया भाव से भौरो के द्वारा कुछ आस्वादित कोमल केसर शिखायुक्त शिरीष के फूलो को कान का आभूषण बना रही है।[2]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक मे कालिदास ने आश्रम का वर्णन किया है। जब शकुन्तला आश्रम से विदा होकर पतिगृह को जाने लगती है, तब प्रकृति किस तरह शोकाकुल हो जाती है। इसका उदाहरण निम्न श्लोक है यथा–

उदगलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्त नर्तनामयूराः।[3]

अवसृत पाण्डु पत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।। 12।।

शकुन्तला की विदाई से दुखी–हरिणी कुश के कौल उगल दिया है, मोर नाचना छोड दिये है, लताये अपने पीले पत्ते गिराकर मानो आँसू वहा रही है।

चतुर्थ अंक मे कालिदास का प्रकृति प्रेम तथा प्रकृति देवी की सजीव मूर्ति का दर्शन, किसे रसमय नही बनाता। प्रथम अंक मे आश्रम का सच्चा वर्णन एवं ग्रीष्म ऋतु का कितना ही अनूठे ढंग का वर्णन किया है जो पाठक को सहज रूप से ही आकृष्ट कर लेता है। हम्मीर महाकाव्य के काव्य कर्ता नयचन्द्र ने भी प्रकृति वर्णन से अछूते नही रहे। नयचन्द्र ने हम्मीर महाकाव्य मे प्रकृति का बडा मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया है।

---

1. अभिज्ञान शपकुन्तलम् 1/3   2. वही 1/4

3. वही 4/12

मानव सुख – दुःख में प्रकृति सहचरी बनकर तद्रूप हो जाती है। प्रातः कालीन मलय समीर, पक्षियों का नीडो मे मृदु–कलरव, कोमल की काकली, पपीहा का पी कहाँ, अलिवृन्द का गुनगुन की मूक भाषा में मृदु संगीत, प्रसूनों की मादक सुरभि, सरिताओं का कल–कल निनाद, मृगशावकों की हृदयहारी क्रीड़ायें, कलिकाओं के मृदुचुम्बन से हिमाच्छादित शैल श्रेणियों की इन्द्र धनुष सी विभा अतीव प्रमोदकारी है, तो चिन्ताकुल मानस में प्रकृति के मनोरञ्जक उपादान वृश्चिक दंश बन जाते हैं। इष्टजन के संयोग में जो प्राकृति केलि पुञ्ज बन जाती है, वियोग की प्राण घातिनी व्यथा भी प्रकृति करवा देती है। सुख की अवस्था में जो मेघ सुरति ग्लानि निवारक होते है, प्रिय वियोग में उन मेघों को ही दूत कर्म करना पड़ता है।

मृगया, केलि, वनबिहार, तपोभूमि, कृषिकार्य, जलक्रीड़ा आदि में प्रकृति से हमारा संयोग होता रहा है। मानव मात्र को अपनी स्निग्ध एवं सुखद क्रोड प्रदायिनी जननी, प्रकृति वन्य मानव से लेकर आधुनिक मानव को भी आश्रय प्रदान करती है। भावुक एवं विज्ञजनों की चिरसहचरी यह प्रकृति युग–युगान्तर से मानव जीवन में एक सार होती रही है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। मानव हृदय की उदार प्रवृत्तियों की पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप में प्रस्तुतीकरण ही साहित्य है, जो जनहित में लाभकारी है। हमारे आदि साहित्य अर्थात् वैदिक साहित्य का सर्जन भी प्रकृति को रम्य सुषमा की परिधि में हुआ है। भगवान वेदव्यास, वाल्मीकि आदि महर्षि तपोवनों को अलंकृत करते रहे है।

यही कारण है कि लक्षण ग्रन्थों में लक्ष्य ग्रन्थों के लिये प्रकृति वर्णन (विशेष रूप से महाकाव्यों के लिये) का निर्देश किया गया है।

कथा वस्तु के अतिरिक्त महाकवि नयचन्द्र ने अधोलिखित सर्गों में वसन्त एवं जलक्रीड़ा आदि का वर्णन किया है –

पञ्चमः सर्गः वसन्त वर्णनम्।

षष्ठः सर्गः जलक्रीड़ा वर्णनम्।।

महाकवि नयचन्द्र का प्रकृति वर्णन संस्कृत साहित्य के समुज्जवल द्वार का हीरक है। वे प्रकृति देवी के प्रवीण उपासक थे। उनकी सूक्ष्म रसदर्शिनी दृष्टि अत्यन्त व्यापक, सावधान और प्रकृति के मार्मिक रहस्यों तथा सीलों की उद्भावना में पूर्ण समर्थ है। विरही व्यक्तियों को मूर्च्छित कर देने वाला मधुमास (बसन्त) ऋतु का वर्णन, कवि ने

उत्कृष्ट रूप में किया है। बसन्त ऋतु में दिन बड़े होते है इसका निदर्शन कवि ने बड़ी चतुरता से किया है –

ऋतुराजवीक्षणरसान्नितरामरूणेन न ध्रुवमनोदि रथः।[1]

कयमन्यथा दधुरमी दिवसा गुरूतां रथाङ्गविहगैकहिताम्।। 3।।

ऋतुराज बसन्त को अवलोकन करते अरूण सूर्य के रथ के सारथी द्वारा भी रथ निश्चित ही नही चलाया गया था। अन्यथा चक्रवाकों के हित करने वाले ये वसन्त दिवस कैसे बड़े हो जाते है।[1] यहाँ कवि ने बसन्त दिवसों के बड़े होने को कितनी पटुता से चित्रित किया है। कवि ने सत्य ही उद्घाटित किया है कि बसन्त ऋतु में राते छोटी होती है। राते यह सोचकर छोटी हो गई है कि विरही स्त्रियाँ रातों को आसानी से सहन कर सकें।

अतिदुःसहप्रियसुहद्विर हैः प्रमदाजनैः कथमिवैष स नः।[2]

महिमा सहिष्यत इतीव निशाः कृशतामधुर्मधुरिताः कृपया।। 4।।

अपने प्रियतमों के दुःसह विरह से व्याकुल स्त्रियों के द्वारा कैसे हमारी महिमा सहन की जायगी, ऐसा सोचकर कृपालु रातें भी मानों छोटी हो गई है।[2]

बसन्त ऋतु में सूर्य उत्तरायण हो जाता है। इसका निदर्शन कवि ने बड़ी काव्य कुशलता से किया है यथा –

अमुना विवर्णितदलामभितो नलिनीं विलोक्य नलिनीदयितः।[3]

कुपितः प्रहिंसितुमिवैष हिमोच्चयमभ्यगाद्विमवतः ककुभम्।। 7।।

नलिनी पति अर्थात् सूर्य भी मानों क्रुद्ध होता हुआ विवर्ण पत्तों वाली नलिनी को देखकर इस पर आघात करने के लिये उत्तर दिशा की ओर चल दिया[3] (सूर्य उत्तरायण हो गया)।

नयचन्द्र के सजीव प्रकृति चित्र यद्यपि कल्पना चक्षुदृश्य है, किन्तु उनकी मूर्तता, मनोहरता और सरसता वस्तुबिम्ब के ग्रहण कराते हुये सहृदय के हृदय को सौन्दर्यानुभूति से भर देती है।

बसन्त ऋतु मे मधुयुक्त भ्रमरियों का गुञ्जार लोगो के मन को किस तरह विकार युक्त बना देता है–

---

1. हम्मीर महा0 5/03 2. वही 5/04

3. वही 5/07

इसका निम्न श्लोक मे है यथा–

मधुकप्रसूनमधुपानवशादतिमात्रमत्तम धुकृद्युवतेः।[1]

विनिशम्य झङ्कृतमरं दधिरे कति रे!न चेतसि विकारभरम्।। 9।।

मधुयुक्त पुष्पो के मधुपान करने से अधिक मदमत्तभ्रमरियों के गुञ्जन को सुनकर किन के मन मे विकार नही आ जाता था।.[1]

कोयल के द्वारा सम्पूर्ण जगत को काम मय सा किस तरह बना दिया गया इसका वर्णन कवि ने कितनी काव्य पटुता से किया है यथा–

सहकारसारतरमञ्जरिकाग्रसनोल्लसन्म धुरिमाञ्चितया।[2]

परपुष्टया कुसुमकाण्डकरेऽरचि लीलयाऽप्यखिलमेव जगत्।। 10।।

आम्रवृक्ष की मञ्जरियों को खाकर प्रचुर माधुर्य प्राप्त करने वाली कोयल के द्वारा मानो सारा जगत् काममय बना दिया गया था।[2]

मालती के पुष्प बसन्त ऋतु मे नही खिलते है, इसको कवि ने इस तरह उद्घाटित किया है यथा–

यदिपुष्पिताऽहमिह तत्कियतीं श्रियमुद्वहन्तु लतिका इतराः।[3]

किमिदं विचिन्त्य कृपया सुरभौ विचिकास नाऽभिनवजातिलताः।। 13।।

यदि मै यहाँ विकसित हो जाऊ तो ये दूसरी लताएँ क्या शोभा प्राप्त करेगी, यह सोचकर बसन्त ऋतु मे मालती की लता पुष्पित नही होती।[3]

कवि ने भ्रमरो के मन्द–मन्द संचरण को कामदेव की उपमा प्रदान करते हुये, भ्रमरों के द्वारा मधुपान का चित्रण किस तरह किया है,जो पाठक को अनायास अपनी ओर आकृष्ट लेता है। यथा–

मधुपानतः शिथिलत भ्रमरा भ्रमिरा बभुः प्रतिवनं तरुषु।[4]

गुलिकास्त्रकाभ्यसनमुन्नयतो गुलिका इव प्रसवचापविभोः।। 20।।

कामदेव मानो बन्दूक का अभ्यास करते हुए भ्रमर रूपी गोलियाँ चला रहा था,क्योकि हर वन मे पेडों पर पुष्प मधुपान से ये भौरे धीरे–धीरे संचरण कर रहे थे।[4]

---

1. हमीर महा0 5/9 2. वही. 5/10,

3. वही– 5/13

4. वही 5/20

कवि नयचन्द्र ने बसन्त ऋतु मे विकसित होने वाने–बकुल वृक्ष, चम्पक वृक्ष, पलाश पुष्प, तिलक वृक्ष आदि का बडा मनमोहक चित्र इस सर्ग मे प्रस्तुत किया है। कोयल मानिनी रमणियों को मानो उपदेश दे रही है।

इसका निदर्शन नयचन्द्र ने निम्न श्लोक मे बड़ी उत्कृष्टता से चित्रित किया है।

हृदयेश्वरं भजत मानममुंत्यजताऽऽशु नैति समयो हि गतः।[1]

इति बोधयन्निव कुरङ्गदृशो रुचिरं चुकूज परपुष्टयुवा।। 30।।

कोयल भी मानो हरिणाक्षी रमणियो को सुन्दर वाणी से उपदेश दे रही थी कि हृदयेश्वर पति के पास चली जाओं, शीघ्र ही यह मानत्याग दो क्योंकि बसन्त ऋतु में चतुर्दिक सुगन्धित पुष्प विभिन्न रंगो मे विकसित होते है तथा वे पुष्प मनुष्य को मदमत्त बना देते है।[1] भ्रमर समूह अपने गुञ्जार से, मनुष्य को रसमय करदेते है तभी तो बसन्त ऋतु को मधुभास कहा गया है।

बसन्त ऋतु मे लतायें किस तरह वनदेवियों की भाँति सुशोभित होती है। कवि ने खिले हुये पुष्पों को कुचद्वय तथा पल्लवो को हाथ के रूप मे निदर्शित कर, प्रकृति का मानवीकरण किया है। यह कवि कल्पित, कल्पना है निम्न श्लोक मे लताओ तथा उनके विकसित पुष्पो की छटा अनुपम है–

विकसत्सुमस्तबकचारुकुचा नवपल्लवाद्भुतकरक्रमणाः।[2]

मधुमागताः समवलोकयितुं वनदेवता इव लता व्यरुचन्।। 34।।

वनदेवियों की भाँति लताएँ बसन्त को देखने के लिए आ गई थी उनके खिले हुए पुष्प गुच्छ ही मानो उन्नत कुच थे और नये–नये पल्लव ही अद्भुत हाथ थे।[2]

इस प्रकार के लोचन द्वय से बसन्त काल को प्रसन्नचित्त से देखकर वह वीरम का बडा भाई हम्मीर जैत्रसिंह पिता से पूछकर वृक्ष पक्तियों से सज्जित, मन्द–मन्द पवन वाले नगर के उद्यान मे चला गया। हम्मीर का मुख अपनी सुन्दरता से मानो चन्द्रमा को पराजित कर रहा था इसका निदर्शन निम्न श्लोक मे है–

अदसीयरूपविलुलोक यिषानुगृहाधिरूढ़ललनावदनैः।[3]

दिवसेऽपि विस्फुरदनेकसुधाकरबिमम्बरतलं जनयन्।। 38।।

वह अपनी सुन्दर मुखाकृति के कारण मानो अम्बर तल मे दिन मे भी अनेक चन्द्रमाओं को अवतीर्ण कर रहा था।[3]

---

1. हम्मीर महा० 5/30 2. वही 5/34 3. वही 5/38

बसन्त ऋतु के आते ही ललनाये विह्ल हो कर, कभी–कभी अपने नायक से रूठ जाती है तथा नायक भी अपनी नायिका को विभिन्न प्रकार मनाते है। इसका वर्णन निम्न श्लोक मे प्रस्तुत किया है। जो कवि कल्पित है एक रुष्ट नायिका को नायक किस तरह मनाता है यथा–

अनुनेतुमम्बुजदृशः पदयोः पतितस्य कस्यचन वेणिरभात्।[1]

इदमीयमानमभिपाटयितुं कुसुमायुधस्य तरवारिरिव।। 46।।

ऐसे ही किसी नायिका के चरण कमलो मे गिरे हुए नायक की चोटी ऐसी शोभा दे रही थी मानो वह इसके (नायिका के) मान को काट डालने के लिये कामदेव की तलवार हो।[1]

प्राकृतिक सौन्दर्य का अनुकरण मानवीय एवं कला सम्बन्धी सौन्दर्य स्वीकार किया जाता हैं। वास्तव मे मानवीय सौन्दर्य का मापदण्ड प्राकृतिक सौन्दर्य है। कोई धूर्त नायक कुसुम गुच्छ ढूढने के बहाने एक युवती के कुचद्वय का मर्दन कर दिया इसकी सुन्दर कल्पना इस श्लोक मे निहित है–

अयि पश्यतोऽपि कुसुमस्तबकः क्व गतो ममेति कितवोक्तिपरः।[2]

प्रममर्द नैकयुवतेः कुचयोर्युगलं गवेषणमिषेण परः।। 60।।

अन्य धूर्त ने एक युवती के कुच द्वय का मर्दन कुसुम गुच्छ ढूढने के बहाने कर लिया और कहा–"अरी! मेरे देखते ही देखते कुसुम गुच्छ कहाँ चला गया।[2]

अन्य नायक लकुच वृक्ष को दिखाने के बहाने नायिका (प्रिया) के मुख का पान किस तरह कर लिया इसकी अनुपम छटा निम्न श्लोक मे दृष्टव्य है। यथा–

अयि पश्य–पश्य पुरतो लकुचे सुकुचे कथं भ्रमति भृङ्गयुवा।[3]

इति विप्रलोभ्य दयितामितरो निपपौ परां सुचिरमर्द्धदृशा।। 64।।

अन्य नायक ने प्रिया के सुन्दर मुख का पान, आँख मींच कर यो कहकर लुभाते हुए किया–"अरि देखो देखो सामने उन्नत कुचवाले लकुच वृक्ष पर युवा भ्रमर मंडरा रहा है।[3]

उपर्युक्त श्लोक मे कवि ने लकुच वृक्ष की सुन्दरता का वर्णन किया है।,

---

1. हम्मीर महा0 5/46
2. वही 5/60
3. वही 5/64

वनभूमि पर कामिनियों के नखाग्र से तोड़े गये पुष्प की पंखुडियां किस तरह मोतियो की भाँति सुशोभित हो रही थी। इसका उदा0 निम्न श्लोक है। कवि ने यहाँ पर वनभूमि की सुन्दरता का वर्णन बहुत ही खूबसूरती के साथ किया है यथा–

कामिनीकरजकोटिविलूनस्रस्तपल्लववनावनिपीठे।[1]

पुष्पराजिभिरराजत मुक्तावेणिवद् विपुलविद्रुमपात्रे।। 74।।

वनभूमि पर जब कामिनियो के नखाग्रो से तोड़े हुए, पल्लव बिखरे हुए थे तो फूलो के समूहों से वह भूमि मूंगो से भरे पात्र मे रखी हुई मोतियों की माला की भाँति शोभा देरही थी।[1] इस प्रकार सुन्दर निधियों से कल्याण युक्त अपने अंगो से क्रीडारत होकर के जंगल की वासंतिक पुष्प शोभा को तुरन्त ही पुर के निवासी योद्धाओं ने सफल कर दिया। कवि ने वसन्त ऋतु की सुहानी छटा व्यक्त करते हुये कथानक को कथावस्तु से जोड़ भी रखा है। इस प्रकार दोनो प्रकार की काव्य विधि का निर्वाह किया है।
छठवाँ सर्ग जलक्रीडा वर्णन का है। इसमें जैत्रसर नामक सरोवर तट पर उगे वृक्षो वाले सरोवर में तरुणियाँ किस तरह जलक्रीडा करती है, उस समय जितनी अच्छी कल्पनायें हो सकती थी, उनको कर सकने मे कविवर नयचन्द्र ने कसर नही की।

जल केलि के लिये उत्सुक रमणियां अपने प्रणयी पुरुषों के साथ किस तरह जलाशयों में प्रवेश कर सुशोभित हो रही है । कमलनालों के पास स्थित चक्रवाक पक्षी किस तरह सुशोभित हो रहे है, तथा जलविहार करते समय नायक–नायिका एक दूसरे पर किस तरह पानी की बौछारे कर रहे है, आदि का वर्णन इस सर्ग की मोहकता का प्रतीक है तथा यह सर्ग अत्यन्त मोहक तथा रमणीय है। तालाब की सुन्दरता का एक सुन्दर चित्र कवि नयचन्द्र ने प्रस्तुत किया है–

नीलनीरजदलावलिदम्भव्यक्तलक्ष्मविधृतामृतपूरम्।[2]

यत्कृतावरणं भुविरेजे चन्दबिम्वमिव राहुभयेन।। 5।।

यह तालाब उस चन्द्र बिम्ब की भाँति शोभित था, जो कि राहु के ड़र से मानो पृथ्वी पर उतर आया हो और इस पर नीले कमलो के पत्र समूहों के चिंहों से मानो चन्द्रमा से कलङ्क को भी पराजित कर दिया था,

---

1. हम्मीर महा0 5/74
2. वही 6/5

ऐसा ही जल केलि का दूसरा उदा0 निम्न श्लोक में है–

उत्तरङ्गिणि सरोऽम्भसि नार्यश्चिक्षिपुर्विकसितानि सुमानि।[1]

उज्जिजीविषयेव यजन्त्यो मन्मथस्य गिरिशं जलमूर्तिम्।। 9।।

ऊँची–ऊँची लहरो वाले, सरोवर के जल मे स्त्रियो ने पुष्पित सुमन, इस कारण से फेंके मानो वे कामदेव की शंकर स्वरूप जलमूर्ति का अपनी दीर्घायु की कामना हेतु भजन कर रही हो।[1]

क्षीणकटि वाली रमणियों को जल मे जबरन किस तरह युवक प्रवेश करा रहे थे, इसकी अनुपम छटा यही पर कवि ने बडी ही चातुरी से चित्रित किया है–

क्षीणकटि वाली, अत्यन्त गहरे जल के देखने मात्र से ही भयभीत रमणियों को हाथ से पकड़कर किसी तरह से युवक जल मे प्रवेश करा रहे थे।

जल केलि का बडा ही आकर्षक एवं मननोहक वर्णन कवि नयचन्द्र ने किया है ऐसी ही उदाहरण यहाँ कवि ने चित्रित किया है यथा–

उत्सुकापि सुतरां जलकेलावञ्चले प्रणयिना विधृतापि।[2]

तद्विलोकरसभाववशाऽऽत्मा काप्यवास्थित तथैव परोऽपि।। 15।।

जलकेलि के लिए उत्सुक कोई रमणी प्रणयी पुरुष के द्वारा आँचल पकडने पर भी उसकी ओर अवलोकन करने के रस मे डूब जाने के कारण रुक गयी थी और वैसे ही नायक भी ठहर गया था।[2] किस तरह चक्रवाक पक्षी स्त्रियो के मुख कमल को चन्द्र बिम्ब समझकर नही छोड रहे थे इसका उदाहरण निम्न है–

सञ्चरच्चटुलदृग्वदनाब्जालोकतर्कितविशाकर बिम्बैः।[3]

खादितुं बिसलतोपगृहीता तत्यजे न बुभुजे न च चक्रैः।। 20।।

कमलनालो के पास स्थित चक्रवाक पक्षी न तो कमलो को छोड़ ही रहे थे क्योकि चंचल नेत्रों वाली स्त्रियों के मुख कमलो को उन्होने चन्द्रमा का बिम्ब समझ लिया था।[3]

मदिराक्षी द्वारा प्रियतम का गला युद्ध मे कण्ठ की भाँति किस तरह आवृत कर (पकड) लिया गया है, यहाँ पर कवि नयचन्द्र की उत्कृष्ट कल्पना का निर्दशन होता है।

यथा– **सेसिचत्प्रियतमो मदिराक्ष्या शक्तयाकुलतया प्रतिसेके।[1]**

गृह्यते् स्म भुजया लधुकण्ठे बाणयुद्धविदिवासिकरेण।। 23।।

---

1. हम्मीर महा0 6/9   2. वही 6/15

3. वही 6/20   4. वही 6/23

बदले मे जल की बौछार करने वाली समर्थ मदिराक्षी के द्वारा प्रियतम को भी भिगो दिया गया और तलवार चलाने वाले योद्धा के द्वारा जैसे तीर चलाने मे कुशल योद्धा का कण्ठ पकड लिया जाता है, वैसे ही भुजा से उसका कण्ठ भी आवृत्त कर लिया।

श्रीरपाह्रियत नो नयनानामेभिरेभिरिति सम्भृतकोपाः।[1]

मज्जयन्ति कमलानि सरस्सून्मज्जयन्ति च मुहुः सुदृशः स्म।।27।।

इन्होने हमारे नयनों की छवि चुराली है ऐसा सोचकर कुपित हुई नायिकाये कमलो को सरोवर मे डुबाती थी और पुनः बाहर निकालती थी।[1]

कवि ने नयचन्द्र जल मे क्रीडा करते हुए पुरुषो को कामदेव नायिका को रति की भाँति वर्णित किया इन सवके अवलोकन से ज्ञात होता है, कि नयचन्द्र की उपमायें श्रेष्ठ है।

कवि नयचन्द्र ने इस सर्ग मे जल क्रीडा का ऐसा उत्कृष्ट कोटि का वर्णन किया है जिसको पढ़ने मात्र से पाठक लौह मे चुम्मक की तरह आकृष्ट हो जाते है ऐसा ही वर्णन निम्न श्लोक मे दृष्टव्य है। यथा–

शैलसारकठिने प्रमदानामम्भसां स्तनतटे स्खलितानाम्।[2]

फेनपङ्क्तिरिव हारलताया दिद्युते सरसि मौक्तिक पङ्क्तिः।।30।।

रमणियों के प्रस्तर खण्ड की भाँति कठोर स्तनो पर से नीचे गिरने वाले जल की फेन राशि मानो सोने के द्वार के ऊपर मोतियों की लढ़ी सी चमक दे रही थी।[2]

जल विहार मे रत रमणियों के नुपुर सदाचारी की भाँति किस तरह आचरण कर रहे थे इसका छटा निम्न श्लोक मे दर्शनीय है।

योषितां जलविहारवतीनां नूपुराणि रणितानि न चक्रुः।[3]

कः सदाचरणभाग् जलमध्ये स्वं तनोति यदि वा ममिानम्।।41।।

जल विहार करने वाली रमणियों के नुपूर झंकार भी नही कर रहे थे सदाचार का ज्ञाता कौन व्यक्ति मूर्खो के मध्य अपनी महिमा का बखान करेगा? कोई नही।[3]

किसी मीनाक्षी के प्रतिबिम्ब जल मे किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे,

---

1. हम्मीर महा0 6/27
2. वही 6/30
3. वही 6/41

इसका वर्णन निम्न श्लोक मे है। यथा--

बिम्बितेऽम्बुनि निजाऽऽननपद्मे काऽपि दृग्द्वयमवेक्ष्य झषाक्षी।[1]

पद्मकोशगतमीनधिया तद् गृह्णती दयितचित्तमगृह्णीत्।। 48।।

किसी मीनाक्षी ने निर्मल जल मे अपने मुखकमल के प्रतिबिम्ब होने पर जब अपने नेत्रद्वय देखे तो उसने कमल के ऊपर बैठकर मछली जानकर उसे पकडना चाहा और ऐसा करने वाली उसने अपने प्रिय के मन को मोहलिया।[1] कविवर नयचन्द्र का ऐसा जल क्रीड़ा वर्णन पाठक को रससिक्त कर देता है। इसका उदाहरण निम्न श्लोक है–

स्रस्तो धम्मिल्लबन्धो गलितमखिलमप्यञ्जनं लोचनानां।[2]

भ्रष्टो रागोऽधराणाम विरलपुलकैर्व्याप्तमङ्ग समग्रम्।।

नष्टा शक्तिः कपोलस्तनतटलिखिता पत्रलेखाऽप्यपास्ता।

वारिक्रीडा वधूनामजनि रतिरसस्य प्रवेशध्रुवेव।। 56।।

बधुओं की जलक्रीडा रति के आनन्द के लिये मानो प्रवेश द्वार सी वन गई थी, जो केश पाश को खिसका देती थी, नेत्रों के अञ्जन को बहा देती थी, अधरो के राग को समाप्त कर देती थी, पुलकावलि समस्त अंग मे भर देती थी, शक्ति को नष्ट कर देती थी, और गालो तथा स्तनो पर उत्कीर्ण पत्र लेखा को भी नष्ट कर देती थी।[2]

जल से निकली हुई रमणियो के केश किस तरह मयूर पंखो की भांति सुशोभित हो रहे थे इसका उत्कृष्ट वर्णन कवि ने बड़े सहज तथा आकर्षक रूप में किया है।

यथा– विनिर्गतानां सरसो वधूनां पृष्ठे प्रलम्बी शुचिकेशपाशः।[3]

मेरोः शिलायां सुखमासितस्य शिखण्डिनो बर्हमिव व्यराजत्।। 61।।

इसी प्रकार जल से निर्गत तरुणियों का केशपाश वैसे ही शोभा दे रहा था, मानो कि सुमेरु पर्वत की चट्टान पर आराम से बैठे हुए मोर का पंख समूह हो।[3] हम्मीर जल क्रीड़ा का आनन्द लेकर सबको रवाना करके स्वयं अपने महल मे चला गया, इसका निदर्शन कवि ने बड़ी चतुरता से किया है–

यथा– भूषाऽपहृत्या रिपुमस्मदीयमसौ यमात्तः सलिलं बिभर्त्ति।[4]

इति प्रकोपाभिरिवाङ्गनाभिरबध्यतावर्त्य शिरोजपाशः।। 64।।

---

1. हम्मीर महा0 6/48
2. वही 6/56
3. वही 6/61
4. वही 6/64

हमारी बेश भूषा को चुराकर यह चोर शत्रु की भाँति जल मे जाना चाहता है ऐसा सोचकर मानो कुपित नारियो ने पलट कर अपने केश राशि को बाँध लिया था।[4]

इत्थं विधाय जलकेलिमनन्यजन्यां [1]

श्री जैत्रसिंहतनयः स हमीर वीरः।

स्वान् स्वान् गृहान् प्रति विसृज्य जनान् सहैतान्

वेश्माससाद निजमर्थिकृतप्रसादः।।

याचकों के प्रति दया करके (दान दे करके) श्री जैत्र सिंह का पुत्र इस प्रकार अद्वितीय जल क्रीड़ा करके सहचरों को अपने गृहों के लिये रवाना करके, अपने महल में आ गया। अतः कवि नयन चन्द्र ने विभिन्न उपमानो के माध्यमो से जलक्रीड़ा करने वाली रमणियों का वर्णन किया है, इस भाँति इस सर्ग में युवक युवतियों का पुष्प चयन व क्रीड़ा का सुंदर चित्रण किया है। जो कविवर नयचन्द्र की काव्य प्रतिभा को गुञ्जारित करता है।

वसन्त वर्णन

संस्कृत साहित्य–

प्रचीन काल से ही कवियों मे "प्रकृति चित्रण" की परम्परा रही है। चाहे हिन्दी साहित्य के कवि हों, या संस्कृत साहित्य के 'प्रकृति वर्णन' कवियों के काव्य (कृतियों) का एक अंग सा वन गया है। अधिकांशतः संस्कृति वाङ्मय के कवि, उपमान के रूप में, सूर्य, चन्दमा कमल, भ्रमर हंस कबूतर लतायें एवं विभिन्न ऋतुओं आदि को चुनते थे। यदि महाकाव्यों से प्रकृतिक वस्तुओं को अलग कर दें तो शायद उपमा के लिए कवियो को कठिनाई महसूस होगी।

प्रकृति वर्णन की इस कव्य परम्परा से कवि नयन चन्द्र अछूते नही रह पाये । उन्होने हम्मीर महाकाव्य में जैसा वसन्त वर्णन एवं जल क्रीड़ावर्णन किया है वैसा वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है । नयचन्द्र ने वसन्त ऋतु का वर्णन किया है, जो बड़ा ही मनोहरी एवं आकर्षक वर्णन है पाठक इसको पढ़ने मात्र से रस में निमग्न हो जाते हैं। हम्मीर महाकाव्य के पॉचवे सर्ग का नाम वसंत वर्णन ही है – वसन्त वर्णनो नाम पञ्चमः सर्ग तथा छठे सर्ग का नाम जल क्रीडा वर्णन है–

---

1. हम्मीर महा० 6/65

जल क्रीडा वर्णनो नाम षष्ठः सर्ग। सातवें सर्ग का नाम श्रृंगार सञ्जीवन है। श्रृंगार सञ्जीवनों नाम सप्तमः सर्गः। उपमा के क्षेत्र में तो कवि नयचन्द्र कवि कुल गुरू कालिदास के अनुज सदृश ज्ञात होते है। उत्प्रेक्षा अलंकार भी बसन्त वर्णन में प्रभावी दिखाई पड़ता है। अतः सम्पूर्ण पञ्चम सर्ग मे ही वसन्त का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

इसके अनन्तर जैत्रसिहं राजा के अपनी पृथ्वी को स्वर्ग तुल्य बना देने पर विश्वविजेता कामदेव का प्रियमित्र वसन्त उल्लखित हो गया। मानों सर्पिणियो के निःश्वासो से निश्चित रूप से मलयानिल पुष्ट हो गया था, अन्यथा किस प्रकार से इसमें तुरन्त ही विरही व्यक्तियों को मूर्च्छित करने की क्षमता होती है। वसन्त ऋतु को वसन्तराज भी कहा गया है। वसन्त ऋतु में प्रायः दिन बडे होते है और रातें छोटी होती है। तथा दिन में चक्रवाक एवं चक्रवाकी का मिलन होता है। इसी को कवि कितनी चातुरी से वर्णित किया है।

ऋतुराज बसन्त को अवलोकन करते समय अरुण सूर्य के रथ के सारथी द्वारा भी रथ निश्चित ही नहीं चलाया गया था। अन्यथा चक्रवाकों के हित करने वाले में बसन्त दिवस कैसे बड़े हो जाते।[3] अपने प्रियतमों के दुःसह विरह से व्याकुल स्त्रियों के द्वारा कैसे हमारी महिमा सहन की जायेगी ऐसा सोचकर कृपालु राते भी मानो छोटी हो गई।

यह सत्य है कि मालती वसन्त ऋतु में नहीं फूलती इसी बात को कवि ने इस प्रकार लिखा है। मधुप भी मलिनता का आचरण कर रहे है क्योंकि इस समय मालती नहीं फूल रही है। या फिर मुनि लोगों के लिये यह बसन्त अधिक प्रिय हो गया था। मलय वायु भी चन्दन वृक्षों के साथ सुरभि फेलाता हुआ औश्र इसकी के कुचों पर फेलता हुआ मानों पुनः मलयाचल के विशाल शिखर पर आरोहण का आनन्द लेता था।

बसन्त ऋतु में सूर्य प्रायः उत्तरायण है इसकी पुष्टि कवि ने यहाँ पर किया है – नलिनीपति अर्थात सूर्य भी मानो क्रुद्ध होता हुआ विवर्ण पत्तो वाली नलिनी को देखकर इस पर आघात करने के लिये उत्तर दिशा की ओर चल दिया (सूर्यउत्तरायण हो गया)।।17

पवन वेग से उडाई हुई पुष्प समूहो की रेणु से मानो गगन धरणी–तुल्य हो गया था। अतः दिन बडा हो गया था।। 18

वसन्त के समय चतुर्दिक विभिन्न पुष्प खिले होते है उन पर भ्रमर समूह मंडराते है कोयल भी मधुर ध्वनि करती है, फलाश पुष्प खिल जाते है इन सबका बडा आकर्षक एवं मनोहारी वर्णन श्री नयन चन्द्र ने किया है–

मधुयुक्त पुष्पों के मधुपान करने से अधिक मदमत्त भ्रमरियों के गुञ्जन को सुनकर किनके मन में विकार नही आ जाता है ।। 9

आम्र वृक्ष की मञ्जरियों को खाकर प्रचुर माधुर्य प्राप्त करने वाली, कोयल के द्वारा मानो सारा जगत काममय बना दिया गया था।। 10

यह शशी को नष्ट करने वाली अमावस्या आ गयी और यह कोयल की वाणी से बात करती है ऐसा देखकर कौन सी स्त्री प्रसन्न नही होती, किन्तु प्रवास मे गये पथिक की पत्नी तो दुःखी ही थी। तोंते की चोंच जैसे पलाश के फूले हुए पुष्प वनो में शोभित हो रहे थे, मानो शांत रस रूपी हाँथी को वश में करने के लिये वे कामदेव के अंकुश हो गये थे।।12

यदि मैं यहां विकसित हो जाऊँ तो ये दूसरी लताये शोभा प्रप्त करेंगी यह सोचकर वसन्त ऋतु में मालती की लता पुष्पित नही होती।। 13

वन रूपी युवती की हंसी की भाति अपने प्राण प्रिय वसन्त के आगमन पर हर कानन मे निर्मल खिले हुए पुष्प शोभा दे रहे थे।। 14

"वर्षा ऋतु में इस मालती लता ने पथिक स्त्रियों को विरह के कारण मार दिया था। इस विचार से यह मालती पंक्ति से बाहर रहकर, बसन्त ऋतु में मानो नहीं खिलती।।15

कामदेव ने भी मानों परदेशी व्यक्तियों के हृदय के शूल को गाड़ने हेतु डाली पर लगे सुन्दर फूलों के छिद्र निर्माण कर लिये थे जिनमे लौहाग्र वाले काम बाण चुभोये जा सके।। 16

यदि ये मालती लताएं मेरे बाणस्वरूप है तो इन्हे स्पर्श होने पर कौन सह सकता है – 2 (कोई नहीं) तो क्यों यह कामदेव बसन्त ऋतु में इसका आदर नहीं करता ?।।17

खिले हुये प्रियाल वृक्ष की मंजरियों के रेणु के कारण लाल, लाल हिरणियों के नेत्रों से तुल्यता प्राप्त कर रहे थे। रमणियों के नेत्र क्योंकि मधु रूपी मदिरा पीने के कारण वे खूब रक्तिम हो गये थे।।18

बसन्त ऋतु में जब दक्षिण दिशा से आने वायु चलती है तो लतायें हिलते है इसका वर्णन कवि ने बड़ी पटुता से किया है – मानो वनराजी रूपी वधू आलिंगन के लिए बसन्त ऋतु को बुला रही थी, क्योंकि उसके पल्लव रूपी कर कमल संचरण शील मलयानिल के कारण हिल रहे थे।।19

फलों पर भ्रमर समूह उड़ रहे थे –

कामदेव मानो बन्दूक का अभ्यास करते हुए भ्रमर रूपी गोलियाँ चला रहा था क्योंकि हर वन में पेड़ों पर पुष्प मधुपान से ये भौंरे धीरे–धीरे संचरण कर रहे थे।। 20

यहाँ पर पलाश वृक्ष का कवि ने बड़ा ही ह्रदय ग्राही वर्णन किया है। यह पलाश का वृक्ष भी देखने मात्र से ही बंधुओ को कम्पित कर रहा था; क्योंकि विरहिणियाँ ता यों ही कृश हुई रहती थी मानों उसका माँस इसने भक्षण करके उन्हें कृश कर दिया था।।21

प्रवास में जिनके पति चले गये है ऐसी स्त्रियाँ पदाघात के श्रम से ही तृष्णा युक्त हो जाती थी। (सकाम हो जाती थी) और पुनः पुनः अशोक वृक्ष पर पाद प्रहार करती थी। इसके प्रतिशोध–स्वरूप अशोक वृक्ष मानो उन्हे काम ज्वर से पीड़ित कर रहा था।।22

यहाँ पर कवि ने तिलक वृक्ष का वर्णन किया है – तिलक वृक्ष भी मधुर मधु से भम्ररों को लुभाता हुआ, सारे वृक्षों पर तिलक की भांति शोभा धारण कर रहा था।। 23।।

तिलक वृक्ष के वर्णन के बाद अब कवि बकुल वृक्ष की शोभा का वर्णन किया है – बकुल वृक्ष अवर्णनीय शोभा धारण करता हुआ बंधुओं के मुख–मदिरा के सिंचन बिना दुःखी हो रहा था। अतः उसने उन सुन्दर लोंचनो वाली स्त्रियों को भी व्याकुल कर दिया था।। 24

क्रमशः नयचन्द्र अब तिलक, बकुल वृक्ष के बाद चम्पक वृक्ष के विषय में लिखा है– वनो के समूंह की कालिमा से ऐसा मालूम होता था मानो आसमान में ही वहाँ रात का आगमन हो अतः चम्पक वृक्ष की कलियाँ कामदेव के दीपक की उपमा (शोभा) प्राप्त कर रही थी।। 25

चम्पक वृक्ष के अनन्तर कवि कमल की सुन्दरता का वर्णन किया है। तालाब के कमल अगणित भ्रमरो के आगमन के कारण अधिक नीलिमायुक्त होगये थे और वे आकाश मे स्थित सकलङ्क चन्द्रमा की उपमा धारण कर रहे थे।। 26

यहाँ पर कवि ने पलाश के साथ भ्रमर की सुन्दरता का वर्णन किया है–

खिले हुए पलाश पुष्प से युक्त डाली कुछ कज्जल युक्त जलबिन्दु की उपमा प्राप्त करती थी और भ्रमर रूपी युवक मालती लता के विरह के कारण अग्नि तपस्या में मानो लीन हो रहा था।। 27

मलयानिल वन लताओं को अत्यधिक हिला रहा था और वे मानोचिरकाल तक वृक्षो के मिलन के कारण एकान्त मे आलिगनों का विवरण कर रही थी।। 28

समस्त त्रिलोकी की विजय के कारण पसीने से लथपथ कामदेव राजा को मानो केले का वृक्ष पंखा झल रहा था; क्योंकि हवा के कारण बसन्त ऋतु में उसके पत्ते हिल रहे थे।। 29

यहाँ पर कवि ने कोयल की मधुर ध्वनि को रमणियों के लिये उपदेश बताते हुयें अनूठे ढंग से वर्णन किया है– कोयल भी मानो हरिणाक्षी रमणियों को सुन्दर वाणी से उपदेश दे रही थी कि हृदयेश्वर पति के पास चली जाओं शीघ्र ही यह मान त्याग दों क्योंकि बीता हुआ समय पुनः नही आता है।। 30

"क्या मुख चुम्बन मधुर होता है अथवा मकरन्द ?" इस बात की विवेचना करने वाला भ्रमर प्रेम मे पागल होकर क्षण मे तो कमल कों चूमता था, तो क्षण पश्चात् भ्रमरी के मुख का चुम्बन करता था।। 31

कोयल एवं भ्रमरो के वर्णन के बाद कवि ने कबूतर पक्षी का अद्भुत वर्णन किया है– कबूतर अपनी मधुर आवाज से प्रिया को मदमत्त करता हुआ, उसे आलिङ्ग करके चूम रहा था और इस प्रकार से प्रियतमा की प्रार्थना के लिये वह युवको के मन को त्वरायुक्त कर रहा था।। 33।।

इस पर कवि ने लताओ के महत्व को बढ़ाते हुये, उसे वन देवी के रूप मे प्रदर्शित किया है– वन देवियो की भाँति लताये बसन्त को देखने के लिये आ गई थी उनके खिले हुए पुष्प गुच्छ ही मानो उन्नत कुच थे और नये–नये पल्लव ही अद्.भुत हाँथ थे।। 34।।

रमणियो के द्वारा शरीर पर लेप के लिये उपयुक्त जो सुगंधयुक्त केसर का बहुत आदर किया जाता था। उपकार करने वाली एवं चिरकाल से व्यवहृत वस्तु अचानक ही कैसे त्याज्य हो सकती है ?।। 35।।

यहाँ भौरे के रंग कृष्ण वर्ण का वर्णन कवि ने अत्यधिक चतुरता पूर्वक किया है– पथिक स्त्रियों के मारण के कारण मानो भयंकर पापों से व्याप्त कज्जल की कृष्णतम द्युति वाले भौरे हरेक जंगल मे घूमने लग गये थे।। 36।।

अब आगे कवि हम्मीर की सुन्दरता एवं उसके द्वारा किये जाने वाले मनोविनोद पूर्ण उपवन क्रीडा का वर्णन किया है– इस प्रकार लोचन द्वय से बसन्त काल को प्रसन्न चित्त से दिखकर; वह वीरम का बडा भाई हम्मीर, अपने पिता जैत्रसिंह से पूछकर वृक्ष पंक्तियों से सज्जित मन्द–मन्द पवन वाले, नगर के उद्यान मे चला गया। वह अपनी सुन्दर मुखाकृति के कारण मानो अम्बर तल मे दिन मे भी अनेक चन्द्रमाओं को अवतीर्ण कर रहा था। कपूर कस्तूरी आदि से मिश्रित चन्दन तथा सिन्दूर के उबटन से उसका शरीर सुगंधित था। उपवन के मनोविनोद को करने का इच्छुक अन्तःपुर की वधुओ के साथ वह क्रीडा करता था।

जिसके साथ अनेक समान वय वाले साथी थे और उनके परिहास के कारण उसका चन्द्रमुख मानो अधिक उज्जवल हो जाता था।। 37–40

इसके पश्चात् बहुमूल्य वस्त्र धारण किये हुये, नवीन आभरणों से सज्जित, कामुक भावना से उद्दीप्त शरीर वाली रमणियाँ भी मदमत्त वसन्तोत्सव के लिये साथ चली। 41

किसी ललना ने अपनी सखी के ये वचन सुने – "हे सखि! तुम्हारी सुन्दर वेश–भूषा से तथा मुख कमल की रोती सूरत से क्या लाभ ? आओ, शीघ्र ही अपने प्रियतम् को प्रसन्न करके शत्रु की प्रसन्नता को नष्ट कर दो।" तब उसने मान छोड़कर पति के पास जाकर शुभ्र कृपा युक्त सुन्दर चेष्टायें करनी प्रारंभ कर दी।। 42–43

ऐसे ही दूसरे व्यक्ति ने निपुणता से अपनी चन्द्रमुखी प्रिया को मनाने के लिये विविध संकेत किये। पूर्व सूचित संकेतों के अनुसार उसके द्वारा पति का आलिंगन कर लिया गया।

हे सखि, यहाँ से वन में चलो। वह धूर्त तो विरह के कारण क्या कर रहा है? यह देखें। ऐसा कहकर पति के द्वारा प्रेरित किसी दूती ने नायिका को नायक के पास इसी बहाने से ला खड़ा किया।

ऐसी ही किसी नायिका के चरण कमलो मे गिरे हुए नायक की चोटी ऐसी शोभा दे रही थी, मानो वह इसके (नायिका के) मान को काटडालने के लिए कामदेव की तलवार हो। ।46

कोई नायक कह रहा था–अरी चन्द्रमुखि! देखो, तुरन्त ही बसन्त के दिन बीत गये है। अभी भी क्या मान धारण करके तुम अपना और दूसरे का भी अहित करना चाहती हो ? और यह कहकर कुपिता प्रियतमा को मनाकर वह स्त्री को मनाने मे चतुर नायक क्षण–क्षण मे नायिका का आलिंगन करता हुआ बसन्तोत्सव के लिये चला जा रहा था।। 47–48।।

दूसरी स्त्री ने जब अपने प्रिय के ये वचन सुने–"हे कामिनि! तुम न तो मेरी ओर देखती हो न बोलती हो, यह तुम्हारा अनुचर अब कैसे जी सकता है तो मद्यपान से भी अधिक मत्तता को प्राप्त हो गई ।। 49।।

इस श्लोकार्थ मे कवि ने वन भूमि की सौन्दर्यता का वर्णन बड़े ही सहज ढंग से किया है–

ये सब लोग नव प्रियतमा की भाँति वन भूमि को देखकर रमण करने को उत्सुक हो उठे क्योकि उन्होने नये पल्लव रूपी हाथ वाली, भ्रमरो की पंक्ति रूपी वेणी वाली और कुसुम गुच्छो रूपी कुचवाली वन भूमि को देखलिया था।। 50।।

वन भूमि की मानवी करण कर चुकने के बाद, कवि ने वृक्षों की स्थिति का वर्णन किया है; कि ये वन वृक्ष बसन्त ऋतु की वायु से किस प्रकार हिल रहे थे–

उस समय वृक्ष समूह मानो चलती हुई वायु से हिलते पत्तों के बहाने से काँपने लग गये; जब तरुणियों ने निष्ठुरता से प्रसून तोड़ना प्रारम्भ कर दिया।। 51।।

कोई सरोज रूपी तरुणी उस समय व्याकुल हो गई, जब मदमत्त भौरों ने उसके मुख को कमल समझ कर, जंगल के फूलों को छोड़कर, उस पर मंडराना प्रारम्भ कर दिया।। 52।।

किसी नायक ने जब किसी लता की ओर बढ़ती हुई प्रियतमा के शरीर पर नखक्षत दिया तो वह हृदय में कितनी मुदित नही होगी अर्थात खूब प्रसन्न हुयी।। 53।।

अपने हाँथ से निर्मित पुष्पो की दो गेंदों को किसी नायक ने बनाकर दिखाया और कहा कि "तुम्हारे कुच द्वय इतने बडे है" और कुपित रमणी को हंसाया ।। 54।।

हे प्रिये! यह पुष्प मधुर गंध वाला है 'ऐसा कहकर दूसरे चतुर ब्यक्ति ने रूमाल के बहाने से नायक के समीप आकर नायिका के होंठों का हाँथ से स्पर्श कर लिया।।55।।

सखी के माध्यम से जब किसी नायिका ने सुना – हे प्रिये एक बार यदि मुंख चुम्बन दोगी तो यह कुसुम की माला मैं दूँगा तो लज्जा और आनन्द से नायिका पूर्ण हो गयी ।। 56 ।।

अन्य नायिका ने वृक्ष पर चढ़े हुये प्रिय के पैर को वृक्ष पल्लव के बहाने पकड़ लिये,– किन्तु आनन्द प्राप्त होने के कारण न तो खीच सकी न तो छोड़ सकी ।। 57 ।।

इसी क्रम में कवि द्वारा लकुच वृक्षों का वर्णन किया है– अन्य नायक ने प्रिया के सुन्दर मुख का पान आँख मींचकर यों कहकर लुभाते हुए किया–"अरी, देखो, देखो सामने उन्नत कुच वाले लकुच वृक्ष पर युवा भ्रमर मंडरा रहा है ।। 64 ।।

यहाँ कवि ने भ्रमरों को वन रक्षकों के सदृश कहा है– तरु समूह से पुष्पित कुसुमों को तोड़कर सिर पर धारण करने वाली नायिका के पास वन रक्षकों की भाँति भ्रमर खूब गुँजन करते हुए जाने लगे। कवि आगे अब नायक की सौंन्दर्यता का वर्णन करते हुए उसे कामदेव के सदृश कहा है– शिथिल गाल होने के कारण एक ओर झुकी हुई प्रिया को एक बाहु से संभाले हुए और इसके हाथ में कमल लिए हुए नायक ऐसा शोभा दे रहा था, मानों धनुष बाण लिए वह कामदेव ही था ।। 70 ।।

कर कमलों से लम्बी शाखांए पकड़कर, आपस में पैर मिलाकर, सखियों के द्वारा हिलाई हुई कमल नेत्रियाँ झूले की उपमा प्राप्त कर रही थी।

कवि नयचन्द्र ने वन भूमि का किस तरह वर्णन किया है यहाँ पर द्रष्टव्य है– वन भूमि पर जब कामिनियों के नखाग्रों से तोड़े हुए पल्लव बिखरे हुये थे, तो फूलों के समूहों से वह भूमि मूंगो से भरे पात्र में रखी हुई मोतियों की माला की भांति शोभा दे रही थी। पुष्पों से निर्मित कर्णफूल तथा कंकणों के समूहो से सुशोभित शरीर वाली ललनाँए मानो अब कामदेव के हथियार बंद सैनिको की भाँति शोभा दे रही थी ।। 75 ।।

इस प्रकार सुन्दर विधियों से कल्याण युक्त अपने अंगो से क्रीड़ा रत होकर के जंगल की वासंतिक पुष्प शोभा को तुरन्त ही पुर के निवासी योद्धाओं ने सफल कर दिया ।। 76 ।।

निष्कर्ष–

उपयुर्क्त तथ्यों के वर्णन के अवलोकन से यह ज्ञात है कि कवि नयचन्द्र एक प्रकृति प्रेमी कवि थे। इन्होने जिस तरह बसन्त का मनमोहक एवं आकर्षक वर्णन किया है उससे यह सिद्ध है। इन्होने कई वृक्षों के नाम गिनाये है– जैसे– लकुच, बकुल चम्पक,

मालती, प्रियाल, कमल पलाश आदि, कौन पुष्प कब विकसित होता है इसका भी ज्ञान नयचन्द्र को था। बसन्त आगमन के समय प्रकृति में क्या–क्या परिवर्तन होता है इसका भी वर्णन कवि ने इस बसन्त वर्णन शीर्षक (प्रसंग) में किया है– यथा सूर्य का उत्तरायण होना, रात्रियों का छोटा होना, मालती का न फूलना, कोयल की आवाज सुनाई पड़ना, पवन का तीव्र चलना, आम्र मञ्जरियो में नवीन कोपले निकलना आदि। कवि ने बसन्त को मधुमास, कामदेव का प्रियमित्र , बसन्तराज, आदि नामों से सम्बोधित किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने बसन्त के समय प्रभावी पक्षी एवं जीवों का वर्णन भी बड़ी तन्मयता के साथ किया है वे पक्षी एवं जीव है– भ्रमर समूह कबूतर, कोयल, चक्रवाक आदि। बसन्त ऋतु में वियोगियों की विरह व्यथा और तीव्र हो जाती है इसका भी वर्णन करने में कवि ने भूल नही किया है।

अतः अन्त में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कवि नयचन्द्र सूरि का बसन्त वर्णन श्रेष्ठ एवं अनूठा है एवं ऐसा मनोह्लादक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ सा प्रतीत हैं। यदि हम कहें कि नयचन्द्र बसन्त ऋतु वर्णन के पंडित थे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। वे एक प्रकृति प्रेमी कवि थे। सम्पूर्ण यह बसन्त वर्णनो नाम पंचम सर्गः हम्मीर महाकाव्य में, भोजन को स्वादिष्ट बना देता है उसी तरह बसन्त वर्णन से महाकाव्य में चार चाँद लग गये है।

अष्टम अध्याय

अलंकार विवेचन

काव्य में अलंकारों का स्थान

काव्य में अलंकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनिकार के पूर्व तो गुणालंकार प्रस्थान ही काव्य में प्रतिष्ठित था। वामन के अनुसार तो अलंकारो के बिना काव्य संज्ञा ही उत्पन्न नही होती।[1] कुन्तक ने भी अलंकारो से युक्त कविता की व्यापकता स्वीकार की है।[2] भामह के अनुसार जिस प्रकार वनिता का सुन्दर मुख भी बिना आभूषण के सुशोभित नही होता, उसी प्रकार अलंकारों के अभाव में काव्य भी शोभादायक नही होता है।[3] इस प्रकार इन आचार्यों के मत में काव्य का सम्पूर्ण वैशिष्ट्य अलंकारों पर ही निर्भर करता है। भामह आदि चिरंतन आचार्यों ने काव्य में अलंकारो के महत्व का जो प्रतिपादन किया है उससे अलंकारों का महत्व प्रदर्शित नहीं होता है क्योकि उनके अनुसार तो अलंकार ही काव्य का सर्वस्व था । अतएव प्राचीन आचार्य अलंकारो की यदि भूयसी प्रशंसा करतें है तो इसमें कोई आश्चर्य नही है परन्तु आनन्द व र्धनोत्तरवर्ती आचार्यों ने भी काव्य में अलंकारो के महत्व को जो स्वीकार किया है वह अलंकारो के महत्व के सम्बंध में विशेष रूप से अवधेय है। इससे अलंकारो का महत्व स्वयं सिद्ध हो जाता है क्योकि विरोधी के द्वारा की गयी प्रसंशा अपना विशेष महत्व रखती हैं। यद्यपि भोज[4] एवं मम्मट[5] आदि आचार्यो ने काव्य क्षेत्र में अलंकारो की अपेक्षा की है। तथापि अलंकारो के द्रुर्दमनीय वैशिष्ट्य से अभिभूत होकर मम्मट अपने 'काव्य प्रकाश' के अन्तिम दो उल्लासो में अलंकारो को सविस्तार निरूपित करतें है। इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ भी साहित्य दर्पण में अलंकारो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदो का भी निरूपण करतें है। रसगंगाधरकार ने अलंकारो का विशद विवेचन किया है ।

ध्वनिवादी व्यञ्जनावृत्ति के समर्थक है। परन्तु अलंकार वाच्य भूमि पर ही अधिष्ठित होता है[6] अतएव व्यञ्जना के समर्थ ध्वनिवादियों ने अलंकारो की उपेक्षा की है। उनके अनुसार तो काव्य का सारा चारूत्व व्यंग्य पर ही निहित है।

---

1. "काव्य ग्राह्यमलंकारता !! काव्यलंकार सूत्रवृत्ति ।। 1/1
2. " सालंकारस्यकाव्यता" !! वकोक्ति जीवित।। 1/6
3. " न कान्तमपिनिर्भूषं विभाति वनिताननम् ।। भामह कायाव्लंकार ।। 1/13
4. गुणयोगस्तयोर्मुख्यों गुणालंकारयोगयो । स0 क0 1/59
5. अनलंकृति पुनः क्वापि। काव्य प्रकाशसूत्र ।
6. अभिधानाविधेयभावो हिं अलंकाराणां व्यापकः । लोचनंपृ0 162

वाच्यार्थ का काव्य मे कोई आदर नही है। पंड़ितराज जगन्नाथ के शब्दो में अलंकारो का 'सार ' वाच्यार्थ का सौन्दर्य मात्र ही है।[1] आनन्दवर्धन के अनुसार भी अलंकार और कुछ नही है केवल कथन शैली के विविध प्रकार है।[2]

इतना होने पर भी अलंकार का काव्य में अपना महत्व है। ध्वनिवादियों के द्वारा अलंकारो की उपेक्षा करना इतना ही सिद्ध नही है कि अलंकार ध्वनि की समता कदापि नही कर सकते है। वस्तुतः ध्वनि की उत्कृष्टता दिखलाने के लिए ही अलंकार की उपेक्षा की गई है। यदि ध्वनि के प्रति आदर एवं अलंकारो के प्रति द्वेष भाव को त्याग कर शुद्ध हृदय से विचार किया जाय तो यह तथ्य स्पष्ट होता है कि अलंकार उपेक्षणीय नही है। ध्वनिवादियों ने भी अलंकारो को काव्य में चारूत्व हेतु माना है।[3]

यदि ध्वनि प्रस्थान में अलंकार उपेक्षणीय होते है तो फिर ध्वनिकार के प्रबल समर्थक तीन ध्वनिवादी महारथियों—मम्मट, विश्वनाथ एवं पण्ड़ितराज जगन्नाथ के द्वारा भी अपने अपने काव्यशास्त्र ग्रन्थों में अलंकारो का निरूपण क्यों किया जाता है। इसी प्रकार अलंकार ध्वनि में अलंकार के लिये भी ब्राह्मण भ्रमण न्यायेन ही सही अलंकार नाम अलंकार की प्रतिष्ठा का ही द्योतक है। ध्वनिवाद अलंकार को रस के उपकारक के रूप में स्वीकार है।[4] अर्थात रसादि सहृदय संवेद्य जिस अर्थ की अभिव्यक्ति करते है उसी अभिव्यक्ति को यदि रसानुकूल अलंकार और भी विषाद करते है तो ऐसी स्थिति में ध्वनि वादी के द्वारा भी मान्य है। इस प्रकार ध्वनिवादी अलंकारो को रस परक मानतें है।[5] अलंकारो की रसपरता का सुस्पष्ट विवेचना करते हुए डा0 सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी लिखतें हैं यदि अलंकारो की रसपरता न मानी जाय तो "चन्द्र धवलः पटः" यहाँ पर भी उपमालंकार की जैसी ही चमत्कार कारी प्रतीति होनी चाहिए जैसे की अन्य सुन्दर काव्यों में होती है किन्तु इस प्रकार के लौकिक वाक्यो रसभावादि व्यंग्य अभाव के कारण ही उपमालंकार नही माना जाता अपततः चमत्कार भले ही मान लिया जाय।

---

1. अलंकाराहि वाच्यसौन्दर्यसाराः (रसगंगाधर पृ0 137)
2. अनम्ताहि वाग्विकल्पास्तेत्प्रकारा एव चालंकारा ।। ध्वन्यालोक पृ0 473।।
3. अलंकारो हि चारूत्वहेतुः प्रसिद्ध (ध्वन्यालोक पृ0 197)
4. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽगद्वारेण जातुचित काव्यप्रकाश "सूत्र 88"
5. यत्र तु नास्ति रसस्तत्रोक्ति वैचित्र्यमात्रपर्यवसायिनः।। वही सूत्र 88 की वृत्ति)

उपमालंकार से यद्यपि पहले वाच्यार्थ ही चमत्कृष्ट हुआ; किन्तु वही सादृश्य प्रतीति के कारण चमत्कृत हुआ वाच्यार्थ पार्यन्तिक रसभावादि का अभिव्यन्जक बनकर ही चमत्कार का हेतु बनता है।[1]

इस विवेचना से यह बात पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है कि ध्वनिवादी भी अलंकार के महत्व को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार करते है।

हाँ ध्वनि वदियो के अलंकार निरूपण से यह बात अवश्य समझ मे आ जाती है कि अलंकारों के बिना भी काव्य का अस्तित्व सम्भव है। जबकि ध्वनि की प्रतिष्ठा के पूर्व यह उपर्युक्त तथ्य कथमपि स्वीकार नही था। अस्तु ध्वनि की प्रतिष्ठा के पश्चात् अलंकारों के महत्व में कमी आयी है। परन्तु कवियों के लिये तो अलंकारों की उपादेयता

जैसे आनन्दवर्धन के पूर्व भी वैसे ही उनके बाद भी। एक सादृश्य कवि जिस तरह रसाभि निवेश में तत्पर होता है उसी तरह अलंकारो के विच्छित्यिो के विनाश में भी। औचित्य वाद के उद्भावक आचार्य क्षेमेंन्द्र के अनुसार भी अलंकारो का औचित्य से पृथक औचित्य नही है। आचार्य क्षेमेंद्र की दृष्टि में रस सि़द्ध काव्य का स्थिर एवं अविनश्वर प्रणतत्व औचित्य है।[2] औचित्य के अभाव में गुण एवं अलंकार से समवेत होने पर भी काव्य निर्जीव है।[3] ग्रन्थकार के मत मे अलंकार तो अलंकार ही है।[4] अर्थात् जैसे कटक केयूर हारादि बाहु शोभा के होने के हेतु होने के कारण अलंकार है, उसी प्रकार परस्पर उपकार करने से रूचिर शब्दार्थ रूप काव्य के वाह्य शोभा के हेतु उपमा आदि अलंकार है।[5] अलंकार को अलंकार की संज्ञा तभी प्राप्त होती है जब उनका सन्निवेश उचित स्थान पर हो औचित्य के बिना न तो अलंकार शोभा वर्धक होते है और न तो गुण।

उत्तर कालीन महाकाव्यों में हमीर महाकाव्य उस तरह के काव्यों का प्रतिनिधित्व करता है; जिसमे कला पक्ष को सवांरने में कवि ने भाव पक्ष की अवहेलना नही की है।

---

1. ध्वनि सि़द्धान्तः विरोधीसम्प्रेदायः। उनकी मान्यताये – डा0 सुरेशचन्द्र पाण्डेय पृष्ठ दृ261।।
2. औचित्यं रसासिद्धस्य स्थिरंकाव्यस्य जीवितम्। ।। औचित्य विचारचर्चा।। 5
3. तेन विनास्य गुणलंकार युक्तस्यापि निर्जीत्वात।।। औचित्य विचारचर्चा/5वींकारिका की वृत्ति।
4. अलंकारास्वत्वलंकाराः।। औचित्य वि0च0 / 5।।
5. परस्परोपकार रूचिर शब्दार्थरूपस्य काव्यस्य उपमोत्प्रेक्षादियो ये प्रचुरालंकाराः ते कटक कुण्डलकेयूरा हारादिवदलंकारा एवं ताह्यशोभा हेतुत्वात।।

   औचित्य वि0च0 / 5वी0 कारिका की वृत्ति।।

भावपक्ष प्रधान होता हैं, "अलंकारस्त्वलंकाराः" सिद्धान्त को स्वीकार करने वाले आचार्य द्वारा प्रणीत इस काव्य में भावाभिव्यक्ति के प्रति जितना ध्यान रखा गया है, उतना नये–नये अलंकारों के विन्यास मे नहीं। यही कारण है कि सूक्ष्मदृष्टि से विचार करने पर भी अलंकारों की वैसी विच्छिन्ति देखने को नही मिलता है जैसा कि छठी शताब्दी के बाद लिखी गयी विचित्र मार्ग के अभ्यसित कवियों की काव्य कृतियों मे देखने को मिलती है।

ग्रन्थ के अध्ययन से प्रतीत होता है कि कवि को अलंकारों की योजना के लिये पृथक प्रयास यत्र–तत्र करना पड़ा है सर्वत्र नही। काव्य रचना के समय प्रतिपाद्य अर्थ के अनुरूप जो अलंकार मस्तिष्क में उद्भासित हुए है उन्ही को स्थान मिल सका है। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि, कवि के कल्पनाशील मन को उत्प्रेक्षा अलंकार बहुत प्रिय है, क्योंकि उन्होंने उत्प्रेक्षा अलंकार को काव्य में सर्वाधिक स्थान दिया है। अनुप्रास अलंकार उन्हे रुचिकर लगता था क्योंकि कहीं–कहीं अनुप्रास के लोभ में आकर शाब्दिक चमत्कार दिखाने मे व्यस्त हो जाते है जिससे अपने आदर्श व कथानक से दूर चले जाते हैं।

यद्यपि हम्मीर महाकाव्य में अत्यधिक अलंकारों का प्रयोग नही किया गया फिर भी पर्याप्त अलंकारों के उदाहरण प्राप्त होते है। इससे स्पष्ट होता है कि कविवर श्री नयचन्द्र ने अलंकारों को भी पर्याप्त अवसर प्रदान किया है। हम्मीर महाकाव्य के सर्गो में किसी एक विशेष अलंकार का प्रयोग नही है। इसके एक ही सर्ग में भिन्न–भिन्न अलंकारों का निदर्शन होता है। यथावसर (आवश्यकतानुसार) कवि ने अलंकारों का प्रयोग किया है। हम्मीर महाकाव्य से अलंकारो के सन्दर्भ मे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है। सुविज्ञ पुरुष एक, दो पत्तों से भी वृक्ष की पहचान कर सकते है।

महाकाव्य में शब्दालंकारों की योजनाः–

अनुप्रासः–वर्णो की समानता अनुप्रास है।1 स्वरों का भेद होने पर भी व्यञ्जनों की समानता वर्णो की समानता है। रसादि के अनुकूल प्रकृष्ट सन्निवेश अनुप्रास है।

---

1. **वर्णसाम्यमनुप्रासः।**
   स्वर वैसादृश्येऽपि व्यञ्जन सदृशत्वंवर्णसाम्यम। रसाद्यनुगतः
   प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः।। काव्य प्रकाशसूत्र 103 ।।

यथा– चम्पाया इव चम्पेशस्त्रि पुर स्त्रिपुरादिव।[1]

प्रकम्पयन् धरां धीरो निर्ययौ नगराद बहिः।।

इस श्लोक में धैर्यवान राजा नगर से निकलते हुए उसी प्रकार प्रतीत होता है, जिसप्रकार चम्पा के राजा चम्पा नगरी से तथा त्रिपुर राक्षस त्रिपुर (तीनो के नगरों) से बाहर निकलता था। यहाँ पर राजा हम्मीर को चम्पा के राजा तथा त्रिपुर राक्षस के समान व्यक्त किया गया है। अतः प्रथम चम्पाया चम्पेश तथा त्रिपुर– त्रिपुर में अनुप्रास अलंकार है। इन्ही पद की आवृत्ति हुई है और वर्ण समानता भी है।

छेकानुप्रास– अनेक वर्णो का एक बार आवृत्ति रुप साम्य छेकानुप्रास हैं।[2]

छेकाअनुप्रास का उदाहरण निम्नाकित श्लोक में दृष्टव्य है–

केचिद् गजानां केचिच्च पत्तीनां केऽपि वाजिनाम्।

रथानां केचनावोचन् सैन्ये तस्य प्रभूतताम्।।[3]

कोई व्यक्ति राजा के हाँथियों की प्रचुरता बताते थे तो कोई पैदल सैनिकों की, कोई घोड़ो की, तो कोई उसके रथों की अधिकता, बताते थे। यहाँ पर केचिद्–केचिद् मे छेकानुप्रास घटित होता है।

छेकानुप्रास के भेद

छेकगत और वृत्तिगत (इस प्रकार वह अनुप्रास) दो प्रकार का है।[4]

वृत्युनुप्रास–

एक वर्ण का भी और अनेक वर्ण का भी अनेक बार आवृत्ति साम्य होने पर वृत्युनुप्रास होता है।[5]

यथाः– अङ्गानि कानि सिक्तानि कानि सेच्यानि वाभुवः।[6]

इति विद्युत्प्रकाशेन ददर्शेव घनाघनः।।

---

1. हम्मीर म0 9/6
2. सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः।। काव्य प्रकाश सूत्र 105।।
3. हम्मीर महा0 9/14
4. छेकवृत्तिगतो द्विधा। का0 प्र0 सूत्र 104
5. एकस्याप्यसकृत्परः ।। काव्य प्रकाश सूत्र 106
6. हम्मीर महा0 13/62

पृथ्वी के कौन से अंग सिंचित हो गये है, अथवा अब सीचने योग्य हैं– मानो इन्द्र विद्युत के प्रकाश के माध्यम से देख रहा था।[6]

उपर्युक्त श्लोक के प्रथम पद मे वृत्युनुप्रास है।

अन्त्यानुप्रासः– अन्त्यानुप्रास वह है जिसे प्रथम स्वर के साथ यथावस्थ व्यञ्जना की ऐसी आवृत्ति मे देखा जाया करता है जो कि पद अथवा पाद के अन्त मे पड़ा करती है।[1]

यथा – दीपः पर्यायशेषः स्फुरदरूणमणी दीप्तिराकारशेषः[2]

सूरोऽप्याख्यानशेषः प्रलयशिखिशिखाश्रेणिराभासशेषः।

यस्य प्रौढ़प्रतापे प्रसरति नितमां क्षोणिपीठे क्षितीन्दोः

सः श्री हम्मीरवीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैवा।।

प्रथम पद के प्रथम पाद एवं द्वितीय तथा द्वितीय पद के प्रथम एवं द्वितीय पाद में शेषः शब्द आया है जिसमें अन्त्यानुप्रास घटित होता है।

यमकः--

सार्थक होने पर भिन्नार्थक वर्णो की उसी क्रम से पुनः श्रवण या (पुनरावृत्ति) यमक नामक शब्दालंकार कहलाता है।[1]

यथा

नाम्नि धाम्नि च संक्षेपं विधित्सन् यो विरोधिनाम् ।[2]

अवनीपालतां हित्वा द्राग् वनीपालतां ददौ।।

इस श्लोक में अवनीपालतां पद का वनीपालतां अंश निरर्थक दूसरा पद सार्थक है अर्थात् एक पद सार्थक है दूसरा निरर्थक है। एक पद की दो बार आवृत्ति होने के कारण यमक अलंकार है।

यमक अलंकार का दूसरा उदाहरण निम्नकित श्लोक में दृष्टव्य है।

स्तम्बेरमाणां मदवारिभिन्नकुम्भस्थलीसंचरणप्रमत्ताः।[3]

झङ्कारवैर्यत्र सदाद्विरेफा बसन्तमाहुः स्म बसन्तमेव।।

---

1. व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहद्येन स्वरेण तु।

आवर्त्यतेडन्त्यमोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एवतत्।। (साहित्य दर्पण 10/6)

2. हम्मीर महाकाव्य 10/17

3. अर्थेसत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुति (काव्य प्रकाश सूत्र 116)

4. हम्मीर महा0 4/36 5. वही 11/46

इस श्लोक मे बसन्त पद की दो बार आवृत्ति हुई है, और दोनों के अर्थ भिन्न है। अतः यहाँ यमक अलंकार हैं।

श्लेषः–

अर्थ–भेद के कारण भिन्न–भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए श्लिष्ट प्रतीत होते है, वह श्लेष अलंकार है।[1]

जहाँ एक ही वाक्य मे अनेक अर्थ हो वह श्लेष होता है।[2]

यथाः– श्लेष अलंकार का सुन्दर उदाहरण प्रथम सर्गसे–

लसत्कविस्तोमकृतोरुभक्तिर्नालीकसंपत्सु भंगभविष्णु।[3]

स्वदर्शनेन त्रिजगत्पुनाना सरस्वती नो नयतात प्रसत्तिम्।।

प्रस्तुत प्रसंग मे "सरस्वती" शब्द द्वितीय पद मे एक ही बार आया हैं किन्तु इसके अनेक अर्थ हैं–सरस्वती (नदी) और दूसरा अर्थ (सरस्वती) जो तीनो लोको को पवित्र करती हैं। "तीनो लोको को पवित्र करते वाली महाकवियों द्वारा स्तुत्य, सत्यसम्पदा से युक्त शुभ्रप्रदा सरस्वती नाम्नी सरिता हमारी बुद्धि को निर्मल करे।[3] यहाँ पर 'सरस्वती' शब्द के दो अर्थ व्यक्त हो रहे है, अतः यहाँ श्लेष अलंकार घटित होता हैं।

श्लेष का दूसरा उदाहरण निम्नांकित श्लोक में दृष्टव्य है–

अशात्रवं विश्वमिदं विधातुं क्रुद्धे परिभ्राम्यति यत्रभूपे।[4]

राज्यश्रियं पातुमरातयः स्वकोशाद्वसून्याचकृषुर्न खड्गान्।।

इस राजा (" श्री नरदेव") के क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर घूमने पर शत्रुगण अपने कोशो से खड्ग नही निकालते थे बल्कि कोशो (खजानो) से, रत्न निकालकर राजा को कर चुकाते थे।[4] यहाँ "कोश" शब्द के दो अर्थ लिये गये हैं –

प्रथम–कोश का अर्थ (म्यान) खड्ग रखने का कोश अर्थात् नृप श्री नरदेव के क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर घूमने पर शत्रुगण अपने (कोशों) से खड्ग नही निकालते थे।

द्वितीय– राजा श्री नरदेव के क्रुद्ध होकर पृथ्वी पर घूमने पर शत्रुगण अपने कोशों (खजाने) से रत्न निकालकर कर चुकाते थे। अतः यहाँ 'कोश' शब्द के दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार हैं।

---

1. वाच्यभेदेन भिन्ना यद युगपदभाषणस्पृशः।
   शिलष्यन्ति शब्दः श्लेषः । (काव्य प्रकाश सूत्र।। 9)
2. श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन यत्रानेकार्थता भवेत ।।
3. हम्मीर महा0 1/07 (वही सूत्र 146) 4. वही 1/33

अर्थालंकार

महाकाव्य में अर्थालंकारों की योजना

उपमालंकार –

आचार्यो ने उपमा अलंकार की बड़ी प्रशंसा की है। यह सादृश्यमूलक अलंकारों की प्राणभूत है। राजशेखर ने उपमा को कवि वंश की माता के रूप में स्वीकार किया है।[1] अप्पय दीक्षित ने उपमा की समानता उस नदी से की है जो अकेली ही विभिन्न भूमि रूपी वस्त्राभूषणों को धारण करके नृत्य करती हुई दर्शकों का मनोरञ्जन करती है।[2]

साहित्यदर्पणकार ने एक ही वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित वाच्य सादृश्य को उपमा कहा है।[3] मम्मट के अनुसार उपमेय और उपमान का पार्थक्य होने पर भी साधर्म्य वर्णन उपमा का विषय होता है।[4]

हम्मीर महाकाव्य में उपमा का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया गया है। नयचन्द्रसूरि ने उपमानों के चयन में नया दृष्टिकोण अपनाया है। इनके उपमान सामान्य स्तर के हैं। इन्होने प्राकृतिक उपमानों का भी आश्रय लिया है। इनकी उपमाओ मे वह सौन्दर्य नहीं मिलता जैसे कवि कुलगुरु कालिदास की उपमाओ में देखने को मिलता है। इन्होंने उपमा अलंकार को प्रिय अंलकार मानकर उनका बड़ी सहजता से प्रयोग किया है। नयचन्द्रसूरि ने उपमा के विभिन्न भेदों का कुशलता पूर्वक सफल प्रयोग किया है।

1. उपमान 2. उपमेय 3. साधरण धर्म और 4. उपमावाचक इव आदि इन चारों का ग्रहण होने पर पूर्णोपमा तथा इन चारो में से एक या दो या तीन का लोप होने पर लुप्तोपमा होती है।

---

1. **अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।**
   उपमा कवि – वंशस्य मातैवेति मतिर्मम्।।
2. **उपमैषा शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिका –भेदान्।**
   रञ्जयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।। (चित्रमीमांसा)
3. **साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।। (साहित्यदर्पण 10/14)**
4. **साधर्म्यमुपमा भेदे।। (काव्य प्रकाश सू0 124)**

आलोच्य ग्रन्थ मे उपमा के तथा उनके कतिपय भेंदो के उदाहरण नयचन्द्र द्वारा प्रस्तुत किये गये है। पहले उपमा का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

यथा– पत्या भुवौ वैषयिकं विनोदं सा निर्विशङ्कं किल निर्विशन्ती।[1]

अमानधामानमसूत सुनुं हरेरिवाशा तुहिनांशुबिम्बम्।।

पति के साथ पृथ्वी पर विषय–विलास का आनन्द लेती हुई कर्पूर देवी ने जैसे पूर्व दिशा चन्द्रमा के विम्ब को उत्पन्न करती है, वैसे ही अमित तेजस्वी पुत्र को प्रसव किया।[1] प्रस्तुत श्लोक में रानी का पुत्र उपमान तथा चन्द्रमा उपमेय है। यहाँ उपमान तथा उपमेय का भेद है किन्तु चन्द्र के गुण धर्म की समानता पुत्र की कान्ति से की गयी। अतः यहां उपमा अलंकार है। कवि नयचन्द्र ने आलोच्य ग्रन्थ में पूर्णोपमा को भी समाहित किया है। निम्न श्लोक में पूर्णोपमा अलंकार को निदर्शित किया गया है –

पूर्णोपमा– उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, उपमावाचक इव आदि इन चारों का ग्रहण होने पर पूर्णोपमा होती है।

यथा – पित्रा प्रदत्तं समवाप्य काले राज्यं स भूभृन्नितरां चकासे।[2]

अहर्मुखेऽहर्पतिनोदयाद्रिर्यथा तमोव्रातविनाशिरोचिः।।

पिता द्वारा दिये हुए राज्य को समय पर पाकर वह राजा वैसे ही शोभित हुआ जैसे कि प्रातः काल अन्धकार के नष्ट हो जाने पर शुभ्रकान्तिवाला उदयाचल सूर्य के द्वारा शोभा पाता है।[2]

इस पद्य में उदयाद्रिः यथा तमो व्रातविनाशिरोचि। इस पद में उपमान उदयाद्रिः से उपमेय भूभृत् की उपमा प्रस्तुत की गई है साधारण धर्म का वाचक यथा शब्द है। यथा शब्द उपान्त है, यहाँ पर साधर्म्य चकासे है। इस प्रकार उपमान उपमेय एवं साधारण धर्म के वाचक होने के कारण पूर्णोपमा का उदाहरण है। नृप की शोभा के लिये उदयाचल की शोभा को उपमान बनाना कवि को उपमान चयन के प्रति प्राकृतिक उपमान का आश्रय लेना उनकी जागरूकता का द्योतक है। पूर्णोपमा का एक अन्य सुन्दर उदाहरण तीसरे सर्ग के पृथ्वीराज संग्राम वर्णन में द्रष्टव्य है।

---

1. हम्मीर महा0 2/74
2. वही 2/78

यथा– मणीवकानीव महीरुहाणां क्षिपन् यशांसि द्रुतविद्रुतानाम्।[1]

ववौ मरुत्वान् भटराजराजिकराम्बुजत्यक्तपृषत्कजन्मा।।

वीर योद्धाओ के कर कमलों से छूटे हुए बाणो से उत्पन्न हवा ने वृक्षो के पुष्पों की तरह पलायन करने वाले योद्धाओ के यश को समाप्त करते हुए चलना शुरू कर दिया।[1]

यहाँ मणीवक उपमान तथा यशांसि को उपमेय माना है। अर्थात् साधारण धर्म का वाचक "इव" शब्द है, "इव" उपान्त है। यहाँ पर साधर्म्य फेका जाना है। इस प्रकार यहाँ उपमान, उपमेय एवं साधारण धर्म के वाचक होने के कारण पूर्णोपमा का उदाहरण है।

प्रतिवस्तूपमा–

प्रतिवस्तूपमा (अलंकार) वह है; जहाँ (उपमान तथा उपमेय रूप) दो वाक्यों में एक ही साधरण धर्म का भिन्न भिन्न प्रकार से कथन किया जाता है।[2]

प्रतिवस्तूपमा अलंकार का उदाहरण तृतीय अध्याय के पृथ्वीराज संग्राम वर्णन में द्रष्टव्य है–

स्यात् पेषयन्त्रान्तरसंस्थितानां यादृश्यवस्था हरिमन्थकानाम्।[3]

तादृश्यभूद् भूपतिचाहमानरणाश्रयाणां यवनेश्वराणाम्।।

चक्की में चनों की पिसते समय जैसी अवस्था होती है "चाहमान" राजा से युद्ध करने वाले यवन राजाओं की वैसी ही हालत हो गई।[3] यहाँ चनों की एवं यवन योद्धाओं (राजाओं) दोनों की स्थिति (साधारण धर्म) एक जैसी है। अतः यहाँ पर प्रतिवस्तूपमा अलंकार है।

गूढ़ोपमा– गूढ़ोपमा को भी कवि नयचन्द्र ने अच्छे ढंग से समाहित किया है। निम्नांकित श्लोक में गूढोपमा को देखा जा सकता है –

---

1. हम्मीर महा0 3/27 3. वही 3/38

2. प्रतिवस्तूपमा तु सा

सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्य द्वये स्थितः। काव्यप्रकाश सूत 154

श्री चन्द्रराजेन नयैकधाम्ना ततो धरित्री बिभराम्बभूवे।[1]

वक्त्रेण कीर्त्या च निशाकरं द्विर्जयन् स्वनामाऽतत यो यथार्थम्।।

इसके पश्चात् राजनीति के सिरमौर "श्री चन्द्रराज" नामक राजा से पृथ्वी शोभित हुई, जिसने अपने मुख की छवि से तथा यश से दोनो प्रकार से चन्द्रमा को जीतकर, अपनी प्रसिद्धि का विस्तार किया अर्थात् अपने नाम को यथार्थ किया।[1] यहाँ पर नृप चन्द्रराज द्वारा अपने मुख की छवि एवं यश से चन्द्रमा को जीतने में गूढ़ोपमा अलंकार है।

अभूतोपमा–

अभूतोपमोलंकार को चतुर्थअध्याय के हम्मीर जन्म वर्णन के मृगया गमन वर्णन मे दिखाया गया है।

यथा– स्तब्धोर्ध्वकर्णाः सुस्निग्धवर्णाः स्वर्णाग्रकण्ठिकाः।[2]

चाक्षुषा मातरिश्वान इव श्वानश्चकासिरे।।

ऊँचे–ऊँचे कानों वाले, सुन्दर वर्ण वाले, गले में सोने की कण्ठियो वाले, हवा की भाँति कुत्ते भी आगे–आगे चलते है।[2] यहाँ मातरिश्वान इव श्वान में अभूतोपमा अलंकार है।

व्यक्तोपमा–

व्यक्तोपमा अलंकार को पञ्चम अध्याय के "वसन्त वर्णन" में समाहित किया है। निम्नांकित श्लोक मे व्यक्तोपमा अलंकार द्रष्टव्य है –

निजकालिमोल्लसितसञ्जनिताऽसमयक्षपालिषु वनीततिषु।[3]

अलभन्त चम्पकतरोः कलिकाः स्मरराजदीपकलिकोपमितिम्।। 25।।

वन के समूहों की कालिमा से ऐसा मालूम होता था मानो असमय में ही वहाँ रात का आगमन हो गया अतः चम्पक वृक्ष की कलियाँ कामदेव के दीपक की उपमा प्राप्त कर रही थी।

वनश्रेणी पत्रोद्गमात् कालिम्नः आरोपः उपचर्यते। व्यक्तोपमालंकारः वनसमूह के पत्तों से कालिमा (रात्रि) का आरोप करने में व्यक्तोपमा अलंकार है।

---

1. हम्मीर महा0 1/37 2. वही 4/50
3. वही 5/25

उत्प्रेक्षा –

उत्प्रेक्षा वह अलंकार है जिसे अप्रकृत के रूप में प्रकृत की सम्भावना कहा करते है। इसके प्रथमतः दो प्रकार है –

1. वाच्योत्प्रेक्षा और 2. प्रतीयमानोत्प्रेक्षा।

इनमें पहली अर्थात् वाच्योत्प्रेक्षा वह है जिसमें 'इव' आदि उत्प्रेक्षा वाचक पदों का प्रयोग हुआ करता है; और दूसरी अर्थात् प्रतीयमानोत्प्रेक्षा वह है, जिसमें 'इव' आदि उत्प्रेक्षावाचक पदों का प्रयोग नहीं हुआ करता। इन दोनों प्रकार की उत्प्रेक्षाओं में जो उत्प्रेक्ष्य वस्तु है वह चतुर्विध है –

1. जाति 2. गुण 3. क्रिया 4. द्रव्य।

इस प्रकार से उत्प्रेक्षायें आठ प्रकार की हुई। ये अष्टविध उत्प्रेक्षायें भी उत्प्रेक्षा में भावाभिमान और अभावाभिमान के द्वैविध्य से सोलह प्रकार की हुई; और इन षोडशविध उत्प्रेक्षाओं में उत्प्रेक्षण के निमित्त गुण रूप एवं क्रिया रूप होते हैं। अतः उत्प्रेक्षा 32 प्रकार के होते है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है–

यथा – तं चन्द्रराजोऽथ जगाद चन्द्रश्रीगर्वसर्वङ्कषदन्तदीप्त्या।[1]

हृद्युल्लसद्वाङ्मयदुग्धसिन्धोर्विस्तारयंस्तारतरानिवोर्मीन्।।

तब 'चन्द्रराज' ने चन्द्रमा की शोभा को परास्त करने वाली दन्तपंक्ति की दीप्ति से मानों वाणी रूपी दुग्ध समुद्र की लहरों का विस्तार करते हुए कहा।[1]

यहाँ कवि ने चन्द्रमा की शोभा को पराजित करने वाली दन्त पंक्ति की दीप्ति को समुद्र की लहरों के विस्तार में उत्प्रेक्षा की है।

---

1. उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे। (काव्य प्रकाश सूत्र 135)
2. भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
   वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता।।
   वाच्येवादिप्रयोगे स्यादप्रयोगे परा पुनः।
   जातिर्गुणः क्रिया द्रव्यं यदुत्प्रेक्ष्यं द्वयोरपि।।
   तदष्टधापि प्रत्येकं भावाभावाभिमानतः।
   गुण क्रिया स्वरूपत्वान्निमित्तस्य पुनश्च ताः।। द्वात्रिंशद्विधतां यान्ति –
3. हम्मीर महा0 3/6,

कविवर नयचन्द्र ने उत्प्रेक्षा का सुन्दर समन्वय किस भाँति निम्नांकित श्लोक में किया है –

मिथःसमानाक्षिनिरीक्षणेन प्ररूढ़गूढ़प्रतिघा इवोच्चैः।[1]

घटैकदेशीयभटा घटाश्चैभानामयुध्यन्त हठात्तदानीम्।।

मुद्गल देश के योद्धा तथा हाथियों के समूह दोनों ही समान आँखे होने के कारण क्रोध करते हुए मालुम होते थे और हठ पूर्वक युद्ध कर रहे थे।[1]

आपस में समान नेत्र निरीक्षण से उत्पन्न गूढ़ कोप की तरह मुद्गलों तथा हाँथियों के नेत्रों में समानता में उत्प्रेक्षा है।

सन्देह – सन्देह वह अलंकार है जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय का उपमान के साथ संशयात्मक ज्ञान होता है।[2]

यः सङ्गरे सङ्गररङ्गवेदी क्षात्रं क्षणाद् वेश्म नयन् यमस्य।[3]

किं भार्गवोऽयं पुनरेव जात इत्याकुलैर्वीरकुलैर्व्यतर्कि।।

उसने युद्ध में क्षण भर में समस्त क्षत्रिय समूह को यम सदन में भेज दिया है। वीर क्षत्रिय सोचते है कि कही यह परशुराम तो पुनः अवतीर्ण नहीं हो गये है।[3]

यहाँ यः (नृप) उपमेय हैं तथा उपमान (भार्गवः) परशुराम का संशय हो रहा है। अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

एक और भी सन्देह का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

यथा – मम नाम नालिकशरा यदि मास्तः सहेत कतरे स्पृशतीः।[4]

किमितीह नाद्रियत जातिलता कलिकां मधौ मधुसखः स्फुटतीः।।

यदि ये मालती लताएं मेरे बाणस्वरूप है तो इन्हे स्पर्श होने पर कौन सह सकता है कोई नहीं। क्या इसलिए यह कामदेव बसन्त ऋतु में इसका आदर नहीं करता।[4]

---

1. ह0 म0 3/28
2. ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशयः। (काव्य प्रकाश सू: 138)
   यत्रातितथाभूते संभाव्येते क्रियाद्य संभाव्यम्।
   संभूवमतद्वति वा विज्ञेया सेयमुत्प्रेक्षा।। (काव्यालंकार 11)
3. हम्मीर महा0 3/10   4. वही 5/17

रूपक –

जो उपमान तथा उपमेय का अभेदारोप है वह रूपक अलंकार कहलाता है।[1]

आलोच्य ग्रन्थ में कवि ने रूपक अलंकार के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये है।

यथा– पौरेणपोताभदृशः प्रयान्तं प्रचिक्षिपुस्तं प्रति यान् कटाक्षान्।[2]

माङ्गल्यहेतोः स्म भवन्ति तस्य त एव दूर्वाक्षतकान्तिभाजः।।

पुरस्त्रियों ने उस प्रयाण करते हुये राजा पर जो कटाक्ष फेंके (सुन्दर नेत्रों से देखा) वे ही मानो दूब अक्षत की शोभा वाली मङ्गलकारी वस्तुएं हो गई। यहाँ "कटाक्षान" शब्द में रूपक अलंकार है क्योकि कटाक्ष और दूर्वाक्षत (मङ्गलकारी) वस्तुओं की अनभूति होती है। पुरवासियों को अन्य रूप में प्रतीति नही होती अतः यहाँ भिन्न–भिन्न प्रकट होने वाले कटाक्ष एवं दूर्वाक्षत उपमान तथा उपमेय में अभेद का आरोप होने के कारण रूपक अलंकार है।

रूपक का एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत है–

यथा– यान्–यान् व्यत्यगमन् नृपान् कृतनतीस्ते ते प्रकाशं ययु–[3]

र्यान् यान् प्रत्यचलञ्च भेजुरभितस्ते ते क्षणान्म्लानताम्।

यस्य क्षोणिपतेः प्रतापवसतेर्दिग्जैत्रयात्रोत्सवे

सेना कापि न वा व्यराजततमां संचारिणी दीपिकां।।

जो जो राजा नत मस्तक होकर सम्मुख आये वे उसके शासन से प्रकाशित हो गये तथा जिन्होंने सामना करने की हिम्मत की वे अस्त हो गये क्योंकि उसकी (हरिराज की) सेना संचरण करती हुई दीपक की लौ के समान थी और दिग्विजय के समय जिन राजाओं के अनुकूल रही वे प्रकाशित हुए व जिनके प्रतिकूल हुई वे अन्धकार में डूब जाते थे। यहाँ "संचारिणी दीपिका " में रूपक अलंकार है क्योकि सेना और दीपक में कोई भेद नही व्यक्त होता। नृप की सेना अपने प्रति अनुकूल राजाओं को दीपक की लव के समान प्रकाशित करती थी। यहाँ सेना में दीपक की अनुभूति होती है।

---

1. तद्रूपकभेदो य उपमानोपमेययोः। (काव्य प्रकाशसूत्र 139)
2. रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे । (साहि० 10/27)
3. हम्मीर महा० 3/17 4. वही 3/79

और अन्य रूप में प्रतीत नहीं होती अतः यहाँ भिन्न–भिन्न प्रकट होने वाले सेना तथा दीपक उपमान तथा उपमेय में अभेद का आरोप होने के कारण रूप अलंकार है। कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में इसी तरह का वर्णन किया है –

संचारिणी दीपशिखेवरात्रौ यं यं प्रतीयाय पतिवरां सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।

अतिशयोक्ति – अतिशंयोक्ति अलंकार अध्यवसायमूलक अभेद प्रधान अलंकार है। उपमान के द्वारा जहाँ उपमेय का अन्तर्भाव करके अध्यवसान अर्थात अभेद रूपेण कथन है वह अतिशयोक्ति अलंकार है। आचार्य मम्मट अतिशयोक्ति के चार रूपों को प्रकट करते है। (1) उपमान के द्वारा उपमेंय का निगरण करके अभेद रूपेण कथन (2) प्रस्तुत अर्थ का अन्य रूप से यदि शब्द या वर्णन। (3) यदि के समानार्थक चेत् शब्द के प्रयोग से असंभव अर्थ की कल्पना। (4) कार्य कारण के पौर्वापर्य का विपर्यय।[1]

इस अलंकार के साथ कवि ने हम्मीर पूर्वज वर्णन में "दीक्षित वासुदेव" नामक नृप के पराक्रम को बड़े सुन्दर ढ़ंग से व्यक्त किया है।

यथाः– सपत्नसंघातशिरोऽधिसन्धिच्छेदादसिं कुण्ठतरं निजे यः।[2]

प्रतापवह्नावभिताप्य काममपाययत्तद्रमणीदृगम्बु।।

जिसने शत्रु समूह के मस्तको को काटने के कारण अधिक कुण्ठित हुई अपनी तलवार को अपने प्रताप की आग में तपाने के पश्चात् उनकी रमणियों की आँखों के आँसुओं का पानी पिलाकर बुझाया।[2]

शत्रु समूह के शिरों को काटने से तलवार अधिक कुण्ठित हो गयी, फिर नृप ने उस कुण्ठित तलवार को प्रताप रूपी अग्नि में तपाया और शत्रु रमणियों के अश्रुरूप जल में बुझाया इस प्रकार यहाँ प्रस्तुत अर्थ का अन्य प्रकार से वर्णन रूपातिशयोक्ति है। इसी को विश्वनाथ सम्बन्ध में असम्बन्ध रूप अतिशयोक्ति का भेद मानते है।

---

1. **निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्**
   प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्।
   कार्य कारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः।
   विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा।
2. **हम्मीर महा0 1/28**

अतिशयोक्ति का एक और उदाहरण दृष्टव्य है –

अनेन राज्ञा सममेकभावं कथं समायातु भुजङ्गराजः।[1]

अधात् सहस्रेण स गां शिरोभिरयं पुनस्तां भुजयैकयैव।।

इस राजा से भुजंगराज शेष किस प्रकार साम्य स्थापित कर सकता था जो कि हजार फणों से धरणी को धारण करता है। यह तो एक भुजा मात्र से पृथ्वी पालन करता था।[1]

जिस पृथ्वी को शेषनाग अपने हजार फणों से धारण करता है उस पृथ्वी का नृप (सोमेश्वर) मात्र एक भुजा से पालन करता था। प्रस्तुत अर्थ का अन्य प्रकार से वर्णन में अतिशयोक्ति है। यहाँ असम्बन्ध में सम्बन्ध मूलातिशयोक्ति अलंकार है।

दृष्टान्त –

दृष्टान्त अलंकार वह है जहाँ वाक्य द्वय में इन सब साधारण धर्म आदि का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है।[2]

अथोद्भटैश्चारभटैस्तुरष्काश्चण्डासिदण्डैरभिताड्यमानाः।[3]

नेशुः समन्ताल्लगुडप्रपातैर्यथा कुलान्येकविलोचनानाम्।।

इसके पश्चात् कौओं के समूहों की भांति पृथ्वीराज के योद्धाओं की तलवारों से आघात पाये हुये तुर्क लोग वहाँ से लुप्त हो गये।[3]

यहाँ तुर्क लोग कौओं के समूह की भांति युद्धभूमि से भाग गये इन दोनों का साधर्म्य नेशुः अदर्शशं प्रापुः (लुप्त हो गये) है। अतः दृष्टान्तालंकार है।

---

1. हम्मीर महा० – 2/71
2. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषा प्रतिबिम्बनम्।।

   (काव्य प्रकाश सूत्र० 154)
3. हम्मीर महा० 3/37

इसी भांति दृष्टान्त अलंकार का एक और उदाहरण दृष्टव्य है –

नाकलोकंपृणेऽमुष्मिन्नम्लासीत् तत्परिच्छदः।[1]

अस्तङ्गते जगद्दीपे स्मेरः किं कमलाकरः ?।।

इस राजा हरिराज के स्वर्ण लोक चले जाने पर उसका परिवार म्लान हो गया। सूर्य के अस्त हो जाने पर क्या कमलों का सरोवर मुस्कराता है ? अर्थात नहीं।[1]

नृप के स्वर्ग–लोक चले जाने पर उसके परिवार का म्लान होना तथा सूर्य के अस्त होने पर कमलों का सरोवर म्लान होना इन दोनों का साधर्म्य (अम्लासीत) म्लान होना है। अतः यहाँ पर दृष्टान्त अलंकार है।

दीपक – यहाँ उपमेय तथा उपमान के क्रियादि रूप धर्मो का एक ही बार ग्रहण किया जाय अर्थात् जहाँ एक ही क्रियादि रूप धर्म का अनेक कारकों के साथ सम्बन्ध हो वहाँ क्रिया दीपक नामक दीपक का प्रथम भेद होता है। इसी प्रकार जहाँ बहुत सी क्रियाओं में एक ही कारक का ग्रहण हो वहाँ दीपक अलंकार का दूसरा भेद अर्थात् कारक दीपक अलंकार होता है।[2]

1. क्रिया दीपक का उदाहरण –

यथा – प्राग् रेणुजालानि ततः करेणुकुम्भभ्रमत्षट्पदझंकृतानि।।[3]

ततो भटानां स्फुटसिंहनादाः सैन्यद्वयस्याप्यमिलंस्तदानीम्।।

तब दोनों सेनाओं की तीन वस्तुएं एक साथ मिल गई पहली तो धूलके समूह, दूसरी हथिनियों के कपाल पर झरते मद पर मडराते भौंरों का गुञ्जन और तीसरी योद्धाओं के भयङ्कर सिंहनाद।[3]

यहाँ पर अमिलन् एक ही क्रियापद है। उसके साथ, धूल के समूह हंथिनियों के बहते हुये मद पर, भौरों का मडराना तथा योद्धाओं का सिंहनाद आदि अनेक कारकों का सम्बन्ध होने से इस श्लोक में क्रिया दीपक अलंकार है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य 4/20
2. सकृदवृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
   सैव क्रियासु वह्वीषु कारकस्येति दीपकम्।।
   (काव्य0 सू0 155)
3. हम्मीर महाकाव्य 3/25

2. क्रिया दीपक का अन्य उदाहरण –

यथा – व्याख्या धर्मार्थकामाख्याः पुरुषार्थस्त्रयोऽप्यमी।[1]

यथायोगमवाप्तात्माऽवसरास्तं सिषेविरे।।

धर्म अर्थ और काम से सम्बन्धित व्याख्याएं तथा ये तीनों पुरुषार्थ उचित अवसर आने पर राजा की सेवा करते थे।[1] यहाँ धर्म अर्थ, कामख्याः पुरुषार्थस्त्रयो आदि कर्ता इस वाक्य में आये हैं परन्तु उन सबके साथ क्रिया केवल सिषेविरे है। इस एक ही क्रियापद का प्रयोग किया है। इसलिए यहाँ क्रिया दीपक नामक अलंकार भेद है।

व्यतिरेक– उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णन ही व्यतिरेक अलंकार होता है।[2]
व्यतिरेक अलंकार का सुन्दर उदाहरण हम्मीरदेव दिग्विजय वर्णन में देखा जा सकता है–

यथा– दृग्द्वयेन पिबन्त्योऽस्यासीमं लावण्यवारिधिम्।[3]

जिग्युश्चुलुत्रयापीतससीमाब्धिं मुनिं स्त्रियः।।

इस राजा हम्मीर के सौन्दर्य रूपी समुद्र को दोनों नेत्रों से पीती हुई स्त्रियों ने तीन चुल्लुओं से समुद्र को पीने वाले मुनि को भी जीत लिया।[3] यहाँ उपमान रूप समुद्र पीने वाले मुनि से उपमेय भूत स्त्रियों का (सौन्दर्य) पान करना (देखना) अधिक है। इसलिये यहाँ व्यतिरेक अलंकार है। व्यतिरेक अलंकार का दूसरा उदाहरण जलक्रीड़ा वर्णन में द्रष्टव्य है –

यथा – अन्तराप्रतिफलद्रणपूर्वस्तम्भनामपुररम्यतरश्रि।[4]

यज्जहास विपुलाङ्कविलासिद्वारकं किल सरिद्धृदयेशम्।।

संग्राम के प्रारम्भ होने से पूर्व की सी शान्ति वाले एवं सुन्दर शोभा वाला यह सरोवर ऐसे समुद्र की भी हंसी उड़ाता था जिसकी गोद में अनेक नदियाँ बिलास कर रही हो।[4] यहाँ पर उपमान रूप समुद्र से उपमेय भूत (जैत्रसर नामक) सरोवर का सौन्दर्य अधिक है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार है।

---

1. हम्मीर महा0 9/74
2. उपमानाद यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः। (काव्य प्र0सू0 158)
3. हम्मीर महा0 9/69
4. हम्मीर म0 का0 6/03

यथासंख्य— क्रम से कहे हुए पदार्थो का उसी क्रम से समन्वय होने पर यथासंख्य अलंकार है।[1] यथासंख्य अलंकार का सुन्दर उदाहरण दिनद्वय संग्राम वर्णन में द्रष्टव्य है

पत्तिः पदातिकमियाय सादिनं सादी रथस्तिमहो महारथी।[2]

मातङ्गयानगमनो निषादिनं द्वन्द्वाहवोऽजनि तदेति दोष्मताम्।।

तब योद्वाओं का द्वन्द युद्ध होने लगा। पैदल—पैदल से, महारथी—महारथी से, हाथी पर सवार योद्धा हाथी पर बैठे योद्धा से, युद्ध करने लग गया।[2] यहाँ पर प्रथम पाद में 'पत्तिः पदाति' पैदल—पैदल सैनिको से, 'सादिनम् सादी' हाँथी पर सवार योद्धा हाँथी पर बैठे योद्धा से 'रथस्ति महारथी' महारथी—महारथी से, इन सबका क्रम से अन्वय होता है। इसलिये यह यथासंख्य का उदाहरण है। यथासंख्य का एक अन्य उदाहरण निम्नांकित श्लोक में उल्लिखित है।

गुरवो यदि वा सन्तो हितवाक्योपदेशिनः।[3]

हेयोपादेयतां तस्याऽभव्यभव्यौ चिकीर्षतः।।

यदि गुरुजन एवं सज्जन कल्याणकारी वाक्यों का उपदेश देते हैं।, तो वह अशुभ कार्य को त्याग देने की और शुभ कार्य सम्पन्न करने की सलाह देते हैं।[3]

अर्थान्तरन्यास— सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न।। अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य।। के द्वारा जो समर्थन किया जाता हैं वह अर्थान्तरन्यास अंलकार होता है।[4]

अर्थान्तरन्यास का उदाहरण तृतीय सर्ग पृथ्वीराज संग्राम वर्णन में हष्टव्य है :—

वीरेन्द्रेष्वथ दत्तदृष्टिषु धरापीठे ह्रिया स्राक् सतां [5]

सान्द्राश्रुस्रुतिसिक्तशोकलतिकाकन्देषु वृन्देषु च।

आनीयैष नृपं तमुग्रतररुट् दुर्गान्तरेऽचीचयत्

कार्यकार्यविचारणान्धबधिरा हा! हाऽधमाः सर्वतः।।

---

1. यथासंख्यं क्रमणेव क्रमिकाणा समन्वयः। (काव्य प्रकाश सू0 163)

2. हम्मीर महा0 12/33 3. ह0म0 4/97

4. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
   यत्तु सोऽर्थातरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।

5. हम्मीर महा0 3/71

तब वीरों के लाज के मारे पृथ्वी में नजर गड़ाते रहने पर एवं सज्जनों के समूहों के आँसू बहाने एवं शोक करते रहने पर इस "सहाबद्दीन" म्लेच्छराज ने पृथ्वीराज को दूसरे किले मे चुनवा दिया। हाय! हाय! नीच लोग करणीय अथवा अकरणीय कार्य के लिये अंधे व बहरे हो जाते है।[5]

यहाँ सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन किया गया है इसलिये अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

विरोध–

वास्तव में विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति कराने के लिए विरुद्ध रुप से जो वर्णन करना यह विरोध नामक अलंकार होता है।[1] विरोध अलंकार को हम्मीर पूर्वज वर्णन में देखा जा सकता हैं

यस्य प्रतापज्वलनस्य किञ्चिदपूर्वमेवाजनि वस्तुरुपम्।[2]

जज्वाल रात्रौ सरसे प्रकामं यन्नीरसेऽस्मिन् प्रशशाम सद्यः।। 38।।

जिसकी प्रतापाग्नि विचित्र ही रुप धारण करती थी। धनयुक्त शत्रुओ के मध्य तो वह प्रचुर रुप से जलकर उनसे धन वसूल करती थी किन्तु निर्धन राजाओं के प्रति शान्त रहती थी।[2] तापरुपी अग्नि सरसे (जल युक्त में) में तीव्रता से गलती थी एवं नीरसे (जल रहित) में तुरन्त शान्त हो जाती थी।[2] सरसे जलयुक्त में तीब्रता से जलती थी एवं नीर से जल रही थी में तुरन्त शान्त हो जाती थी यहाँ पर विरोध की प्रतीति होती है किन्तु सरस का अर्थ उत्साही या धनी तथा नीरस का निकत्साह का निर्धन लेने पर विरोध वस्तुतः नही है। अतः विरोध हो होने कारण विरोधाभास अलंकार है।

अनुमान – अनुमान वह अलंकार है जहाँ साध्य (सिद्ध करने योग्य अग्नि आदि) और साधन (हेतु–धूम आदि) भाव का कथन किया जाता है।[3] अनुमान अलंकार निम्नाकित श्लोक में देखा जा सकता है –

त्रस्तेन पत्याऽर्धपथे विमुक्ता स्थिताऽपि यद्वैरिवधूः स्वदेशे।[4]

शीतद्युतेस्तीव्रतया नवं स्वं द्वीपान्तरं प्राप्तममंस्त किञ्चित्।।

डरे हुये पति के द्वारा छोड़ी गयी शत्रु नारी अपने ही देश में रात्रि में चन्द्रमा की

1. विरोधः सोऽविरोधोऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः। (काव्य प्रकाश सूत्र 165)

2. हम्मीर महा0 1/38

3. अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः। (काव्य प्रकाश सूत्र 182)

4. हम्मीर महा0 2/50

शीतलता में विरह की तीव्रता होने के कारण अपने आप को दूसरे द्वीप में स्थित सी ही मानती थी।[4] यहाँ पर साध्य (शत्रु नारियो की द्वीपान्तरानुभूति) तथा साधन (चन्द्रमा की शीतलता में विरह का) वर्णन दोनों ही भावों का कथन किया गया है अतः यहाँ अनुमान अलंकार है।

विषम–

1. कही सम्बन्धियों के अत्यन्त वैधर्म्य के कारण जो उनका सम्बन्ध न बनता प्रतीत होता है वह एक प्रकार का विषमअलंकार होता है। 2. और दूसरे प्रकार का विषमालंकार वहाँ होता है, जहाँ कि कर्त्ता को अपनी क्रिया के अभीष्ट फल की प्राप्ति न हो और उल्टा अनर्थ हो जाय और, 3. कार्य के गुण तथा, 4. क्रिया से जो कारण के गुण तथा क्रिया का क्रमशः वैपरीत्य हो, वह तीसरे तथा चौथे प्रकार का विषमालंकार होता है।[1]

विषम अलंकार का उदाहरण हम्मीरराज के चरित्र वर्णन मे द्रष्टव्य है–

क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं क्वैषा पुनर्मे धिषणाऽणुरुपा।[2]

ततोऽतिमोहाद्भुजयैकयैव मुग्धस्तितीर्षामि महासमुद्रम्।। 11।।

कहाँ इन हम्मीरराज का महान चरित्र और कहाँ मेरी अणुस्वरुप लघु बुद्धि ? फिर भी वर्णन का लोभ संवरण न करने वाला मैं एक ही भुजा से महा समुद्र को (हम्मीरराज के चरित्र को) तैरकर पार करना चाहता हूँ।[2]

यहाँ पर कवि नयचन्द्र की अल्पबुद्धि है एवं हम्मीरराज का चरित्र महान है, कवि अपनी एक भुजा से महासमुद्र तैरने की इच्छा कर रहा है। यहाँ महान् चरित्र और अल्पबुद्धि सें सम्बन्ध अनुपपन्न प्रतीत हो रहा है, अतः यहाँ प्रथम प्रकार का विषय अलंकार है।

भ्रान्तिमानः– अन्य अप्राकरणिक वस्तु के समान प्राकरणिक वस्तु के देखने पर जो अन्य वस्तु (अप्राकरणिक अर्थ) का भान होता है वह भ्रान्तिमान अलंकार कहलाता है।[3]

---

1. **क्वचिद्यदतिवैर्धम्यान्निश्लेषो घटनामियात।**
   कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद्भवेत।।
   गुणक्रियाभ्यां कार्यस्व कारणस्य गुण क्रिये।
   क्रमेण च विरुद्धे यत्स एष विषमो मतः।। काव्य प्रकाश सूत्र 194
2. **हम्मीर महा0 1/11**
3. **भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने (काव्य प्रकाश सू0 199)**

भ्रान्तिमान अलंकार को वसंत वर्णन में दर्शाया है –

प्रविहाय काननसुमान्यभितो निपतद्भिरम्बुजधिया वदने।[1]

भृशमुन्मदिष्णुमधुकृन्निकरैरुदवेजि काचन सरोजमुखी।।

कोई कमलमुखी तरुणी उस समय व्याकुल हो गई जब मदमत्त भौंरो ने उसके मुख को कमल समझकर जंगल के फूलों को छोंड्कर उस पर मँडराना प्रारम्भ कर दिया।[1]

यहाँ पर तरुणी के मुख को देखकर भौरों को कमल का भ्रम हो जाता है इसलिये प्रस्तुत श्लोक में भ्रान्तिमान् अलंकार है। भ्रान्तिमान् अलंकार की एक और छटा निम्न श्लोक मे द्रष्टव्य है–

दयितस्य वृक्षमधिरूढ़वतः पदमाशु पल्लवधिया विधृतम्।[2]

न चकर्ष नैव च मुमोच परा तदवाप्तिजातपुलकप्रसरा।।

अन्य नायिका ने वृक्ष पर चढ़े हुए प्रिय के पैर को वृक्ष पल्लव के बहाने पकड़ लिया किन्तु आनन्द प्राप्त होने के कारण न खीच सकी और न छोड़ ही सकी।[2] यहाँ नायिका को प्रियतम के पैर मे वृक्ष पल्लव का भ्रम हो जाता है, इसमे भ्रान्तिमान अलंकार है।

हेतु अलंकारः–

कवि नयचन्द्र ने हेतु अलंकार को भी बडे अनूठे ढंग से समाहित किया है। निम्न श्लोक हेतु को देखा जा सकता है–

पुपुषे ध्रुवं मलयशैलभवोऽनिल एष भोगियुवतिश्वसितैः।[1]

कथमन्यथाऽस्य सहता भवति स्म वियोगिनो झगिति मूर्च्छयितुम्।।

मानो सर्पिणियों के निःश्वासों से निश्चित रुप से मलयानिल पुष्ट हो गया था अन्यथा किस प्रकार से इसमें तुरन्त ही विरही व्यक्तियों को मूर्छित करने की क्षमता आ जाती ?

उपर्पुक्त में हेतु अलंकार हैं।

---

1. हम्मीर महा0 5/52

2. वही 5/57

नवम अध्याय

रस विवेचन

रस भावादि विवेचन

हम्मीर महाकाव्य में रस –

काव्य का मूल गुण है रमणीयता; उसकी चरम सिद्धि है – सहृदय का मनः प्रसादन और उद्दिष्ट परिणाम है चेतना का परिष्कार। ये सब भावों के व्यापार है। भावतत्त्व ही सहृदय के भावों को उद्बुद्ध कर उन्हें उत्कृष्ट आनन्दमयी चेतना में परिणत करता हैं। जो कवि अपने हृदय की गाँठ को ख़ोलकर संस्काररूप में स्थित मनोवेगों और संवेदनाओं को प्रकट करने में जितनी सफलता प्राप्त करता है, भाव सम्पत्ति का विश्लेषण उतना ही सशक्त होता है। यों तो जीवन के विविध दृश्यों को सामने प्रस्तुत करने का कार्य कल्पना ही करती हैं। निराकार वस्तुओं और भावों का साकार रूप भी कल्पना से प्राप्त होता है। अतः भाव सम्पत्ति का चयन करने में कवि को तभी सफलता प्राप्त होती है, जब वह विभाव अनुभाव और संचारी भावों का यथार्थ चित्रण करता है।

रस काव्य का सर्वस्व है। रस के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा गया है – ""रस अलौकिक चमत्कारी उस आनन्द विशेष का बोधक है, जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को द्रुत, तन को तन्मय, हृदय व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जल–प्लावित शरीर को पुलकित और वचन–रचना को गद्–गद् रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य का उपादेय है और उसकी जागर्ति वाङ्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थो की प्राण प्रतिष्ठा करती है। काव्य के अध्ययन से सहृदयों के अन्तस् में रस संचार होता है। इससे विचार, वितर्क और उद्देश्य तिरोहित होकर आनन्द की उपलब्धि होती है। भारतीय विचारकों ने काव्य से प्राप्त होने वाले आनन्द का विवेचन रस–सिद्धि के रूप में किया है। रस का विवेचन मीमांसा, सांख्य, न्याय और वेदान्त दर्शन के आधार पर किया गया है, और साथ ही मनोवैज्ञानिक पक्ष की भी व्याख्या की गयी है। भरत से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक लगभग 1500 वर्षो का दीर्घकाल भारतीय साहित्य मनीषियों ने रस–विवेचन में व्यतीत किया है। यद्यपि काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में विविध सिद्धान्त भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने प्रतिपादित किये है; किन्तु काव्य के क्षेत्र में रस की प्रधानता सहृदयों को स्वीकार करनी पडती है।

विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है; और रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है श्रुति भी कहती है। श्रुति भी कहती है–""रसो वै सः""। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। रस की महान् विवेचना का प्रस्थापक प्राचीनतम् ग्रन्थ भरत का नाट्यशास्त्र है उसमें श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त नवरस कहे गये हैं। आचार्य भरत ने रस और रस निष्पत्ति के विषय में विचार व्यक्त करते हुए कहा है– रस के बिना कोई अर्थ प्रवृत्त नहीं होता। विभाव आलम्बन और उद्दीपन।

---

(1) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। साहित्यदर्पण पृ0 25

(2) श्रृंगार हास्य–करूण–रौद्र–वीर–भयानकाः

वीभत्सादभुतशान्तश्च नव नाट्ये रसाःस्मृताः साहि0 3/209

(3) नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।

तत्र विभावनुभाव व्यभिचारि संयोगाद रस निष्पत्ति (काव्य प्रकार पृ0 100)

अनुभाव और संचारी भाव के संयोग से परिपुष्ट होकर स्थायी भाव आस्वाद दशा में पहुँचकर रस कहलाता है।[3]

आलोच्य ग्रन्थ में अङ्गी रस युद्धात्मा 'वीर' है और शृंगारादि अङ्ग रस रूप में आये है।

जैसा लक्षणकारों ने निश्चित किया है कि अङ्गीरस का प्रारम्भ से अन्त तक निर्वाह करना चाहिये। इस दृष्टि से वीर रस का पूर्ण परिपाक तृतीय सर्ग तथा 8वें सर्ग से 14वें सर्ग पर्यन्त हुआ है।

साहित्य दर्पणकार ने महाकाव्य–लक्षण में कहा है कि शृंगार, वीर एवं शान्त में से कोई एक रस प्रधान होता हैं। हम्मीर महाकाव्य वीर रस प्रधान काव्य है। केवल दो तीन सर्गो का ऋतु वर्णन तथा जलक्रीड़ा वर्णन ऐतिहासिक तथ्य मात्र से क्लान्त पाठक के विश्राम के लिए हरे भरे द्वीप का काम दे सकता है। नयचन्द्र चाहते तो इन दो तीन सर्गो को दूर कर सकते थे किन्तु उस समय काव्य लेखन की परिपाटी ही कुछ ऐसी थी। मुख्य रस चाहे कोई हो शृंगार रस का पुट तो आवश्यक समझा जाता था। काव्य से शृंगार को दूर रखना उतना ही आपत्ति जनक था जितना कि भोजन से लवण को।

रसोस्तु यः कोऽपि परं स किञ्चिन्नास्पृष्टशृंगाररसो रसाय।
सत्यप्यहो पाकिमपेशलत्वे न स्वादु भोज्यं लवणेन हीनम्।।[1]

ग्रन्थकार ने रस परिपाक में निपुणता दिखायी है। इन्होने वीर, शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का समावेश किया है, जिससे यह काव्य रस–संवहनीयता की दृष्टि से भी उपयुक्त है। काव्य में अनेक रसों का होना दोष नहीं है अपितु गुण ही है परन्तु वे काव्य निबद्ध एक रस अर्थात् अंगी रस के रूप के अनुकूल हों। उस एक रस का बार–बार अनुसन्धान करना चाहिए।[1]

---

1. **शृंगार वीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।**
   अंगानि सर्वेपि रसाः।। (साहित्यदर्पण 16/पृ0 540)
2. **हम्मीर महा0 14/36**
3. **रसस्यारब्ध विश्रान्तेसुसन्धानङ्गिनः (धन्यालोक 3/13)**

वीररस –

वीर रस वह है जिसे उत्साह रूप स्थायी भाव का आस्वाद कहा गया है। आलोच्य ग्रन्थ में वीर रस प्रधान रस है वीर रस क्षत्रियों, देवताओं, कुलीन व्यक्तियों का सर्वप्रिय रस है; क्योंकि उनका सम्पूर्ण जीवन वीररस के इतिहास से भरा रहता है। युद्धादि का होना भी स्वाभाविक है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। कार्य करने में आनन्दपूर्ण स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है – कार्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते। विजेत्य आदि ही वीर रस का आलम्बन विभाव होता है; उसकी चेष्टाएँ आदि उद्दीपन है; युद्धादि की साम्रगी अथवा अन्य सहायकों का अन्वेषण आदि अनुभाव है; धैर्य, मति, गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं।

शासक को शासन चलाने के लिये शक्ति को रखना स्वाभाविक है क्योंकि बिना शक्ति के राज्य की रक्षा कर पाना सम्भव नहीं है। विरोधी तत्त्व हर व्यक्ति के होते हैं। उसका सामना करने के लिये शक्ति, साहस और उत्साह का होना अनिवार्य हैं। शासक को तो राज्य की रक्षा हेतु हमेशा कमर कसकर रखना पड़ता है। एक राज्य को दूसरा राज्य हड़प करने की हमेशा भीषण विभीषिका लिये तैयार रहता है। थोड़ी शक्ति समझकर शीघ्र ही युद्ध प्रारम्भ कर देता है। युद्ध आदि का होना स्वाभाविक है। युद्धादि में वीर रस का समावेश पाया जाता है। यह राज्य के हर शासक, हर व्यक्ति का अमूल्य भूषण सदृश है। इसके अभाव में कहीं न कहीं व्यक्ति को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः वीर रस का होना जैसे हर राज्य शासक के लिये आवश्यक है; शक्ति को जोड़ना आवश्यक है; उसी भाँति आलोच्य ग्रन्थ में भी श्री नयचन्द्र सूरि ने भी वीर रस की प्रधानता को स्वीकार किया है। आलोच्य ग्रन्थ में दर्पणकार द्वारा माने गये वीर रस के चारों प्रकारों दानवीर, युद्धवीर, दयावीर एवं धर्मवीर का विशद ढ़ंग से चित्रण किया गया है।

दानवीर– नयचन्द्र ने प्रस्तुत महाकाव्य के 9वें, 10वें एवं 14वें सर्ग में दानवीरता को (आंशिक रूप में) बड़ी कुशलता के साथ व्यक्त किया है। 11वें सर्ग में मोल्हण नामक अल्लावदीन का दूत, रणथम्भौर की समृद्धता का वर्णन अपने मुख से स्वयं करता है। उसने हम्मीर के राज्य के कार्य कलाप तथा राज्य वैभव को बड़ी उदारता के साथ प्रस्तुत किया है। हम्मीरदेव के शासन काल में जितना अधिक राज्य–वैभव था उससे कहीं अधिक दान–वैभव भी था क्योंकि राज्य वैभव से केवल राज्य की शोभा बढती है। प्रत्येक व्यक्ति शौर्यबल से, बुद्धिबल से, नीतिबल से, परम्परागत वंशलब्ध धन से, अपना निजी वैभव तो बढ़ा सकता है किन्तु ऐसा वैभव चिरस्थायी नही हुआ करता। कोई भी राज्य या शासन तब प्रशंसित होता है जब निजी वैभव के साथ वहाँ के निवासी गण भी पूर्ण प्रसन्न व सुखी हो; उन्हें किसी प्रकार का दुःख न हों; याचको, दीन, दुःखी, दरिद्र का कहीं पता ही न चले; वही राज्य प्रशंसित होता है; उसी की कीर्ति चिरस्थायी रहती है। रणथम्भौर में हम्मीरदेव का राज्य वैभव है; उनके कार्य कलाप जनसमुदाय के लिये आनन्द प्रद हैं। नगरी की जितनी प्रशंसा वैभव समृद्धि से है उससे कही अधिक हम्मीर थे। नृप की दानवीरता को आश्रय बनाकर कवि ने दानवीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। नृपति हम्मीरदेव ने यज्ञ करवाया। यज्ञ सम्पन्न करने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठों को राजा हम्मीरदेव ने करोड़ो स्वर्ण मुद्रायें, अक्षय सम्पदा वाली जमीनें तथा सुन्दर लक्षणों वाली गायें दक्षिणा के रूप में दान में दीं। राजा के द्वारा दिये हुये सोने के ढेरों पर नाचते हुए ब्राह्मणों को देखकर देवता लोगों ने मेरु पर्वत की गोद में होने वाली क्रीड़ा के गर्व को भी त्याग दिया ।[1] यहाँ पर राजा हमीर ने स्वर्ण दान करके याचकों को इस प्रकार संतुष्ट कर दिया जिससे कि उन्हें छोड़ करके समस्त निर्धनता दानियों के पास चली गयी (दान देकर समस्त दान राज्य कोष खाली कर दिया)।[2]

---

1. नृपविश्राणितस्वर्णकूटेषु नटतो द्विजान्।
   निरीक्ष्य निर्जरा मेरूक्रोडक्रीडामदं जहुः।। हम्मीर महा0 9/94
2. इहैष स्वर्णदानेन तथाऽतूतुषदर्थिनः।
   तान् विहायोच्चकैर्दातृनुपास्थित यथाऽर्थिता।। हम्मीर महा0 9/95

हम्मीरदेव के राज्य वैभव की प्रशंसा दानवीरता के कारण कितनी उत्कृष्ट है जिसके सम्मुख सभी उपादान समता में विफल हो जाते है । दान वीरता का एक और प्रसंग दान के द्वारा जिस नगरी के लोग विशेषता को प्राप्त हैं , अर्थात धन वितरण में उनकी इतनी ख्याति बढ गई है कि उनकी दान वीरता एवं समृद्धि के सम्मुख चिन्ता मणि रत्न, कामधेनु गाय, कल्पवृक्ष एवं उनकी सुमन शिला, पराजित हो गये हैं – राजा (हम्मीर) ने विचारों से, कल्पना से एवं कामना से भी परे दान दिया और इस प्रकार उसने चिन्तामाणि–पत्थर, कल्पवृक्ष एवं कामकुम्भों के प्रति अनादर रख दिया।[1] नपृति हम्मीरदेव ने केवल स्वर्ण, चाँदी, पृथ्वी ही दान में नहीं दिया बल्कि रत्न, हाथी, घोड़े, स्वर्ण मुद्रा आदि का भी दान किया क्योंकि हम्मीर की कोई (याचक) तो हाथी दान करने के रूप में, कोई घोड़े दान करने वाले के रूप में, कोई प्रचुर स्वर्ण मुद्रा देने वाले के रूप में स्तुति कर रहे थे।[2] नृपति हम्मीरदेव दान देने के लिये सदैव अपने हाथो को उठाये रहते थे। राजा की दानवीरता को स्पष्ट करते हुये कवि नयचन्द्र ने उनके नखों की तुलना चिन्तामणियों से, अंगुलियों की तुलना कामधेनु के स्तनों से तथा हथेलियों की तुलना कल्पद्रुम के पल्लवों से की है। राजा के देश में शूर बुद्धिमान चातुर्यवान्, पण्डित,पुर्ण्यकर्म करने वाले एवं दान देने वाले लोग भी हैं, जो कि अनेक गुणों से युक्त और जागृत है और श्री हम्मीरवीर सभी गुणों से युक्त हैं।

इस राजा के ऊँचे उठे हुए कर कमल की कृपा के प्रकट हो जाने पर बलशाली लोग लक्ष्मी की प्राप्ति करते हैं, इसे तुम अद्‌भुत मानों क्योंकि उसके हाथों के नख–नख नहीं बल्कि मानों चिन्तामणियाँ ही दीप्त हो रही है। उसकी अंगुलियाँ–अंगुलियाँ नहीं मानों कामधेनु के स्तन है एवं उसकी हथेलिया – हथेलियाँ नहीं वरन् कल्पद्रुम के पल्लव हैं। (वह अत्यधिकदायी है)

---

1. विश्राणनं सृजन् चिन्ताकल्पनाकामनाऽतिगम्।
   स चिन्तामणिकल्पद्रुमकामकुम्भेष्वधाद् घृणाम्।।
2. रत्नराशिप्रदं केचित् केचित् पुष्कलनिष्कदम।
   गजदं वाजिदं केचित् श्रीहम्मीरं तदाऽस्तुवन्।। हम्मीर महा0 9/97,96

नृपति हम्मीरदेव की दान क्रिया स्वार्थ से रहित थी। क्योंकि यदि दानवीरता स्वजनो या सहयोगियों के प्रति होती है तो वह निःस्वार्थता से पूर्ण नही होती; उसकी कीर्ति स्थायी नही होती। किन्तु हम्मीरदेव द्वारा किया जाने वाला दान बिना किसी स्वार्थ के होता था। संसार मे जितने भी दानी हुये है हम्मीर उनसबसे श्रेष्ठ था।

राधा पुत्र कर्ण ने अपना कवच दान कर दिया था। राजा शिवि ने अपना मांस दिया था। राजा बलि ने सारी पृथ्वी का दान कर दिया था। जीमूतवाहन ने अपना आधा शरीर (गरुण भक्षण के लिये) दे दिया था किन्तु ये सब राजा हम्मीर के तुल्य नही है उसने तो शरण में आये हुए महिमा साहि के निमित्त तुरन्त अपने पुत्र, स्त्री तथा सेवक समूह समेत अपने आपको मिटा दिया कि केवल उसकी कहानी ही अवशिष्ट रह गई।[2]

याचक गण जितना धन चाहते थे, जो भी इच्छा करते थे, उस इच्छा से अधिक उन्हें राजा के द्वारा प्राप्त हो जाता था, जिससे वे लोग शीघ्र मनोवांञ्छित फल प्राप्त करने के कारण उनके द्वार पर कल्पवृक्षों के वन की कल्पना कर लेते है। नृप के अंगुलियों की कल्पना कामधेनु गाय के स्तन के रूप मे की गई है अर्थात जब याचकों, दीन–दुःखी, दरिद्रों की इच्छाये पूर्ण हो जाती थी तो वे आक्षेप करते हैं कि कल्पवृक्ष की वाटिका राजा के द्वार पर स्थित है। इस प्रकार इस ग्रन्थ मे दानवीरता को उत्कृष्ट रूप में चित्रित किया गया है।

---

1. एतस्याधिपतेस्तथोन्नतकराम्भोजप्रसाादोदयात्
   दोष्मन्तःश्रियमान्पुवन्ति तदिदं मंस्थाः स्म माऽत्यद्भुतम् ।।
   किं चिन्तामणयः स्फुरन्ति न नखाः किं कामधेनुोः स्तना
   नाङ्गुल्यस्तलमस्य वा किसलयाः कल्पद्रुमाणां न किम्।। ह0 म0 10/26
2. राधेयः कवचं ददौ शिबिरहो मांसं बलिर्मेदिनीं
   जीमूतोऽर्धवपुस्तथाऽपि न समा हम्मीरदेवे न ते।
   येनोच्चैः शरणागतस्य महिमासाहेर्निमित्तं क्षणा –
   दात्मा पुत्रकलत्रभृत्यनिवहो नीतः कथाशेषताम्।। हम्मीर महा0 14/17

__धर्मवीर__– प्रस्तुत महाकाव्य मे वीर रस प्रधान है। महाकाव्य मे वीररस के अंग रूप मे धर्म वीर रस की भी अभिव्यक्ति हुई है। ग्रन्थ मे 8वे, 9वे एवं 11वे सर्ग मे धर्मवीरता को प्रदर्शित किया गया है। धर्म के प्रति पराकाष्ठा की स्थिति को धर्म की संज्ञा दी जाती है। वैसे मनुष्य को नियमानुसार मनुष्योचित कार्य करना ही धर्म माना जाता है किन्तु जो व्यक्ति अपना हित करते हुए हमेशा दूसरों के कल्याण मे लगा रहता है वह व्यक्ति प्रशंसित होता है उसी की कीर्ति स्थायी होती है, वही धर्मवीर कहा जाता है। आलोच्य ग्रन्थ मे नयचन्द्र सूरि ने धर्मवीरता के अनेकानेक रूप प्रदर्शित किये है।

नृपति हम्मीरदेव के राज्य रणथम्भौर में सभी सुखी थे तथा लोग धार्मिक कार्यो मे प्रवृत्त रहते थे। ब्राह्मण के मुख से निकले हुए ज्ञानयुक्त वेदमन्त्र सुन्दर ध्वनि से मुखरित हो रहे थे एवं सज्जनो के हृदय मे प्रवेश करके मानो अज्ञान–रूपी अन्धकार का तुरन्त ही समूलनाश कर रहे थे।[1] नृप हम्मीरदेव के कार्य श्रेष्ठ थे। सभी प्रजाजन समृद्धि से युक्त थे। किसी को कोई कष्ट नही था। उसके राज्य मे मानो धर्म गर्जन करता था, दरिद्रता मानो नष्ट हो गई थी, लक्ष्मी मानो सर्वत्र शोभा देती थी, राजनीति का वृक्ष मानो फलता–फूलता था और स्वयं मङ्गल मानो नर्तन करता था।[2]

अन्यं प्राचीन काल के श्रेष्ठ राजाओं के राज्य में जनता को कष्ट भोगना पड़ा, किन्तु हम्मीर के राज्य में प्रजा को न तो तपस्या करना पड़ी न ही कोई यातनाओं का सामना करना पडा।

हम्मीर के शासन काल में किसी को भी न काल रूपी अग्नि का प्रिय बनना पड़ा, न राम की भाँति दुःख पाना पडा न भरत की तरह तपस्या करनी पड़ी और न जनक तुल्य सन्यासी रहना पड़ा।[3]

यथा– 1. विप्राननोद्गीर्णविक्तिवर्णप्रचारचारूध्वनिवेदमन्त्राः।
सतां ह्वदन्तस्तरसा प्रविश्य तमः कषन्तीव समूलकाषम्।। ह.म. 8/10

2. धर्मो जगर्जेव दरिद्रमुद्रा क्वचिन्ननाशेव बभाविव श्रीः।
समुल्ललासेव नयद्रुमोऽपि शुभं ननर्तेव तदीयराज्ये ।। ह.म., 8/68

3. कालानलो नाजनि नाभिरामो रामोऽभवन्नों भरतों रतोऽभूत्।
आसीन्नचित्ते जनकोऽपि कोऽपि __हम्मीर__मालोकयंता जनानाम।। ह.म. 8/69

नृपति हम्मीरदेव के राज्य में कोई भी व्यक्ति हिंसा नहीं करता था किसी को किसी वस्तु का आभाव नहीं थी। यथा उसके राज्य में महान धनाढ़य व्यक्ति भी अहिंसाधारण करते थे एवं सबकी मंगल कामना में रत थे तथा कभी दुःखी नहीं रहते थे, यह अद्‌भुत बात थी।[1]

नृपति हम्मीरदेव के राज्य में धार्मिक कार्य बहुत अधिक होते थे 'मंत्रों' के द्वारा तैतीस करोड़ देवताओं का ब्राह्मण लोग आह्वान करते थे एवं अग्नि में हव्य की आहुतियाँ देते थे। वेद मन्त्रों के द्वारा आहूत देवता अपनी पवित्र आभा से ब्राह्मणों द्वारा प्रचुर मात्रा में दी हुई घृतकी धाराओं को पी रहे थे। तब आधे मुँह से सुधा के त्याग कर देने के कारण मानो जल जाने के भय से चौंके हुए देवता अग्नि में डाले हुए हव्य को ग्रहण कर रहे थे। मधुर स्वर से वेद की ऋचाओं के हर्ष पूर्वक ब्राह्मणों के गाने पर मानों अग्नि देव चञ्चल ज्वालाओं के बहाने से नाच रहे थे।

राजा के पुण्यों के प्रभाव से ब्राह्मण श्रेष्ठों ने उसी प्रकार से निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न किये जिस प्रकार से तपस्वी लोग संसार सागर को पार कर जाते हैं।

समाज में बहुत से लोग समृद्धिशाली होते है। बहुत सी नगरियाँ समृद्धि से परिपूर्ण होती है किन्तु कही भी इतना अधिक धार्मिक कार्य नही दिखाया गया। धर्म की पराकाष्ठा तो मन की उदारता, सात्विकता और धार्मिक प्रबलता से सम्भव है। उन्हीं गुणों का समावेश रणथम्भौर के राजा ही नही नगर निवासियों के अन्तस्थल मे भी पूर्णतः था। नगरी इतनी धन वैभव से सम्पन्न थी कि वहाँ मणियों से दीवालें बना दी गयी थी।

वायु की तरंगो से हिलती हुई ऊँचे–ऊँचे भवनों की ध्वजाओं की पंक्तियों में ही अस्थिरता (चंचलता) मानो व्याप्त थी किन्तु वहाँ की लक्ष्मी में एवं ललनाओं में चपलता नहीं थी।[2]

---

1. **अहिंसा टोपमाबिभ्रद्विलसत्सर्वमङ्गलः।**
   महेश्वरोऽपि तद्राज्ये न विषादी जनोऽद्भुतम्।। ह०म० 9/75

2. **मरुत्तरङ्गप्रविकम्पितायां ध्वजावलौ इभ्यतमालयेषु।**
   लीनेव यत्रास्थिरता न जातु रमासु रामासु समुल्ललास।। ह०म० 11/30

पक्के मकानो पर लगे हुए मणि–समूहों मे से निकलने वाली किरणों के द्वारा प्रातः काल होने पर महलों के शिरों भागों पर स्थित दीपकों के प्रकाश धुंधले कर दिये गये थे।[1] जहाँ पर प्रातः काल स्फटिक भित्तियों पर मृगी जैसी आँखो वाली स्त्रियाँ जिन्होंन अपना देह सौन्दर्य देख रखा है – कांच में भी अपने मुख को अच्छी प्रकार से केवल मङ्गल के कारण ही नहीं देखती थी। महलों में जहाँ पर उच्च स्थलों पर स्थित स्वर्ण कलशों की अचुर शोभावाली प्रभायें वर्षा काल में उन्नत पम्पा सरोवर की समता को प्राप्त हुई थी।

नृपत्ति हमीरदेव के नगर में इतनी अधिक समृद्धता थी उसकी समानता विश्व का कोई नगर नहीं कर सकता था "मेरी समृद्धि से स्पर्द्धा करके अधिक कीर्ति वाला कोई भी नगर यहाँ इस विश्व में नहीं है यह सोचकर मानों जिसके पर्वत सिखर पर चढ़कर यह नगर अपने मुख्य द्वारों से नेत्रों के बहाने से पृथ्वी को निहारता था।[2]

नगर में इतनी सम्पन्नता तथा ईमानदारी थी कि कोई भी व्यक्ति रात्रि में घरों के दरवाजे नहीं बन्द करता था– जहाँ के घर भी रात्रि में अपनी किवाड़ रूपी पलकों को बिना बन्द किये हुए रहते थे–सोते नही थे–यह सोचकर कि घर मे निवास करने वाले इन पुष्पों ने हमारा अपमान किया है (रात्रि में पुष्पम्लान हो जाते है–इस कारण)[3] शोभातिरेक के कारण अपमानित होने पर स्वर्ण की तराजुओं के कुछ श्यामल हो जाने पर उनमे प्रतिबिम्बित स्त्रियों के मुख रात्रि मे ऐसे शोभा देते थे मानो स्वर्ण कमल खिल रहे हो। अर्थात् हम्मीर देव के राज्य में प्रजा जन अपनी घरों के दरवाजे रात्रि में भी बन्द नहीं करते थे।

---

1. जालैर्मणीनामधिकुट्टिमोद्यद्वासैः समन्तात् प्रसरन्मयूखैः।
   प्रासादश्रृङ्गेषु दशेन्धनाली निन्येऽवकेशित्वमुषासु यत्र।।ह0म011/31
2. मद्दद्धिसंस्पर्धिविवर्द्धिकीर्ति परं पुरं किञ्चिदिहास्ति नो वा।
   इतीव यद्भूध्रशिरोऽधिरुह्य भुवं दृशा पश्यति गोपुरेण।। ह0म011/38
3. निवासवद्भिः सुमनोभिरेभिर्विमानताऽस्मासु कृतेति दुःखात्।
   नैवास्वपन् निश्यपि निर्निमेषकपाटपक्ष्माणि गृहाणि यत्र।। ह0म011/39

सूर्यकान्त मणियो से निर्मित दीवारों पर प्रतिबिम्बित स्त्रीमुखों को कमल समझकर गिरने वाले भंवरों को सुकेशी स्त्रियाँ अपनी ओर बुला लेती थी ताकि वे अपने से वदन कमल का दशन न कर ले।[1]

जहाँ रात्रि में कमलो की शोभा को भी परास्त करने वाले नेत्रों से युक्त रमणी के सुरत कार्य के कारण लज्जा से दीपक बुझा देने पर दीवारों की चमकती मणियों की प्रभा से अन्धकार के नष्ट हो जाने पर उसके यत्न विफल हो जाते थे।[2]

जहाँ पर अनवरत उत्सवों में बजने वाले मृदंगो की आवाजें सुनकर जो अभ्यास बादलों ने प्राप्त किया था उसे वे आज भी गर्जनों में प्रकट करते थे।[3]

इस प्रकार इस ग्रन्थ में धर्मवीरता को बड़े कुशलता पूर्वक कविवर नयचन्द्र ने प्रस्तुत किया है। जो वीर रस का परिचायक एवं अंग रूप में सिद्ध हो रहा हैं।

1. सूर्याश्मकुड्यप्रतिबिम्बिनारी मुखानि यत्राब्जधिया वितर्क्य।
   दधुः सुकेश्यः पततो द्विरेफान् दशन् सखीवक्त्रममी स्म मेति।।
2. कुशेशयायासिदृशो निशायां रतौ ह्रिया यत्र निशम्य दीपान्।
   ध्वस्तेऽभवन्संतमसेऽवकेशियत्नाः स्फुरत्कुड्यमणि प्रभाभिः।।
3. निशम्य यत्राविरतोत्सवेषु मृदंगनादान ध्रुवमर्जितो यः।
   अद्याप्यमी गर्जिषु वारिवाहा विवृण्वतेऽभ्यासभरं तमेव।।

---

1. हम्मीर महा0 11/41
2. वही 11/42
3. वही 11/43

दयावीर – प्रस्तुत महाकाव्य में दयावीर रस का भी सुन्दर समावेश पाया जाता है किन्तु यह पूर्ण प्रशंसित नहीं है। आलोच्य ग्रन्थ के तीसरे सर्ग में राजा पृथ्वीराज शकराज को युद्ध में पराजित कर पकड़ लेता है किन्तु उसे उस (शकराज) पर दया आ जाती है और उसे छोड़ देता है। इतना ही नहीं करता बल्कि उसे सुन्दर वस्त्र आदि भी देता है। देवताओं को आकर्षित करने वाले सुन्दर वस्त्र शकराज को देकर पृथ्वीराज ने यह सोचकर कि इसके मरने पर मुझसे ऐसा संग्राम दुबारा कौन करेगा उसे छोड़ देता है।[1] पृथ्वीराज वीर योद्धा है उसमें युद्ध में क्रूरता, व्यवहार में कुशलता व मृदुता तथा दूसरे के दुःख को देखने में दयालुता है। यह पृथ्वीराज की प्रकृष्ट उदारता का ही पर्याय है।

हम्मीर महाकाव्य में मानवों में ही दयालुता नहीं बल्कि मृत शरीरों (लाशों) में भी उदारता दृष्टव्य है।

आश्चर्य है कि मरे हुए योद्धा भी शरणागत रक्षण के व्रत को नहीं छोड़ते थे क्यों कि शत्रु के डर से शिरोविहीन लाशों के पीछे छिपे व्यक्तियों की वे रक्षा कर रहे थे।[2]

---

1. वासांसि दत्त्वा सुरलोकलोभिमहांसि तस्मा इति राड् मुमोच।
   हतेऽत्र को नाम पुनर्विधित्सुरमायया सङ्गररङ्गमेवम।।
2. शत्रुभीत्या कबन्धान्तर्निर्विष्टजनरक्षणात्।
   मृता अपि भटाश्चित्रं न शरण्यव्रत जहुः।।

हम्मीर महा0 3/45, 9/137

युद्धवीर – प्रस्तुत महाकाव्य में अंगीरस के रूप में युद्धवीर रस का समावेश है। आलोच्य ग्रन्थ के तृतीय, नवमें, एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश सर्गों में युद्ध रस का पूर्ण समावेश देखा जा सकता है। ग्रन्थ में बाहरवें सर्ग का नाम ही संग्राम वर्णन है।

यथा – दिन द्वय संग्रामवर्णनो नाम द्वादशः सर्गः।

तृतीय सर्ग में तुर्क राजा शहाबुद्दीन से त्रस्त होकर अन्य पश्चिम देशों के हिन्दू नृपतिगण क्षत्रिराजाओं के तिलकभूत राजा पृथ्वीराज के पास रक्षा हेतु आते है और तुर्कराज शहाबुद्दीन के द्वारा किये कुत्सित कार्यों को बताते है; तब पृथ्वीराज इस प्रकार प्रतिज्ञा करता है– इस प्रकार की मुनियों को भी क्रोधित कर देने वाली इस चन्द्रराज की वाणी सुनकर राजा पृथ्वीराज ने कर कमल में तलवार की मूठ को छूकर और अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर यह प्रतिज्ञा की कि यदि मोर की तरह बाँधकर इस शहाबुद्दीन को तुम्हारे चरणों में मैंने नहीं डाल दिया तो मैं 'चाहमान' (चौहान) वंश में पैदा नहीं हुआ।[1,2]

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके विस्तीर्ण शोभा वाला, व्याकुल मन वाला वह राजा शुभ ग्रहों एवं विजय के योग होने पर भयंकर शत्रु के मंथन करने की इच्छा से सेना सजाकर चल दिया। इस राजा (पृथ्वीराज) के प्रताप सूर्य के उदय होने पर इसकी सेना के द्वारा उड़ाई हुई धूल ने मानों सूर्य को आच्छादित कर दिया था। घोड़ों के खुरों से उड़ाई हुई धूल के समूहों से घुटनों तक की गहराई तक पहुँची हुई सेना के मस्त हाथियों के मद की नदियाँ दो बास के प्रमाण की हो गई। चौहान राजा पृथ्वीराज को आया हुआ सुनकर उसके यवन वीर (मुसलमान योद्धा) भी बाहर निकल पड़े जो कि चमक दार धनुष धारण किये हुए थे।

इत्येतदीयां विनिशम्य वाचं वाचंयमानामपि कोपकर्त्रीम्।
आकृष्य कूर्चं तरवारिमुष्टिपटिष्ठताभात् करवारिजेन ।। 14
मयूरबन्धेन निबन्ध्य नैनं पादारबिन्दे यदि वः क्षिपामि।
जातोऽन्वये तर्हि न चाहमाने इति प्रतिज्ञामकरोन्नरेशः।। 15

हम्मीर महा0 3/14,15

और जिनकी कमर पर विशाल तरकश बंधे हुए थे और शत्रुओं पर निशाना लगाने में बड़े कुशल थे। तब योद्धागण युद्ध करने लग गये जिनके कि अंग परस्पर अवलोकन मात्र से ही शत्रुभाव से भर जाते थे और चमकते हुए अनेक प्रकार के अस्त्रों को धारण किये हुये वीर योद्धाओं के कर कमलों से छुटे हुए बाणों से उत्पन्न हवा ने वृक्षों के पुष्पों की तरह पलायन करने वाले योद्धाओं के यश को समाप्त करते हुये चलना शुरु कर दिया।[1]

भयंकर दांतो से क्रोध से मारने को आते हुए हाथी को एक अन्य हस्तद्वय – विहीन योद्धा दांतो से ही काटकर युद्ध कर रहा था।[2]

युद्ध में सुभटों को शत्रुओं के भेदन में कोई कौतुक नहीं था, उन्होने तो परमाणु स्वरूप मन तक को अपनी युद्ध कुशलता से बेध दिया था।[3]

चौहान योद्धा पृथ्वीराज के द्वारा प्रहार करने पर तुर्क सेना किस तरह पलायन कर रही थी इसका वर्णन कवि नयचन्द्र ने बड़े अनूठे ढंग से किया है।

इसके पश्चात् पृथ्वीराज के योद्धाओं की तलवारों से आघात पाये हुए तुर्क लोग कौवों के समूहों की भाँति वहाँ से लुप्त हो गये।[4]

जब शकराज शहबुद्दीन अपने उजड़े हुए शिविर को देखकर हाथ में तलवार लिये हुए प्रचण्ड क्रोध से भरकर उधर (चौहान राजा की ओर) दौड़ा तब उसे आते देखकर चौहान राजा (पृथ्वीराज) भी अन्तर में चमकती क्रोधग्नि के कारण लाल लाल आँखों वाला तीव्र वेग से उसकी (शहाबुद्दीन) की ओर दौड़ा गया।

---

1. **मणीवकानीव महीरुहाणां क्षिपन् यशांसि द्रुतविद्रुतानाम्।**
   ववौ मरुत्वान् भटराजराजिकराम्बुजत्यक्तपृषत्कजन्मा।। ह0 म0 3/27
2. **हन्तुं क्रुधा दन्तिनमापतन्तमरून्तुदाग्रैर्युधि दद्भिरेव।**
   प्रत्यर्थिना लूनभुजद्वयोऽन्यों दशन् प्रतेने नवयुद्धलीलाम्।। ह0 म0 3/34
3. **सन्नाहसन्धावभिजातगात्रप्रभेदने किं कुतुकं भटानाम्।**
   मनोऽपि तेषां परमाणुरूपमभेदि यत् तैः करलाघवेन।। ह0 म0 3/35
4. **अथोद्भटैश्चारभटैस्तुरुष्काश्चण्डासिदण्डैरभिताड्यमानाः।**
   नेशुः समन्ताल्लगुडप्रयातैर्यथा कुलान्येकविलोचनानाम्।। ह0 म0 3/37

पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन दोनों युद्ध करने लगे तब वीरों के समूह सोच रहे थे मानों कि दो जंगली हाथी भारी तलवारों के रूप में उछलती सूड़ों से आपस में लड़ने के लिये आ गये हों।[1] इस प्रकार पृथ्वीराज ने युद्ध करते हुए युद्ध कौशल से शकराज शहाबुद्दीन को बाँधकर विधिवत अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली।

नृपति हम्मीरदेव ने निर्बाध रूप से दिग्विजय करने के लिये मार्ग में शकयोद्धाओं से युद्ध प्रारम्भ किया। चौहान योद्धओं के कर कमलो से छोड़े गये बाण समूहों से बेधे हुये बड़े–बड़े श्रेष्ठ हाँथी रणभूमि मे ऐसे शोभा दे रहे थे मानो नये–नये सुन्दर पंखो वाले पर्वत हों। योद्धाओं के प्रचण्ड–बाण–वर्षण से अत्यन्त व्याकुल हृदय वाले यवन लोग समर भूमि में युगान्त पवन की भांति काँपने लग गये।[2]

कोई योद्धा तो शस्त्रों से, तो कोई बाणों ही बाणों से, कोई बर्छियों से, कोई मुग्दरों से, कोई लकड़ियों ही लकड़ियों से, कोई दाँतो सें, तो कोई भुजाओं ही भुजाओं से ही युद्ध लीला कर रहे थे।[3]

तलवार से काटे हुए शत्रु के हाँथियों के कुम्भ स्थल से गिरे हुए मुक्ता समूह ऐसे शोभा देते थे मानो वीर योद्धाओं के साथ आलिंगन करने से उत्पन्न हुए वे जय–लक्ष्मियों के पसीने के जल बिन्दुओं के समूह हो।[4] हम्मीर राजा के योद्धागण हाँथियो की भाँति शकराज की सेना के अन्दर प्रविष्ट हो गये थे। उन्होने शत्रुओं के मुख रूपी कमलों की कान्ति को म्लान कर दिया था और खच्चरों की पंक्तियो को भंग करके सेना के मध्य में प्रवेश किया।

---

1. **करोदरोद्गासिमहासिदण्डच्छलोल्लसत्पुष्करदुर्निरीक्षौ।**
   अभ्युद्यतौ वन्यगजौ किमेतौ बितर्क्यमाणाविति वीरवारैः।। ह0 म0 3/41
2. **सुभटप्रकाण्डघनकाण्डवर्षणातिकदर्थनेन भृशविक्लवाशयाः।**
   यवना युगान्तपवना इवास्फलन् नितरां मिथोऽपि समराङ्गणे तदा।। ह0म0 10/50
3. **शस्त्राशस्त्रि शराशरि कुन्ताकुन्ति गदागदि दण्डादण्डि।**
   दन्तादन्ति भुजाभुजि वीराः केऽपि परे व्यदधन् रणलीलाम्।। ह0 म0 10/51
4. **खड्गक्षतारिकरिकुम्भमण्डलान्मुक्ताफलानि निपतन्ति रेजिरे।**
   स्वेदोदबिन्दुनिवहा जयश्रियां वीरोपगूहनसमुद्भवा इव।। ह0 म0 10/52

"मुझे शंका होती है कि शक योद्धाओं के रक्त की नदियों से ही समुद्र लाल हो गया था, अन्यथा चन्द्रमा उस समुद्र में से स्नान करके निकलने के पश्चात् लालिमा कैसे धारण कर सकता है ?" योद्धाओं के कटे बिखरे हुए अंग युद्ध भूमि में किस तरह सुशोभित हो रहे थे, इसका चित्रण नयचन्द्र ने बड़े ही अनूठे रूप में किया है। संसार को रचने वाले विधाता की निर्माण शाला की भाँति ही युद्धभूमि शोभा दे रही थी जिसमें कहीं सिर कही चरण–कमल कहीं हाँथ तो कहीं भुजाएं बिखरी पड़ी थी।[1] इस रणभूमि रूपी सरोवर में, जो कि चञ्चल तुरंगो की बड़ी–बड़ी तरंगो से और वीर रस के जल से परिपूर्ण था, तलवार से काटे गये छत्र श्वेत कमलों की भांति शोभा दे रहे थे।[2] तुर्क योद्धा उल्लूखान के सैनिक अपने–अपने प्राण बचाकर युद्ध भूमि से किस तरह पलायन कर रहे थे, इसका वर्णन कविवर नयचन्द्र ने बड़े ही उत्कृष्ट रूप में किया है– "कोई–कोई म्लेच्छगण तो म्लान हो गये, तो कोई मूर्च्छित हो गये, दूसरे डर गये तथा अन्य म्लेच्छ लोग भाग गये। कोई यवन लोग हा हा कार कर रहे थे तो कोई प्राण बचाने को गुप्त स्थानों में छिप गये थे।[3]" घुड़सवारों को परास्त करने वाले योद्धाओं ने घोड़ों को, बाणों से कटी पताकाओं वाले रथ समूहों को और जिनके महावत व वीर भाग गये है ऐसे हाँथियों को तथा अतुल रत्न समूहों को योद्धाओं ने खूब लूटा। इस जगरा नामक नगरी को अपने अधीन कर चाहमान योद्धागण ने लूटा वहाँ सेनापति 'रतिपाल' ने यवन योद्धाओं की मृगाक्षियों को अत्यन्त क्रोध के कारण बाँधकर उनसे गाँव–गाँव में छाछ विकवाई क्योंकि वह राजा हम्मीर की ख्याति को चाहता था।[4]

---

1. **क्वचिच्छिरोभिः क्वचिदंङ्घ्रिपद्मैः क्वचित करैः क्वापि च बाहुदण्डैः।**
   आरेचिता सङ्गरभूरराजन्निर्माणशालेव जगद्विधातुः।। ह0 म0 10/55
2. **रङ्गत्तुरङ्गोरुतरङ्गवीररसाम्बुपूर्णे रणपल्वलेऽस्मिन्।**
   सिताम्बुजानीव विरेजुरातपत्राणि कौक्षेयकपातितानि।। ह0 म0 10/56
3. **केचिन्मम्लुः केऽपि जग्लुः परे च त्रेसुर्नेशुः केचन म्लेच्छपाशाः।**
   हाहारावं चक्रिरे केऽपि केचिज्जीवं त्रातुं प्राविशन् गुप्तदेशान्।। 10/58
4. **तत्रैणनेत्रा यवनाधिपानां बध्वाऽत्यमर्षाद <u>रतिपाल</u> वीरः।**
   व्यचिक्रयत् ख्यातिकृते क्षितीन्दोस्तक्रं प्रतिग्राममम्मूभिरेषः।। ह0 म0 10/61

इसके अनन्तर विष्णु भगवान की भाँति यवन राज की सेना रूपी सागर को भयकर जयलक्ष्मी का आलिंगन करने वाले सुभटों ने राजा हम्मीर को विजय की वार्ता से गद्–गद् कर दिया।[1] अपनी पराजय सुनकर शकराज अल्लाबदीन पुनः पराजय का प्रतिशोध लेने के लिये सुपुष्ट भुजाओं वाले उल्लूखाँ और नुसरत खाँ नामक भाइयों को महाबलशाली सेनाओं में आगे करके हम्मीर को जीतने चल दिये सेना इतनी अधिक थी कि शेष नाग भी पृथ्वी को धारण करने में अस्मर्थ था। लोग गणना नहीं कर पाते थे कि कितने योद्धा थे, कितने हाँथी थे और कितने घोड़े थे। अर्थात् सेना बहुत प्रचुर मात्रा में थी।

कितने हाँथी है, कितने घोड़े हैं, कितने रथ है और कितने योद्धागण है इस प्रकार पूछने वाले लोगों के लिये तो आदमियों द्वारा केवल एक ही उत्तर था कि कोई संख्या इनकी नहीं बताई जा सकती।[2] सब अंगो पर कवच धारण करने के कारण केवल योद्धाओं की दो आँखो द्वारा ही उनकी भयंकरता प्रकट हो रही थी। वे दौड़ते हुए ऐसे शोभा देते थे मानो लोहे के गोले दौड़ रहे हो। वीरों के समूहों के हाथों से छूटे हुए बाणों के फटने पर निकलने वाले अग्निकण पलायन करने वाले योद्धाओं की कीर्तिलता को मानों जलाते हुये शोभा दे रहे थे।[3] वीर योद्धाओं के द्वारा अपने अंगों पर घुमाकर शत्रु के योद्धाओं के प्रति फेंकी गई बर्छियाँ तीक्ष्णता से गिरती हुई ऐसी मालुम होती थी मानो शनिदेव की स्पष्ट दृष्टियाँ गिर रही हों।[4]

---

1. यवनाधिपसैन्यसागरं प्रविलोड्येति भटा मुकुन्दवत्।
   परिरब्धजयश्रियो नृपं जयवार्त्ताभिरवर्धयन्नथ।। ह० म० 10/62
2. गजाः कियन्तस्तुरगाः कियन्तो रथाः कियन्तः कति वा भटाश्च।
   जनैर्जनानामिति वादितानां संख्या नहीत्युत्तरमेकमेव।। ह० म० 11/14
3. मिथोऽपि वीरव्रजपाणिमुक्तपृषत्कवक्त्रास्फलनप्रभूताः।
   रेजुः पतन्तोऽग्निकणाः प्रदग्धुं पलायितानामिव कीर्तिवल्लीम्।। ह० म० 11/83
4. भ्रमं भ्रमं वीरवरैर्निजाङ्गोपरि प्रणुन्नाः प्रतिशत्रुवीरान्।
   कुन्ता विरेजुर्निशिताः पतन्तः स्फुटाः कटाक्षा इव भानुसूनोः।। ह० म० 11/87

अच्छे गोलचियों (तोपचियों) के द्वारा ऊपर की ओर चलाये गये तोप के गोले नीचे गिरते हुए ऐसे शोभा देते थे मानो दोनों ओर के योद्धाओं की वीर लक्ष्मियों के वे मोटे पयोधर हों।[1]

पर्वतों के वृक्षों में छिपे हुए गरुडासन से बैठे हुये यवनराज के योद्धागण हम्मीर के वीरों द्वारा चलाये गये बाणों से विद्ध होकर चित्रलिखित से लग रहे थे।[2]

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ होने पर शकों के गोले से एक तोप का गोला टकरा कर फट गया जिसके निकले हुए टुकड़े से सिर पर आघात पाकर निसुरत खान विनष्ट हो गया।[3]

हम्मीरदेव स्वयं युद्धवीर हैं उनके धनुष के आगे बड़े–बड़े प्रचण्ड वीरों का साहस ढ़ह जाता है। आलोच्य ग्रन्थ के 12वें सर्ग में हम्मीर के दिनंद्वय का सग्रांम वर्णन कविवर नयचन्द्र ने बड़ी कुशलता के साथ किया है। युद्ध में हम्मीरदेव अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करते हैं। निसुरतखान के बध के अनन्तर उसका अग्रज तुर्क सम्राट अलावदीन ने रणथम्भौर आकर हम्मीरदेव को युद्ध के लिये कहा, तब राजा (हम्मीर) ने उचित रीति से बलिक्रिया करके युद्धरूपी मनोरंजन के लिए जल्दी से अपने सैनिकों को रण मे उतार दिया। परस्पर युद्ध के कारण योद्धाओं के हृदय मे उत्साह भरने वाले और अपनी आवाज से दिशाओं को परिपूर्ण करने वाले तूर्यवाद्य दोनों सेनाओं के मध्य बजने लगें। तब योद्वाओं का द्वन्द युद्ध होने लगा पैदल पैदल से महारथी महारथी से, हाँथी पर सवार योद्धा हाँथी पर बैठे योद्धा से युद्ध करने लग गया।[4]

---

1. सघान्त्रिकैर्भैरवयन्त्रगोला मुक्ता मिथोऽप्यूर्ध्वमधःपतन्तः।
   अपि द्वयानामरुचन भटानां पीना उरोजा इव वीरलक्ष्म्याः।। ह0म0 11/88
2. श्रित्वा नगागान् गरूडासनेन ह्रष्टा निविष्टा यवनेशयोधाः।
   विद्धाः शरैर्वीरवरैस्तथैव चित्रं प्रयाता इव रेजुरूच्चैः।। ह0म0 11/97
3. प्रवर्तमाने समरेऽन्यदाऽथापस्फाल गोलः शकगोलकेन।
   प्रभ्रश्यता तच्छकलेन मूर्ध्नि हतो व्यनेशन्निसुरत्तखानः।।वही 11/100
4. पत्तिः पदातिकमियाय सादिनं सादी रथस्थितमहो महारथी।
   मातङ्.गयानगमनो निषादिनं द्वन्द्वाहवोऽजनि तदेति दोष्मताम्।। ह0 म0 12/33

यहाँ पर कविवर नयचन्द्र ने योद्धाओं द्वारा बाण वर्षण करने के वर्णन में बड़ी चातुरी दिखाई है। वीरों के द्वारा प्रचुर मात्रा में चलाये हुये और आकाश में सघन रूप से फैले हुए बाणों के बीच में निकलने के डर से मानो सूर्य भी अपनी किरणें फेकनें में अस्मर्थ था।[1]

दोनों ही पक्षों के योद्धागण युद्ध पटु थे, बाण वर्षण में निपुण थे। वे इतना तेज बाण–वर्षण कर रहे थे कि वायु भी लज्जा को प्राप्त हो रही थी। वेग के कारण वायु को भी परास्त करने वाले बाणों के चलने पर मानो बैरियों की साँस भी निकलने लग गई। उनके (वीरों) अंगो को भेद कर सांसों को बिना देखे ही मानो बाण भी उनके पीछे–पीछे ही चल रहे थे। (वाणों से वीर बिंध कर मर गये)[2]

जब कोई शत्रु का प्रचण्ड योद्धा हाँथी के अग्रभाग पर प्रहार करके बार–बार उसके पृष्ठ भाग की ओर चला जाता था तो क्रोध के कारण दुश्मन का वह हाँथी मानों उसकी गन्ध सूंघता हुआ वायु से विनोद करता था।[3]

अन्य योद्धा बाणों से सारे अंगो को बेधकर हाँथी को मारकर पुनः हथिनी की ओर आक्रमण करता हुआ ऐसा मालुम होता था मानो पाराशर पुत्र व्यास जी हंसों के जाने के लिए द्वारनिर्माण के लिए क्रौञ्च पर्वत भेदकर मार्ग बना रहे हो।[4]

---

1. वीरैः प्रकाममभिमुक्तपत्रिणां नीरन्ध्रमम्बरतले प्रसर्प्यताम्।
अन्तःप्रकर्त्तनभयादिव क्षमः क्षेप्तुं न तीव्र किरणोऽप्यभूत् करान्।। ह0म0 – 12/38
2. वायुं विजित्य तरसा पतत्स्विह श्वासैः पुरैव चलितं विरोधिनाम्।
भित्त्वा तदङ्गमनवेक्ष्य तानि वैतत्पृष्ठ एव चलितं शरैरपि।। वही – 12/40
3. दत्त्वा प्रहारमतिलाघवात् पुरः पृष्ठं श्रयत्यसकृदुद्भटे भटे।
क्रुद्धो भ्रमन् समितितज्जिघृक्षया वात्या विनोदमभजत परो गजः।। ह0महा0–12/54
4. भित्वाऽखिलाङ्गमपि भूजुषेषुणा हत्वा करेणुमितरोऽभिपातुकम्।
वर्त्मेव हंसगमनाय तेनिवान क्रौञ्चं पराशरसुतो गिरिं यथा।। ह0महा0–12/55

राक्षस समूह एक ओर रक्त की नदी बहाते थे और उस रक्त को पी भी जाते थे इसको कवि ने बड़ी ही निपुणता से वर्णित किया है। तब संग्राम करने वाले राक्षसों का यज्ञ में महान परस्पर का हठ मालुम हो गया था क्योंकि एक ओर राक्षस रक्त की नदी बहाते थे तो दूसरी ओर तुरन्त ही उसे पी जाते थे।[1]

एक हाँथी ने तो सूंड पर उठाकर एक घुड़सवार को युद्धभूमि में गेंद के समान फेंक दिया था तो दूसरे ने सूंड से घोड़े की कमर पकड़कर उसे धोबी के वस्त्रों की भाँति जमीन पर फेक दिया था।[2] कवि नयचन्द्र के इस आलोच्य ग्रन्थ में मानव ही नहीं बल्कि हाँथी घोड़े भी अपनी युद्ध कुशलता को दिखा रहे थे। कदम – कदम पर वीरों के द्वारा मारे हुए और गिरे हुए हाँथी ऐसे शोभा देते थे मानो सेतु निर्माण के लिये हनुमान जी के द्वारा लाये हुए पर्वत भार के कारण आधे रास्ते में ही छोड़ दिये गये हो।[3] इस प्रकार महाभारत के समान रण युद्ध के दो दिन तक चलने पर सूर्य मानो अवधि को बताने के लिये अस्ताचल के शिखर पर चला गया।[4] इस समर में यवनों के महान ओजयुक्त 85,000 वीर यमलोक पहुँच गये।[5] प्रातः काल होने पर दूसरे दिन का युद्ध प्रारम्भ हुआ हम्मीरदेव के धनुष की टणत्कार को मात्र सुनने से शत्रुगण प्राण देते थे–

---

1. जज्ञे तदा रणभृतां च रक्षसां यज्ञे महाहठभरः परस्परम्।
एके प्रथीयसितरामसृग्नदीं चक्रुः पराणि पपुरेव तत्क्षणात्।। ह0 म0 12/58
2. एकः करी समर–सीम्नि सादिनं चिक्षेप कन्दुकमिवाधिपुष्करम्।
धृत्वा करेण च कटौ परौ हयं प्रास्फालयद् रजकवस्त्रवद् भुवि।। ह0 म0 12/72 3.
वीरैर्निहत्य विनिपातिता रणक्षोणौ बभुः करिवराः पदे पदे।
सेतोः कृते हनुमतैव चालिताः शैला इवार्धपथ उज्झिता भरात्।। ह0 म0 12/84
4 इति तिरस्कृतभारतसारते रणभरे स्फुरिते दिनद्वयीम।
दिनकरः प्रतिवक्तुमिवावधिं चरमभूमिधराग्रमसेवत।। ह0 म0 12/86
5 एतस्मिन समरे वीरा यवनानां महौजसः।
पञ्चाशीतिसहस्राणि यमावासमयासिषुः।। ह0 म0 12/88

उसके धनुष की प्रत्यञ्चा की टणत्कार के सुनने मात्र से ही प्राण छोड़ देने वाले शत्रुगण उसके बाणों के लगने की वेदना भी अनुभव नहीं कर पाते थे।[1] बाणों के समूह को बरसाने वाले इस राजा (हम्मीर) के सामने से भागने वाली शकराज की सेना क्षणभर को ऐसी मालूम होती थी जैसे वह धनहीन विलासी से दूर पलायन करने वाली वेश्या हो।[2] किन्ही योद्धाओं को राजा ने बाणों से छाती तक भर दिया था और किन्ही को तलवार से मध्य मे से घास की तरह काट दिया था।[3] इस वीर (हम्मीर) ने युद्ध में शत्रुओ का इस प्रकार वध किया था जिससे कि यमराज का घर भी पूर्ण रूपेण इनसे भर गया था।[4]

उसने ध्वजाओं के दण्डों को काट–काट कर घुड़सवार सहित अश्वों को मार मार कर और शत्रुओं की देहो के टुकड़े–टुकड़े करते हुए बहुत समय तक युद्ध किया।[5]

नृपति हम्मीरदेव युद्ध नीति में निष्णात थे। वे युद्ध में भारी पराक्रम दिखाया जो युद्धवीर रस को प्रवाहित कर रहा है। नयचन्द्र सूरि ने युद्ध वर्णन में चातुरी दिखायी है। हम्मीरदेव की युद्ध कुशलता के कुछ उदाहरण आगे द्रष्टव्य है –

भयंकर रण कौशल तथा बाण वर्षण करके नृपति हम्मीर सावन का सा दृश्यउपस्थित कर रहे है –

---

1. धनुर्गुणटणत्कारश्रुत्यैव त्यक्तजीविताः।
   द्विषो नान्वभवँस्तस्य शरप्रहरणव्यथाम्।। ह0 म0 13/219
2. शरौधान् क्षिपतस्तस्य शकराजवरूथिनी।
   वसुहीनस्य वेश्येव क्षणेनासीत् पराङ्मुखी।। ह0 म0 13/221
3. नृपः कांश्चिदुरः पुरं पूरयामास सायकैः।
   दूर्वालावं लुलावोच्चैः कांश्चित् खड्गेन मध्यतः।। ह0 म0 13/222
4. वीरोऽसौ समरेऽरीणां तथाऽत्र कदनं व्यधात्।
   यथाऽमीभिर्यमस्यापि संकीर्णमभवद् गृहम्।। ह0 म0 13/223
5. सध्वजान खण्ड्यन् दण्डान् व्यध्यन्नश्वान् ससादिनः।
   द्विधाऽपि विग्रहं भिन्दन् सोऽरेश्चक्रे चिरं रणम्।। ह0 म0 13/224

भयंकर वर्षा की भाँति शत्रु के क्षेत्र में बाण वर्षा करके हम्मीर राजा ने आश्चर्य की बात है कि मानों श्रावण का सा दृश्य उपस्थित कर दिया था।[1]

शत्रु द्वारा चतुर्दिक् घिर जाने पर तथा अंगों के बिंध जाने पर वीरवर हम्मीर स्वयं अपना कण्ठ काट लेते है, किन्तु शत्रु के हाँथ जाना वे पसन्द नहीं करते हैं। भयंकर रण कर्म करने वाला, वीर कुलों का मुकुट मणि म्लेच्छों के बाणों के प्रहार से सभी अंगों में लगे बाणों से, समस्त पृथ्वी पर सब ओर से सम्मानित राजा हम्मीर स्वयं ही अपने कण्ठ को काटकर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गया– यह सोचकर कि कहीं मुझे यवन लोग जीते हुए ही न पकड़ लें, और देवताओं का अतिथि बन गया।[2] इस प्रकार हम्मीरदेव की वीरता अवर्णनीय है।

इस सन्दर्भ में हम्मीरदेव आलम्बन है, शकराज अल्लावद्दीन से युद्ध उद्दीपन है, युद्ध के सेनापतियों सेनाओं को उभारना आदि अनुभाव है, क्रोधावेश में हम्मीरदेव के मुख से शकराज के प्रति जो आवेश निकल रहा है, प्रतिकार में मारने के लिये।

अपने योद्धाओं से युद्ध करने के लिये कह रहे तथा स्वयं युद्ध में जाने के लिये निश्चय किये ये सब संचारी भाव है। अतः उत्साह नामक स्थायी भाव पुष्ट होकर वीररस को ध्वनित कर रहा है।

---

1. अतिधारानिषून् वर्षन् रिपुक्षेत्रेषु भूरिषु।
   चाक्षुषः श्रावणों जज्ञे चित्रं हम्मीर भूपतिः।।

   हम्मीर महा0 13/225

2. श्री हम्मीरोऽथ वीरव्रजमुकुटमणिर्म्लेच्छबाणप्रहारैः।
   सर्वाङ्गेषु प्ररूढ़ैः क्षितितलमभितो भावितो भीष्मकर्मा।।
   जीवन्तं ग्राहिषुर्मा क्वचिदपि यवना मामिति ध्यातबुद्धिः।
   कण्ठं छित्त्वात्मनैव स्वमटति च दिवं स्मात्तसूरातिथित्वः।।

   हम्मीर महा0 13/226

श्रृंगार रस

श्रृंगार मन की भावनात्मक और कोमलतम अभिव्यक्ति का प्रतीक है। इसमे प्रेम–भावना का पूरा विकास पाया जाता है। कवि श्रृंगार मे प्रेमी और प्रेमिका के हृदय मे उद्वेलित भावानुभूतियों का कलात्मक प्रदर्शन करता है। नायिका एवं नायक के मधुर मिलन, कटाक्ष, विक्षेप, भावभङ्गिमा इत्यादि का भावनात्मक और रसात्मक नियोजन करता है कि पाठक काव्यास्वादन करते समय उसमें अपने व्यक्तित्व का विलय कर देता है। जिस प्रकार मधु की सरसता मे मग्न भ्रमर उस प्रेमात्मक संसार से निकल नहीं पाता उसी प्रकार पाठक भी श्रृंगार के प्रेमिल संसार से निकल नही पाता है। श्रृंगार रस को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। संसार मे जो कुछ पवित्र उज्जवल एवं दर्शनीय है, वह श्रृंगार के भीतर समाविष्ट हो जाता है। श्रृंगार का स्थायी भाव रति अथवा काम जो समस्त विश्व मे व्याप्त है। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावों का संयुक्त रूप मे अनुभव करके पाठक के मन मे एक उत्कृष्ट आनन्दमयी भावना का संचार होता है। नयचन्द्र–कृत हम्मीर महाकाव्य मे वर्णित श्रृंगार रस कोई बनावटी नहीं है, उसके सृष्टि में स्वाभाविकता छलकती है। पाठक काव्य का आनन्द ज्यो–ज्यों प्राप्त करता है त्यों–त्यों रसानुभूति होती है। आलोच्य ग्रन्थ मे श्रृंगार रस अङ्ग रस के रूप मे उपस्थित है। हम्मीर महाकाव्य के सातवें सर्ग में श्रृंगार रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। सातवें सर्ग का नाम ही श्रृंगार संजीवन है।

श्रृंगार संजीवनो नाम सप्तमसर्गः। आलोच्य ग्रन्थ के द्वितीय सर्ग में आंशिक रूप से श्रृंगार रस का वर्णन हुआ है हम्मीर काव्य वीररस प्रधान काव्य है उस समय काव्य लेखन की परिपाटी ही कुछ ऐसी थी कि मुख्य रस चाहे कोई हो श्रृंगार रस का पुट आवश्यक माना जाता था। काव्य से श्रृंगार को दूर रखना उतना ही आपत्ति जनक था जितना कि भोजन से लवण।[2] यद्यपि सातवें सर्ग मे श्रृंगार रस का परिपाक हुआ है किन्तु उसकी अनुभूति प्रारम्भ से ही सहृदय को आकर्षित करने लगती है।

---

1. **रसस्यारब्ध विश्रान्ते सुसन्धानङ्गिनः।**
2. **रसोस्तु यः कोपि परं स किञ्चिन्नास्पृष्टश्रृगांररसो रसाय।**
   सत्यप्यहो पाकिमपेशलत्वे न स्वादु भोज्यं लवणेन हीनम्।।

पञ्चम एवं षष्ठ सर्ग में प्रस्तुत वसन्त वर्णन एवं जलक्रीड़ा वर्णन– श्रृंगार का पोषक है। उस वर्णन के माध्यम से श्रृंगार द्विगुणित आनन्द प्रदान करता है। सीधा श्रृंगार रस पर ही आक्षेप करना भी व्यक्ति को अरूचि का आधायक बना सकता है या विद्वान् लोग उसकी प्रशंसा न करते या कुछ ही श्रृंगारी पाठक, सहृदय, विद्वान् ही पसन्द करते किन्तु और भाव पेशलता से काव्य का आनन्द द्विगुणित हो जाता है, तथा सभी प्रकार के काव्यप्रेमियों के द्वारा ग्राह्य हो जाता है। चाहे पाठक जिस प्रवृत्ति का हो काव्य की मधुरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। फिर श्रृंगार रस का गुण ही अलौकिक है। प्रेमी युगल के उत्पीड़क रतिभाव की अभिव्यक्ति ही श्रृंगार है।[1] श्रृगांर रस के दो भेद है पहला संभोग और दूसरा विप्रलम्भ या वियोग।[2]

संभोग श्रृंगार – रूपासक्ति और शरीर आकर्षण का परिणाम है– संभोग। इसमें परम्परानुसार जन्य चेष्टायें, सुरत, बिहार, सुरापान, आदि का वर्णन होता है। साहित्य दर्पणकार ने भी संभोग श्रृंगार के बारे में कहा है– परस्पर प्रेम–पगे नायक और नायिका के परस्पर दर्शन, परस्पर स्पर्शन आदि की अनुभूति का प्रदाता जो रस हैं, वह संभोग श्रृंगार है।[3] कवि नवचन्द्र ने भी संयोग मे बहिरिन्द्रयों के सन्निकर्ष को अनिवार्य रुप में चित्रित किया है; क्योंकि रस चेष्टा, सुरत व्यापार आदि का मुख्याधार बहिरिन्द्रय सन्निकर्ष ही होता है। श्रृंगार की भित्ति दर्शन, श्रवण, स्पर्श, संलाप आदि की नींव पर खड़ी हो जाती है। दर्शन स्पर्श आदि की प्रतिक्रियाएँ मूलतः दो रूपों मे व्यक्त हुई है– 1. हाव के रूप मे 2. अनुभाव के रूप में। हाव सचेष्ट व्यापार है और इसका सम्बन्ध क्रीड़ा से है। अनुभाव सहजानुभूति का बहिर्विकार है और व्रीडाषरक होता है। जल क्रीड़ा श्रृगांर रस का पोषक है।

---

1. शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
   उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः श्रृगांर इष्यते।। (3/210 सा0द0)
2. विप्रलम्भोऽथ संभोग इत्येष द्विविधोमतः। (3/214 सा0 द0)
3. दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ।
   यत्रानुरक्तावन्योन्यं संभोगोऽयमुदाहृतः।। (सा0द0 3/240)

कवि नयचन्द्र ने महाकाव्य के षष्ठ सर्ग में हम्मीरदेव के जलक्रीड़ा का वर्णन बड़े ही अनूठे ढ़ंग से किया है। वनविलास के कारण स्वेदयुक्त युवकों को देखकर राजकुमार हम्मीर जलक्रीड़ा करने के लिये सुन्दर जैत्रसागर नामक सरोवर में उनके साथ गये। तुरन्त ही चंचल–नेत्रियों के विशाल नितम्बों से समस्त वन पथ व्याप्त हो गया था, क्योंकि वे जलक्रीड़ा हेतु जाने के इच्छुक अपने प्राण प्रियों को (पतियों को) मानो रोक रही थी। क्षीण कटि वाली, अत्यन्त गहरे जल के देखने मात्र से भयभीत रमणियों को हाथ से पकड़कर किसी तरह से युवक जल में प्रवेश करा रहे थे। इन्होने हमारे नयनों की छवि चुराली है "ऐसा सोचकर कुपित नायिकायें कमलों को सरोवर में डुबाती थी और पुनः बाहर निकालती थी। टूटे हुए हार से भी जल से भरे हुये छिद्रों से मोती मानों नीचे नहीं गिर रहे थे क्योंकि सुन्दर नेत्रवाली स्त्रियों के स्तनयुगल के स्पर्श के आनन्द को कौन रसिक छोड़ते हैं ? कोई भी नहीं।[1] पति द्वारा जल के भीतर हाँथ से जंघाओं के स्पर्श कर लेने पर डर से कांपती हुई तरूणी का आश्चर्य, पति का चूम लेना भी सखियाँ देख रही थी।[2] प्रेमी के द्वारा दंतपंक्ति के छिद्रों से की हुई जल की बौछार से सिक्त तरूणी प्रीति की पुलकावलि से भर गयी थी और मानों कामबाणों से विद्ध सी शोभा देती थी।[3] जल क्रीड़ा में अंग प्रत्यंगो की चंचलता आदि का वर्णन स्वाभाविक है। जल से गीले मृगाक्षियों के अंग युवको के मन के आकर्षण को द्विगुणित कर देते है।

---

1. त्रुट्यतोऽपि जलपूरितरन्ध्रैः शुक्तिजन्मभिरपाति न हारात्।
के त्यजन्ति सुदृशां कुचयुग्मस्पर्शसौख्यमभिलब्धरसा वा।।
हम्मीर महा० – 6/32

2. भापनाय समुपेत्य जलान्तर्भर्तरि स्पृशति सक्थि करेण।
त्रासकम्पिततनूस्तनूममध्याश्चर्यचुम्बितमवेक्षि सखीभिः।।
हम्मीर महा० – 6/35

3. प्रेयसा दशनरन्ध्रविमुक्तैरूक्षितोदककणैर्मदिराक्षी।
प्रीतिजातपुलकोद्घुषिताङ्गा कामकाण्डनिचितेव चकासे।
हम्मीर महा० – 6/36

रमणियों के प्रस्तर की भाँति कठोर स्तनों पर से नीचे गिरने वाले जल की फेन राशि सोने के हार के ऊपर मोतियों की लडी सी चमक दे रही है। प्रिय के द्वारा कमल नेत्र वाली प्रियतमा के कामकेलि में कटि–वसन के खींच लेने पर कमलिनी ने वस्त्रों की भाँति अपने पत्ते देकर मित्रता निभाई।[1] सदाचारी व्यक्ति मूर्खों के मध्य अपने गुणों का वखान नहीं करता इसको कवि ने रमणियों के नूपुरों के माध्यम से उद्घाटित किया है। जल विहार करने वाली रमणियों के नूपुर झंकार भी नहीं कर रहे थे। सदाचार का ज्ञाता कौन व्यक्ति मूर्खों के मध्य अपनी महिमा का बखान करेगा ? कोई नहीं।[2] जलक्रीड़ा करते करते युवतियों के अंगो का उबटन छूट गया था, अंजनराशि धुल गई थी, चंचल नेत्र वाली स्त्रियों के अधरों का अलक्तक छूट गया था। जल में मृगाक्षियाँ अपने केशपाश को देखकर सर्पों की आशंका करती थी– जल केलि में प्रचुर मात्रा में जल की बौछारों से व्याकुल एवं तिरछी गर्दन करने वाली अन्य नायिका ने जब अपने पीछे स्थित जल में अपने केशपाश को देखा तो, उसने जल के सर्पों की शंका के डर से अपने प्रियतम का आलिंगन कर लिया और प्रिय ने भी अपनी तलवार की भाँति इसे (केशपाश को) अपने हाँथ से खीच लिया।[3] वधुओं की जलक्रीड़ा रति आनन्द के लिये मानो प्रवेश द्वार सी बन गई थी जो केशपाश को खिसका देती थी, नेत्रों के अञ्जन को बहा देती थी, अधरों के राग को समाप्त कर देती थी, पुलकावलि समस्त अंग भर देती थी, शक्ति को नष्ट कर देती थी और गालो तथा स्तनों पर उत्कीर्ण पत्र लेखा को भी नष्ट कर देती थी।

---

1. पङ्कजच्छददृशः कटिवस्त्रे नर्मणा व्यपहृते दयितेन।
   वस्त्रवन्निजदलानि ददानाम्भोजिनी ध्रुवमधत्त सखीत्वम्।। हम्मीर महा0 6/38
2. योषितां जलविहारवतीनां नूपुराणि रणितानि न चक्रुः।
   कः सदाचरण भाग् जलमध्ये स्वं तनोति यदि वा महिमानम्।। ह0 म0 6/41
3. व्यात्युक्षीषु भृशोक्षणाकुलितया वक्रीकृतग्रीवया।
   व्यालोक्य प्रतिबिम्बतां स्वकबरीं पृष्ठप्रतिष्ठेऽम्बुनि।।
   प्रेयान् वाराहिशंकया स्म परया संश्लिष्यते भीतया।
   लातुं स्वासिलताशया पुनरिमां चिक्षेप हस्तं स च।। ह0 म06/53

चञ्चल नेत्र वाली स्त्रियों के उन्नत जघनों, स्तन के समूह से तरंगो को उछालता हुआ जल उसी प्रकार से भङ्गियाँ प्राप्त कर रहा था मानों कोई नाव तुरन्त ही जल में गमन करती हुई पानी को चीर देती थी।[1] क्रीड़ा करने के पश्चात् जल से बाहर निकले हुए युवक एवं युवतियाँ किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, इसका वर्णन कवि नयचन्द्र ने श्रेष्ठतम ढ़ंग से किया है – क्रीड़ा करते हुए दम्पत्तिगण तब जल से बाहर आ गये थे। उनकी उत्सुकता से उठे हुए कदमों की ध्वनि पक्षियों के पंखों की आवाज को भी परास्त कर रही थी। वे आपस में अपनी हथेलियों से तालियाँ बजाकर लक्ष्य की उपलब्धि को सूचित कर रहे थे।[2] जल से गीले चीर के चिपक जाने से दिखायी देने वाले सभी अंगो का लावण्य अत्यन्त रमणीक लग रहा था। झलकते अंगो को देखकर कामदेव युवकों को मदमस्त कर रहा था। स्त्रियों के जल से गीले वस्त्र स्वच्छता के कारण मानों दिखाई नहीं देते थे। वे निश्चित ही अपने को त्याग देने के भय से उनके शरीर की कांति में समा गये थे।[3] स्त्रियों के कोमल वस्त्रों से सुखाये गये शरीर अब कामदेव के उन तीक्ष्ण किये हुए शस्त्रों की भांति लग रहे थे जो मानो समस्त त्रिलेकी को जीतना चाह रहे हों।

उपरोक्त जल क्रीड़ा वर्णन में दम्पत्तियुगल आलम्बन विभाव है। मृगाक्षियों के कुसुमवत् लोभनीय अङ्ग–प्रत्यङ्गों का गीले वस्त्रों के बीच से झलकना उद्दीपन विभाव है। युवतियों द्वारा हाँथों से जल विक्षेप अनुभाव है। उन्नत जघन एवं कठोर पर्वत सदृश स्तन युगल वाली स्त्रियों के लावण्य को देखकर मदनातुर युवक अनायास आकृष्ट होने लगते है। आकृष्ट होना व्यभिचारी भाव है। इन विभावादि वर्णन से सहृदय में रतिभाव अभिव्यक्त हो रहा है और यही अभिव्यक्त रतिभाव श्रृंगार रस का पोषक है।

---

1. परिनिस्सरच्चटुलदृग्जघनोरसिजावलीरिततरङ्गतति।
   अभिनज्जलं झगिति कूलभुवः सहयानमाभिरभितन्वदिव।। ह0 म06/56
2. अत्युत्सुकत्वनिपतत्पदपातजातस्फीतध्वनिश्रुतिवियोजितपक्षिपक्षाः।
   अन्योऽन्यपाणितलताडनलब्धलक्ष्या नीरान्निरीयुरथ दम्पतयः सहेलम्। ह0म0 6/57
3. विलोक्यतां स्वच्छतयाऽबलानां जग्मुर्न वासांसि जलार्द्रितानि।
   ध्रुवं परित्यागभयेन तासां निलीय देहद्युतिषु स्थितानि।। 6/58

संभोग श्रृगार का चित्रण सप्तम सर्ग में भी किया गया है। इस सर्ग में संभोग श्रृंगार के रम्यरूप अंकित है जो पाठक को अकस्मात अनोखा अनुभव कराता है। मृगाक्षियों के रतिमन्दिरों में दीपक किस तरह सुशोभित हो रहे इसका वर्णन कवि ने उत्कृष्ठ रूप में किया है कमल नेत्रियों और अनेकों भोगों में लिप्त स्त्रियों के रतिमन्दिरों में दीपक ऐसे शोभा दे रहे थे कि मानों (विविध भोगयुक्त पुरुषों को) रतिगृहों में कमलनेत्रियों की सुरत विज्ञता की स्थिति के विवेक विधि में मानों दीक्षित हुये दीपक सब ओर सुशोभित हो रहे थे।[1] वस्त्र को खीचनें वाले प्रियतम के दोनों हाथ तरूणी ने लज्जा से पकड़ लिये फड़कते वचनों से स्वयं ही निर्वसना हुई। अचानक अब यह क्या कर सकती थी।[2]" तुम्हारा मुख कमल है और मेरा चन्द्रमा, तो इन दोनों का कामदेव द्वारा कराया गया मेल हो जावे" ऐसा कहते हुए प्रियतम ने अपना और प्रिया के मुख का संयोग कर दिया।[3] तुम्हारे और मेरे अधर पान करने वाले दोनों के ही किसी को भी व्याकुलता नहीं होवे " यह सोचकर दोनों ही वैसे ही शोभा देते थे जैसे कि वर और वधू दोनों ही अधरों का पान करते हो।[4] एकान्त में अपने मुख युगल के संगम होने पर दोनो – प्रिय प्रियतमा के मुख – मन्दिर के पान करने पर दो चन्द्रमाओं के ताप के लिए शीतलताप्राप्ति के लिए नायिका ने उदत्वरी (जल के लिये व्यग्रता करने वाली) होकर क्या वर्जना का कार्य धारण नहीं किया ? (अवश्य वर्जना की)[5]

---

1. प्रियसरोजदृशां रतविज्ञातास्थिति विवेकविधाविव दीक्षिताः।
   विविधभोगवतां रतमन्दिरे रुरुचिरे परितोऽपि दशेन्धनाः।। 7/29
2. विनयतो वसनं कमितुः करौ करयुगेन परा त्रपयाऽधित।
   स्वयमपि स्फुरितोद्घुषणैर्गलन्निवसना सहसाऽथ किमातत।। 7/63
3. तव मुखं कमलं मम चन्द्रमास्तदनयोरधुना स्मरकारितः।
   भवतु सन्धिरिति प्रवदन् परः स्वदयिताऽऽननयोजनमातनोत्।। 68
4. तब ममाप्यधरं निपिपासतोर्विधुरताऽस्तु न कस्यचनेत्यथ।
   विलसतः स्म तथा पपतुर्यथाऽधरदलं सममेव वधूवरौ।। 7/69
5. दयितयोर्मिथ एकमुखासवग्रहणलम्पटयोर्मुखसङ्गमे।
   द्विशशितापनिमित्तमुदत्वरी न किमुवाह विपर्ययवर्जनाम्।। ह0 म0 7/76

जघन भाग (पेडू से नीचे का भाग) के संगम के लिए उत्सुक मनवाली हृदयेश को जानकर मृगाक्षी का वस्त्र स्वयं अलग हट गया था। क्या गुणी लोग उचित आचरण करने में मूर्खता प्रदर्शन करते है।[1] यहाँ पर कवि ने श्रृंगार वर्णन में भी गुणी व्यक्तियों के अवसर पाने पर उचित आचरण करने को कितनी चतुराई से चित्रित किया है।

असहिष्णुता को तुरन्त दूर करने के लिये अन्य नायक ने उत्सुक होकर तरूणी के नीबीबन्ध को तोड़ दिया। कामदेव के अतिरेक होने पर के समय सहन कर सकता है ? (कोई नहीं सहन कर सकता)।[2] कालिदास ने भी अपनी कृति में लिखा है कि ज्ञातास्वादों विवर्त जघनां को विहातुं समर्थः। रतिरस का चखा हुआ कौन व्यक्ति है जो खुली जघनाओं वाली (स्त्री) को छोड़ने में समर्थ हो सकता हैं। रति कार्य समाप्त करने वाले अन्य नायक ने प्रिया के अधरों के रस को अच्छे रसायन की भाँति पीते हुए भी कामदेव के स्फुरण होने पर मन में जो आया वह क्या-क्या नहीं किया।[3] यहाँ संसार के सुरत से उत्पन्न सुख सर्वोत्तम एवं महान् सुख है। ऐसा एकान्त में अनुकूलता होना भी सुख है। इच्छानुसार एकान्त में कामकेलि भी तथा साथ साथ ही प्रेम भी हो तो फिर कहना ही क्या है।[4] यहाँ पर कवि नयचन्द्र ने सांसारिक सुखों में रतिक्रीड़ा को सर्वोत्तम सुख वर्णित किया है। रतिक्रीड़ा या कामदेव के स्फुरण में जितने सहायक कार्य है, उन सभी का कवि ने इतना उत्कृठता पूर्ण वर्णन किया है, मानों कवि स्वयं इसमें सिद्धहस्त थे। अधर चुम्बन में, कुचमर्दन में, नखों व दातों के क्षत करने में एवं आलिंगन करने में कही पर कामी जनों की बुद्धि सावधान व्यक्तियों की भाँति कुण्ठित नहीं होती।

---

1 जघनसंगमनोत्सुकमानसं हृदयनाथमवेत्य मृगीदृशः।
स्वयमपासरदेव तदंशुकं किमुचिताचरणे गुणिनोऽबुधाः।। ह० म० 7/80

2 असह आशु विदूरयितुं परो युवतिनीविमतित्रुटदुत्सुकः।
विषहते समुदीरितमन्मथो न खलु कश्चन कालविलम्बनम्।। 7/81

3. परिसमाप्तरतोऽपि परः प्रियाधररसं सुरसायनवत् पिबन्।
पुनरपि स्फुरिताऽसमसायको व्यधितं किम् किमसौ न हृदीप्सितम्।। 7/82

4. इह सुखेषु सुखं सुरतोद्भवम् महदिहापि मिथोऽप्यनुकूलता।
रहसि केलिरिहापि यदृच्छया सममिहापि रतिर्यदि किं पुनः। ह० म07/97

तरूणी ने शपथ पूर्वक प्रियतम को अत्यधिक काम क्रीड़ा के आघात के साथ सुरतव्यापार प्रदान किया किन्तु उसके पश्चात् सुरत रस को प्राप्त करके के नववधू उस शपथ को भूल गयी। अहो! कामदेव की क्रीड़ा की महिमा कैसी विचित्र है।[1] रतिकला को प्राणवल्लभ के करने पर मुँह मोड़ने वाली सुमुखी स्त्री ने "हूँ'हूँ" नहीं, नहीं "मेरा......." ऐसे वचनों के बहाने से कामदेव के उत्तेजक मन्त्र को मानों क्या याद नहीं किया ? (ऐसे शब्द आवश्यक कहे)।[2] निर्दयता से रति महोत्सव को रचने वाले नायक को नव प्रियतमा सुरत क्रिया से भी अधिक आनन्द दे रही थी क्योंकि वह अनवरत नाभि के निम्नस्थ भाग पर अपना हाथ लगा रही थी।[3]संभोग श्रृंगार रस के अन्य चित्र भी नयचन्द्र ने बड़ी पटुता के साथ चित्रित किया है– पलंग से उछल करके अन्य प्रियतमा ने रतिकार्य के अन्त में होने पर प्रियतमा का दृढ़ आलिंगन कर लिया। प्रियतम द्वारा भी पुनः आनन्द लेने की इच्छा करके (प्रिया) की देह में स्थित अनंगसर्वस्थ योनि को मसलना शुरू किया।[4]

---

1. प्रियतमस्य भृशं सुरतार्दने शपथपूर्वमदात् सुरतं पुरा।
   तदनु लब्धरसा न तदस्मरन्नववधूर्वपु रे! स्मरवल्गितम्।। हम्मीर महा07/94
2. रतिकलां कलयत्यसुवल्लभे किमपि कुञ्चिमुखी सुमुखी न वा।
   हह नमेति ममेति वचो मिषान्मदनदीपनमन्त्रमिवास्मरत्।। हम्मीर महा0 7/111
3. अपदयं दयितस्य रतोत्सवं रचयतो नतनाभिपथादधः।
   करतलं ददती मुदमातनोन्नववधूरधिकां सुरतादपि।। हम्मीर महा07/112
4. उत्प्लुत्य तल्पादितरा रतान्तें कान्तं भुजाभ्याम् दृढ़मालिलिङ्ग।
   आदातुकामेन तदङ्गयष्टेरनङ्गसर्वस्वमपि प्रपीड्य।। हम्मीर महा0 7/115

रति के समय जैसे–जैसे ही यह नवोढ़ा प्रिया कठोर अंग करती थी, मैं शंका करता हूँ कि वैसे–वैसे ही मन को प्रिय लगने वाला–प्रियतम भी कठोर चित्त धारण करता था। अन्यथा ''नहीं नही'' 'छोड़ो–छोड़ो' 'हाय–हाय' ऐसा शब्द बार–बार बोलने वाली इस प्रियतमा की करूण बात को नायक की जवानी कैसे प्राप्त करती।[1] कामदेव के विषैले बाणों से प्राप्त मानो बड़ी मूर्छा को दूर करने के इच्छुक किसी नायक ने पर्वतों के समान स्थित दोनों स्तनों को पकड़ लिया था और चन्द्रमुखी तरूणी के मुख चन्द्र की सुधा को मानों पी लिया था।[2] "जिसका (नायक का) अंग बाहर ही स्पर्श करने पर स्त्रियों के लिये ऐसा आनन्द देता है, तो वह मध्य में प्रविष्ट होकर कैसा सुख देगा" ऐसा सोचकर कातर चक्षुवाली भयभीत तरुणियाँ रतिकार्य के अन्त में दृढ़तम् आलिङ्गन देकर के समस्त शरीर को ही समर्पित कर देना चाहती थी।[3] सूर्य के संचरण करने पर समस्त विश्व जैसे सरसता को (कोमलता को) प्राप्त कर लेता है वैसे ही मैं मानता हूँ कि रति के संगम के स्त्रियों के स्तन भी कोमलता को धारण कर लेते थे। ऐसा नहीं होता तो रति कार्य के अन्त में बड़े पर्वत की भांति कठोर स्तनों पर विश्राम करने वाले प्रियतम लोग कण–कण क्यों नहीं हो जाते। उपर्यक्त वर्णन में (नायक नायिका) युवक युवतियाँ आलम्बन विभाव है। मुख–मदिरा का पान मदमस्त युवतियों का वस्त्र हटना, मतवाले होकर नेत्र विक्षेप आदि अनुभाव है।

---

1. दध्रेऽङ्गानि यथा यथाऽतिकठिनान्येषा नवोढ़ा रते।
   शङ्केऽधत्त तथा तथाऽतिकठिनं चेतोऽपि चित्तप्रियः।
   मा मा मा न न मुञ्ज मुञ्ज हहहेत्युल्लापवत्यां मुह–
   स्तस्यां नो कथमन्यथाऽस्य करूणं तारूण्यमासादयत्।। 71/116
2. कोऽपि स्मरोन्मुक्तविषाक्तबाणमूर्च्छामतुच्छामिव हर्तुकामः।
   शैलाविवालम्ब्य कुचौ कराभ्यां पपौ सुधामिन्दुमुखीमुखेन्दोः।। 7/119
3. यस्याङ्गं तावदेवं बहिरपि विहितस्पर्शनं कामिनीना–
   मीदृक्सौख्यं विधत्ते स खलु रचयिता किं न मध्ये प्रविष्टः।
   इत्थं ध्यात्वा रतान्ते सुदृढ़तमपरीरम्भदम्भेन मध्ये
   कायं प्रक्षेप्तुंमैच्छन् सकलमिव हि तं कातराः कातराक्ष्यः। 7/123

चुम्बन, कुचमर्दन, नख, दन्तक्षय, योनिमसलना आदि अनुभाव है। लज्जा, हास, प्रसन्नता आदि व्यभिचारी भाव है। इन विभावादि वर्णन से सहृदय हृदय में रतिभाव अभिव्यक्त हो रहा है यही अभिव्यक्त रतिभाव संभोग श्रृंगार रस है।

एक अन्य प्रसंग संभोग श्रृंगार का है। युवक युवतियों के राग में आबद्ध है उनके ऊपर प्रकृष्ट राग उत्पन्न हो गया है, जिससे युवक युवतियाँ के ऊपर अपना हाथ फेर रहे (चला रहे) है जिससे स्त्रियाँ निश्चय ही परमानन्द को प्राप्त कर रही है। कभी मान व अमान में, किसी क्षण तिरछी नजरें फेकनें में, कभी हास उल्लास में, तथा किसी क्षण दृढ़आलिङ्गन में युवक लोग व्यस्त रहे। प्रत्येक गृह में प्रसन्न मानस से रतिक्रिया के उत्साह वाले युवकों ने समस्त रात्रि बिता दी।[1] प्रिय तथा प्रियतमा के परस्पर चुम्बन करने पर मानों मुख रूपी चन्द्रमाओं के मिलने के बहाने से क्या दो सुन्दर दीप्ति वाले चन्द्रमा तुरन्त उदित नहीं हो गये ? इसी से कामदेव के द्वारा उत्पन्न महान युद्ध हुआ, प्रीति वही बड़ी होती है जब दोनों क्षेत्रों में अनन्यता होती है।[2] कामदेव की हसीन क्रीड़ाओं में शय्या से नीचे गिरे हुए प्रसून ऐसे शोभा दे रहे थे मानों वे मृगाक्षी के शरीर से अलग होने के भाव प्रकट होने के दुःख से छलांग लगा रहे थे।[3] युवकों के लिए रति कार्य में व्यस्तता के कारण नींद का सुख तो क्षण भर का ही रहा क्यों कि वे आपस में अधर पान में व्यस्त रहे थे।,

---

1. क्षणं मानेऽमाने क्षणमथ मिथः काक्षकषणे।
   क्षणं हासोल्लासे क्षणमथ दृढ़ालिङ्गनविधौ।।
   इति व्यग्रा निन्युः प्रतिगृहमशेषामपि निशां।
   रतोत्साहैस्तैस्तैः समुदितमुदस्ते युवजनाः।। 7/125
2. दम्पत्योर्वदनेन्दुसङ्गममिषात तथ्यं मिथचुम्बने।
   किं नैवाश्युदगच्छदच्छरुचिभृत् सद्यः शशाङ्कद्वयम्।।
   आसीत तेनमहाहवः स्मरभवो यद्युक्तमेवेति तत्
   प्रीतिर्यच्च परैव युक्तमपि तद् यत् क्षेत्रयोरन्यता।। 7/117
3. स्मरस्मेरलीलासु तल्पादधस्तात् प्रसूनानि बभ्राजिरे निष्पतन्ति।
   मृगाक्षीवपुर्वल्लिविश्लेषभावाविरासीन दुःखाद् ददन्तीव झम्पाम्।। 7/122

निःशंक होकर नखक्षतों को विभूषण बना रहे थे और संभोग के कारण श्रमित होकर थक गये थे।[1] प्रिय एवं प्रियतमा–दोनों युवजनों की स्वाभाविक वीरव्रत की पराकष्ठा कामदेव ने देखी क्योंकि वे परस्पर दाँतो, नखो तथा मुख से निर्गत वाक्यों के उच्चारण से मानों वीर कार्य कर रहे थे, तो शंकर भगवान के घमण्ड को चूर करने के कार्य के लिये निश्चिंत हो गया और मैं मानता हूँ कि इसी कारण से उसने चिरकाल तक निद्रा का आश्रय ले लिया।[2] यदि यह "श्रृंगार सज्जीवन" नामक वीर हम्मीर काव्य का सप्तम सर्ग यदि आपने नहीं सुना तो सब कुछ व्यर्थ है जिसमें स्पर्शानुकूल तथा मुख रूपी चन्द्रमा की शोभा वाली शय्याएँ है, नासिका को सुगन्ध से पूर्ण करने वाले ताम्बूल है, विकसित पुष्पों के हार है, पति से श्रमित तरूणियाँ है और इस सर्ग में स्तनों के द्वारा वक्षस्थल पर बाधाओं का निर्माण भी किया गया है। इस प्रकार षष्ठ सर्ग एवं सप्तम सर्ग में संभोग श्रृंगार के समुचित रूप उपस्थित किये गये है। द्वितीय सर्ग में 69 आदि श्लोकों में हम्मीरदेव प्रभृति पूर्वज वर्णन में स्त्रियों की चेष्टाये दिखायी गई है किन्तु सम्पूर्ण विभावादि का परिपाक नहीं है। अतः उसको नहीं व्यक्त किया गया। हम्मीर महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग के 'काव्यकर्त्ता की प्रशास्ति' शीर्षक में हम्मीर काव्य के प्रणेता श्री नयचन्द्र सूरि ने श्रृंगार रस को श्रेष्ठ रूप में वर्णित किया तथा यह भी चित्रित किया है –

---

1. अन्योऽन्यमर्पितरदच्छदखण्डानानां निःशङ्कनिर्मितनखक्षतमण्डनानाम्।
   संभोगसंभवपरिश्रमखेदितानां निद्रासुखं क्षणमभूद् रतमेऽथ यूनाम्।। 7/126
2. अन्योऽन्यप्रवितीर्णदन्तनखरप्रोद्यत्पदव्यञ्जनै–
   यूँनोवीक्ष्य परां स्थितिं गतवतो निर्व्याजवीरव्रते।
   कन्दर्पोऽपि गिरीशदर्पदलने निश्चिन्तताुद्वहन्
   आशिश्राय चिराय सङ्गसुभगां निद्रां विशङ्के तदा।। 7/127
3. तूलं स्पर्शानुकूलं मुखशशिरूचिरश्रीसमाकृष्टिमूलं
   ताम्बूलं नासिकाया व्रतसुकृतफलं स्फारपुष्पोपहारः।
   कान्ता श्रान्ता स्तनाभ्यामुरसि खिलमिदं न श्रुतः सप्तमश्चेत्
   सर्गः श्रृंगार सज्जीवन इति विदितो वीरहम्मीरकाव्ये।। 7/128

कौन और कब यनि किस अवस्था में रस का संचार करते है इसको यहाँ पर व्यक्त करना अतिशयोक्ति नहीं होगा।

रस कोई सा भी हो, किन्तु श्रृंगार रस को जो स्पर्श नहीं करें, वह शब्दावली रस उत्पन्न नहीं कर सकती, क्योंकि पाक रस की कुशलता होने पर भी लवण विहीन भोजन सुस्वादु नहीं हो सकता।[1] कविता, वनिता (स्त्री) और गीत ये सब प्रारम्भ में प्रायः रस प्रद नहीं होते किन्तु सबके सम्मुख इनका भाव समझ लेने पर ही ये सब रस की वर्षा करने लगते है।[2]

1. रसोस्तु यः कोऽपि परं स किञ्चिन्नास्पृष्टशृङ्गाररसो रसाय।
   सत्यप्यहो पाकिमपेशलत्वे न स्वादु भोज्य लवणेन हीनम्।। 14/36
2. कविता बनिता गीतिः प्रायो नादो रसप्रदाः।
   उग्दिरन्ति रसोद्रेकं ग्राह्यमानाः पुरः पुरः।। 14/37

विप्रलम्भ श्रृंगार –

विप्रलम्भ श्रृंगार वह है जिसमें नायक नायिका का परस्परानुराग तो प्रगाढ़ हुआ करता है किन्तु परस्पर मिलन नहीं होने पाता।[1]

हम्मीर महाकाव्य में कवि नयचन्द्र ने श्रृंगार रस के भेदों में यदि संयोग श्रृंगार को स्थान दिया है तो विप्रलम्भ (वियोग) श्रृंगार रस को कम स्थान नहीं दिया, क्योंकि श्रृंगार रस में जितना कहीं आनन्द है उससे कई गुना अधिक आनन्द विप्रलम्भ श्रृंगार में है और रसशास्त्र के आचार्यो ने कहा भी है कि "न बिना विप्रलम्भेनश्रृंगार पुष्टिमश्नुते।" इसी वियोग के कारण ही व्यक्ति बड़ी बड़ी कामनायें व विचार व्यक्त करते है। काव्य की रचना करते है, जो हर सहृदय के लिये आस्वाद्य होता है और अमिट प्रभाव डाले बिना व्यक्ति को नहीं छोड़ती। विप्रलम्भ ही श्रृंगार रस का पुष्प हैं, इसकी महत्ता सर्वतः प्रशंसनीय है। कवि नयचन्द्र ने भी अपने ग्रन्थ के द्वितीय अष्टम एवं त्रयोदश सर्ग के कुछ श्लोकों में विप्रलम्भ श्रृंगार का वर्णन किया है।

---

1. **यत्र तु रतिः प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भौऽसौ।**
   साहित्यदर्पण 3/186

जो बहुत ही कम मात्रा में है। विरहिणी स्त्रियों को शीतलता प्रदान करने वाली सभी वस्तुएँ चन्द्रमा, चन्दन जल आदि ताप प्रदान करते है। आनल्लदेव नामक नृपति के डर से शत्रु पलायन कर जाते है तो उनकी स्त्रियों की क्या दशा होती है? उसी का वर्णन कवि ने यहाँ पर किया है– डरे हुए पति के द्वारा छोड़ी गई शत्रु नारी अपने ही देश में रात्रि में चन्द्रमा की शीतलता में विरह की तीब्रता होने के कारण अपने आपको दूसरे द्वीप में स्थित सी ही प्रतीत कर रही थी या मानती थी।[1]

विप्रलम्भ श्रृंगार का दूसरा उदाहरण यहाँ पर वर्णित है –

विरहिणी स्त्रियों के नेत्रों से निकली बिजलियों से मानों चारो ओर प्रकाशित आकाश को छोड़कर यह चन्द्रमा अब अस्ताचल की चोटी पर जा रहा था।[2] विरहिणी स्त्रियों के नेत्र से अश्रु प्रवाह अत्यधिक हो रहा था, इसको कवि ने बड़े ही उत्कृष्ट रूप में चित्रित किया है – विरहिणियों के नेत्र और आकाश में स्थित बादलों के समूह आपस में स्पर्धा करते हुए अधिकाधिक बरस रहे थे।[3] कैसी अद्भुत बात थी कि, सघन रूप से बादल खूब पानी बरसा रहे थे और बिरही स्त्रियों का लावण्य गल रहा था।[4]

यहाँ पर स्त्रियाँ आलम्बन है। चन्द्रमा की चर्चा, अश्रुप्रवाह आदि का लुप स्त्रियों का लावण्य गलना आदि उद्दीपन विभाव है। यद्यपि कवि ने इस कृति में वियोग श्रृंगार को अधिक अवसर नहीं प्रदान किया है, किन्तु प्रसंग प्राप्त स्थलों में उसकी अभिव्यक्ति स्वाभाविक और वैशिष्य पूर्ण ढंग से किया है।

---

1. त्रस्तेन पत्याऽर्धपथे विमुक्ता स्थिताऽपि यद्वैरिवधूः स्वदेशे।
   शीतद्युतेस्तीव्रतया नवं स्वं द्वीपान्तरं प्राप्तममंस्त किञ्चित्।। ह0 म0 2/50
2. वियुक्तनारीजननेत्रपातोल्काभिः समन्तादिव दीप्यमानम्।
   विहाय शीतांशुरसौ विहाय आसीदपूर्वाचलचूलचुम्बी।। ह0 म0 8/3
3. वियोगिनीनां नेत्राणि व्योम्न्यभ्रपटलानि च।
   मिथः स्पर्धां दधन्तीव वर्षन्ति स्माधिकाधिकम्।। ह0 म0 – 13/57
4. किरत्यसूचीसंचारा धारा वारिधरे भृशम्।
   वियोगिनीनां लावण्यं जगालेति किमद्भुतम्।। ह0 म0 – 13/58

रौद्र रस

रौद्र रस वह रस है जिसका स्थायी भाव क्रोध हुआ करता है। विरोधयों के प्रति जो हृदय में तीक्ष्णता या प्रतिशोध की भावना है वही क्रोध कहलाता है।[1]
इसका आलम्बन शत्रु होता है, शत्रु की चेष्टायें उद्दीपन होती है तथा भयंकर मार काट आदि संग्राम के वातावरण से इसकी विशेष रूप से उद्दीप्ति होती है। भुजाऐं ठोकना, शस्त्रोत्क्षेपण, उग्रता, कम्प, मद, रोमाञ्च आदि इसके अनुभाव है। मोह, अमर्ष आदि इसके व्यभिचारी भाव है। आलोच्य ग्रन्थ में भी रौद्र का वर्णन तृतीय, दशम, एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश सर्गो में किया गया है। शहाबद्दीन द्वारा पीड़ित सभी नृप पृथ्वीराज के पास जाकर जब शहाबद्दीन के कृत्यों को बताया तब हम्मीरदेव किस तरह क्रोध से उबल पड़ते है। इसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है– इस प्रकार की मुनियों को भी क्रोधित कर देने वाली, इस "चन्द्रराज" की वाणी सुनकर राजा पृथ्वीराज ने करकमल से तलवार की मूठ छूकर और अपनी दाढ़ी पर हाँथ फेरकर यह प्रतिज्ञा की, कि यदि मोर की तरह बाँधकर इस शहाबुद्दीन को तुम्हारे चरणों में मैने नहीं डाल दिया तो मैं "चाहमान" (चौहान) वंश में पैदा नहीं हुआ। हस्तविहीन कोई योद्धा तो क्रोध के वशीभूत होकर दांतो से युद्ध कर रहा था। भयंकर दांतों से क्रोध से मारने को आते हुये हाँथी को एक अन्य हस्तद्वय विहीन योद्धा दाँतो से काटकर युद्ध कर रहा था।[3] चक्की में चनों की भाँति पिसते अपनी अवस्था को देखकर, तब शकराज शहाबुद्दीन अपने उजड़े हुए शिविर को देखकर हाँथ में तलवार लिये हुये प्रचण्ड क्रोध से भरकर उधर दौड़ा।

---

1. प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यतेः। सा०द० 3/177
2. इत्येतदीयां विनिशम्य वाचं वाचंयमानामपि कोपकत्रीम्।
   आकृष्य कूर्चं तरवारिमुष्टिपटिष्ठताभात् करवारिजेन।। हम्मीर महा० 3/14
   मयूरबन्धेन निबन्ध्य नैनं पादारबिन्दे यदि वः क्षिपामि।
   जातोऽन्वये तर्हि न चाहमाने इति प्रतिज्ञामकरोन्नरेशः।। हम्मीर म० 3/15
3. हन्तुं क्रुधा दन्तिनमापतन्तमरून्तुदाग्रैर्युधि दद्भिरेव।
   प्रत्यर्थिना लूनभुजद्वयोऽन्यो दशन् प्रतेने नवयुद्धलीलाम्।। ह० म० 3/34

उसे आते देखकर चौहान राजा भी अन्तर में चमकती क्रोधाग्नि के कारण लाल–लाल आँखों वाला तीब्र वेग से उसकी ओर दौड़ा।[1] जिस–जिस शक योद्धा ने क्रोध के वशीभूत होकर, जिस–जिस भी अंग को बाहर निकाला, उस उस अंग को ही काट देने वाले चौहान वीर किसके लिये कोतुक की वस्तु नहीं थे। (सब उन्हे आश्चर्य से देखते थे)।[2] भोजदेव नामक योद्धा ने जब अल्लावदीन से बताया कि चाहमान योद्धा महिमासाहि जगरा नगरी को नष्ट करके और कुटुम्ब समेत उसके राहोदर को बाँधकर ले गया, तो इसके वचनों को सुनकर क्रोध से उसके अधर काँपने लगे, वह प्रतिक्षण अपने हाँथों से अपने सिंहासन को दायें – बायें सरकाने लगा, अपने साफे को उठाकर उसने पृथ्वी पर फेंक दिया और वह म्लेछराज इस प्रकार से कहने लगा।[3] "यदि हम्मीर पाताल में भी प्रवेश कर जायेगा तो मैं उसे भूमि खोदकर ले जाऊँगा। यदि वह स्वर्ग में चला जायेगा तो उसे मैं इन्द्र समेत आगे गिरा दूँगा। यदि उसने मेरी भुजाओं की वीरता संग्राम में आँखों से नहीं देखी तो क्या वह कहीं पर कानों से नहीं सुना।[4] (अर्थात अवश्य सुनेगा)।

---

1. तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य चाहमानोऽप्यधावद् धृततीब्रवेगः।
   अन्तः स्फुरत्क्रोध कृशानुकीलानुकारिरागारुणदारुणाक्षः।। ह0म0 3/40
2. निष्कासयामास रणाय यो यः शकः क्रुधान्धो युधि यद् यदङ्गम्।
   तत् तल्लुनानाः किल तस्य तस्य न चाहमानः कुतुकांय कस्य।। ह0 म0 10/47
3. तद्वाक्यश्रवणादथ प्रसृमरक्रोधप्रकम्पाधरो
   वाहुष्टम्भनमासनं प्रतिलबं सव्यापसव्ये नयन्।
   प्रत्युत्क्षिप्य शिरोवतंसमवनीपीठे तथाऽऽस्फालयन्
   चक्रे काव्यपरम्परामिति तदा क्लेच्छावनीवल्लभः।। ह0 म0 10/79
4. पाताले प्रविशत्यसौ यदि तदा नूनं खनित्वा ददे
   स्वर्ग चेत् समुपैति सैन्द्रमपि तं संपातयाम्यग्रतः।
   दृग्भ्यां चेद् ददृशे न सङ्गरभरे मद्दोर्द्वयीविक्रमः।
   कर्णाभ्यामपि शुश्रुवे किममुना तर्हि क्षितौ न क्वचित्।। ह0म0 10/85

अल्लावदीन का दूत जब हम्मीर के पास आकर यह कहता है कि तुम्हारी राज्य भोगने की इच्छा है तो एक लाख स्वर्ण मुद्रा, चार मदमत्त हाँथी, तीन सौ घोड़े और भेड़े तथा अपनी पुत्री को देकर हमारे आदेश को शिरोधार्य करें, तब हम्मीरदेव इन वचनों को सुनकर भयंकर भृकुटी धारण करने वाले और भयंकर रूप से क्रुध हुए राजा हम्मीर ने ऐसे वचन बोले जैसे कि विषबेल के पुष्पों पर भौंरे गुञ्जन करते हों।[1] (विषयुक्त वचन बोला)। जिस प्रकार से आप किसी प्रकार से यहाँ आये हैं, वैसे ही यदि आप वशिष्ठ युक्ति से नहीं होते (दूत नहीं होते) तो जिस जीभ से आपने, यह वचन उच्चारण किये उसे तुरन्त ही निकाल लेता।[2] फेंकी हुई राल के कारण गंदे एवं गर्म–गर्म तेल के कारण जलते हुए केशों के बहाने से शको की क्षत्रियों पर, उमड़ी हुई क्रोधाग्नि ह्रदय में नहीं समाती हुई मानों बाहर निकल आयी थी, ऐसी मुझे शंका है।[3] वीर पुरूष कभी भी अपने अपमान को विस्मृत नहीं करते और वे अपने पराजय का बदला वक्त आने पर अवश्य लेते है। शक अधिपति अपने भ्राता निसुरत खान की मृत्यु का समाचार पाकर क्षत्रियों से बदला लेने के लिए निकल पड़ता है– इसे देखकर शोकाविभूत होकर शत्रु द्वारा किये गये समस्त अपमान (पराजय) सुनकर क्रोध से काँपता हुआ युक्तिपूर्वक निसुरतखान का समस्त अन्तिम कृत्य करके, वह यवनों का एक मात्र अधिपति अल्लाबद्दीन शीघ्र ही रणयम्भौर की ओर चल दिया। वीर लोग शत्रु द्वारा किये किसी अपमान को क्या कभी सहन नहीं करते है? कदापि नहीं।[4]

---

1. इत्येतदीयानि वचांसि भूपः क्षुत्वाऽथ भीमां भृकुटीं दधानः।
   नवोल्लसत्क्रुध्विषवल्लिसूनद्विरेफलीलाक्षरमित्युवाच।। ह0 म0 11/63
2. वशिष्टयुत्त्क्या यदि नाभविष्यदाजग्मिवानत्र भवान् कथञ्चित्।
   तदा त्वयाऽगादि ययेदमर्वाग् जिह्वां ध्रुवं तां निरकासयिष्यम्।। वही 11/64
3. प्रक्षिप्तरालाविलतप्ततैलसंगज्वलत्कुन्तलकैतवेन।
   क्षत्रेषु कोपाग्निरमानिवान्तः शङ्के शकानां बहिरुल्ललास।। ह0 म0 11/90
4. एतद् वीक्ष्याप्तशोकः श्रुतरिपुजनिताशेषतत्तन्निकारः
   कृत्वा तस्यान्तकृत्यं निखिलमपि यथायुक्तिकोपप्रकम्पः।
   वेगादागादमुत्र स्वयमथ यवनैकावनोऽल्लावदीनो
   वीरंमन्याः सहन्ते रिपुजनजनितं क्वापि किं वा निकारम्। 11/103

उपर्युक्त वर्णन में योद्धागण आलम्बन है, तथा उनके द्वारा किये गये कार्य उद्दीपन है और मुख मण्डल पर लीला दौड़ाना, आँखे लाल करना, अधरों का काँपना, साफे को उतार कर भूमि में फेकना, भौहे चढ़ाना, आँखे तरेरना, दाँत पीसना, तलवार की मूठ छूना, दाढ़ी पर हाथ फेरना आदि अनुभाव है। उग्रता, अमर्ष, उद्वेग, असूया, श्रम, आवेग आदि संचारी भाव है। क्रोध स्थायी भाव पुष्ट होकर रौद्र रस की व्यञ्जना कर रहा है।

रौद्ररस के कुछ और प्रसंग महाकाव्य में आये है जिनका वर्णन कवि ने बडी प्रौढता के साथ किया है किसी वीर का तना हुआ धनुष रणभूमि में क्रोध युक्त आँखों की लाल–लाल द्युति आवलि से युक्त होता हुआ ऐसा शोभा दे रहा था, मानों वह अग्नि कुंण्ड़ हो और उसने शत्रुरूपी पशुओं का हवन करते हुए वह जय श्री की प्राप्ति का प्रयत्न कर रहा है।[1] क्रोध के कारण दौड़ाये हुये रथ के पहिये के टूटने पर टुटे हुए अस्थि पंञ्जर की भाँति शब्दो के साथ पहिये मेरे जीवितं रहते हुये ही क्यों घूम रहे है? ऐसा विचार कर अन्य योद्धा गिरकर मर गया।[2] जब शकाधीस अल्लावदीन हम्मीरदेव के दुर्ग पर अपना अधिकार नही कर सका तो वह क्रोध से तिलमिला उठा। उपर्युक्त वर्णन मे रौद्र रस का संचार दृष्टब्य है ।

1. क्रोधारूणेक्षणरूचीचयाचितं कस्यापि कृष्टमरूचद् धनूरणें।
   कुण्ड हविभुज इव स्फरज्जयश्रीकृष्टये रिपपशून् जुहूषतः।। ह0 म0 12/76
2. क्रोधप्रधावितरथाङ्घ्रिमर्दनात्, त्रुट्यत्करङ्कसविकाशशब्दितैः।
   जीवत्यहो मयि कथं भ्रमन्त्यमी इत्यन्वशेत पतितः किलेतरः। ह0 म0 12/77

<u>वीभत्सः रस</u>

वीभत्स वह. रस है जिसे जुगुत्सा के स्थायी भाव का अभिव्यञ्जन माना जाता है। जहाँ व्यक्ति किसी वस्तु, स्थान की विशेष घटना देखकर घृणा करता है, वहीं वीभत्स रस का भान होता है। शव, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि आदि वस्तुओं के वर्णन करने मे कवि को घृणा हो या न हो, पर पाठकों को इनके स्मरण या कल्पना से घृणा होती है। इन पदार्थो से मानसिक जुगुत्सा तो होती है, पर एक विशेष प्रकार के रस का संचार होता है। नयचन्द्र कृत हम्मीर महाकाव्य में वीभत्स रस का समायोजन दशम्

द्वादश एवं त्रयोदश सर्ग के कुछ श्लोकों में किया गया है। युद्ध भूमि में योद्धाओं के कटे हुये अंग किस तरह सुशोभित हो रहे थे, इसी का वर्णन कवि ने अद्‌भुत रूप से किया है। संसार को रचने वाले विधाता की निर्माण–शाला की भाँति ही युद्धभूमि शोभा दे रही थी जिसमें कहीं सिर, कहीं चरण–कमल, कहीं हाँथ, तो कहीं भुजायें बिखरी पड़ी थीं।[1] शत्रु के बाण समूह लगने से अनेक घाव होने के कारण पागल हुये हाँथी के कुम्भ स्थल से रक्त धाराएं निकल रही थीं और उसकी मदधाराएं भी निकल कर मानो परस्पर स्पर्धा कर रही थीं।[2] किसी योद्धा की भयंकर तलवार से कटे हुये पेट के नीचे गिरती हुई आँतें ऐसी मालूम होती थी, मानो उस मृत योद्धा को स्वर्ग ले जाने के लिए तुरन्त ही अप्सराओं द्वारा पाशों का समूह फेंका गया हो।[3] किसी योद्धा की भुजा को काटकर भाले के घावों से निकली रक्त की शोभा देखने से ऐसा मालुम होता था, मानो वीर श्री के द्वारा वीरवरों के ऊपर नये कुंकुम की राशि छिटक दी गई हो।[4] योद्धाओं की युद्धस्थली कहीं पर तो छत्रों के कारण श्वेत कमल युक्त, कहीं पर (कटे) हाँथों (गिरे होने) के कारण पत्तों से युक्त, तो कहीं कटे बालों के (बिखरे होने के) कारण शैवालयुक्त सी शोभा देती थी।[5]

---

1. क्वचिच्छिरोभिः क्वचिदंङ्घ्रिपद्मैः क्वचित् करैः क्वापि च बाहुदण्डैः।
   आरेचिता संङ्गरभूरराजन्निर्माणशालेव जगद्विधातुः।। हम्मीर महा0 10/55
2. लग्नारिबाणगणसम्भवद्व्रणश्रेणिप्रमत्तकरिकुम्भमण्डलात्।
   धारा निपेतुरसृजो मदस्य च स्पर्धां दधत्य इतरेतरामिव।। हम्मीर महा0 12/65
3. कस्याप्युदग्रतरवारिदारितादन्त्राणि रेजुरुदरात् पतन्त्यधः।
   आदातुमेकपदमेव तं दिवः क्षिप्ताः सुरीभिरिव पाशपङ्क्तयः।। हम्मीर महा0 12/66
4. उत्पाट्य बाहुमभिसन्निवेशात् कुन्तव्रणोच्छलितशोणितच्छटाः।
   वीरश्रियेव नवकुङ्कुमच्छटा दत्ता भटोरुषु विरेजिरेतमाम्।। हम्मीर महा0 12/68
5. छत्रैः सिताम्बुजमयीव कुत्रचित् कुत्रापि पल्लवमयीव पाणिभिः।
   कुत्रापि शैवलमयीव कुन्तलैर्भ्रष्टैर्बभौ रणभृतां रणावनिः।। हम्मीर महा0 12/81

कदम–कदम पर वीरों द्वारा रणभूमि में मारे हुए और गिरे हुये हाँथी ऐसे शोभा देते थे मानो सेतु निर्माण के लिए हनुमान जी के द्वारा लाये हुए पर्वत भार के कारण आधे रास्ते में ही छोड़ दिये गये हों।[1] एक हजार योद्धा यहाँ पर मर गये हैं– ऐसा सोचकर दोनो हाँथो की अगुलियों से एक योद्धा जिसका कि सिर शत्रुवीरों के द्वारा काट दिया गया था ने नृत्य क्रिया शुरू कर दी।[2] जिस सुरंग मे अल्लावदीन के सैनिक प्रविष्ट हुए थे उस सुरंग मे चौहान राजपूतो ने तोप के गोलों से आग लगा दी और सुरंग मे जलते लाख और तेल की राशियाँ फेकी तो समस्त शत्रु सैनिक जल भुन गये इसी को कवि ने यहाँ पर चित्रित किया है– उस तेल के सुरंग मे भर जाने से शत्रु के योद्धा वैसा ही उछलने लगे जैसे कि जलते पानी से पूर्ण तालाब मे मछलियाँ उछलती (तड़पती) है।[3] उस तप्त तैल से सब अंङ्गो मे जले हुए योद्धा लोग (शत्रु के) गर्म लोहे के गोलों की भाँति हो गये थे जो कि क्षण भर के लिये लाल हो जाते है और फिर क्रमशः काले हो जाते है।[4] रक्त के तालाब में शिशुओं के और स्त्रियों के भी तैरते हुये शीशों को देखकर राजा (हम्मीरदेव) मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ें।[2]

---

1. वीरैर्निहत्य विनिपातिता रणक्षोणौ बभुः करिवराः पदे–पदे।
   सेतोः कृते हनुमतैव चालिताः शैला इवार्धपथ उज्झिता भरात्।।
2. जग्मुर्मृतिं दशशतानि भटा इहेति जल्पन्निवातत करद्वितयाङ्गुलिभिः।
   नृत्यक्रियामभजतैकतरः प्रवीरः काबन्धिकीमहितवीरविलूनमौलिः।।
3. तेन तैलेन पूर्णायां सुरङ्गायां द्विषद्भटाः।
   उदच्छलन् यथा मीनाः सरस्यां ज्वलदम्भसि।।
4. तत्तैलदग्धसर्वाङ्गा बभूवुर्द्विषतां भटाः।
   क्षणारुणक्रमश्यामतप्तायोगोलसन्निभाः।।
5. असृक्पूरे शिरांसीह शिशूनां योषितामपि।
   तरन्त्यवेक्ष्य मूर्च्छालः क्ष्मापालः क्ष्मातलेऽपतत्।।

हम्मीर महा0 12/84, 85, 13/43, 45, 161

राजा के द्वारा बीच–बीच में से काटे हुये, पृथ्वी पर पड़े हुए, वैरियों के सिरों से रण क्षेत्र ऐसा मालुम हो रहा था मानो वह काटे गये तिलों वाला यमराज का क्षेत्र हो।[1] उपर्युक्त वर्णन में मांस, रक्त का बहाव, आँतो का निकलना आलम्बन है। कटे विखरे हुऐ शिर, हाथ, पैर आदि अङ्ग विभाव है। ऐसे दृश्य को देखकर आँख बन्द कर लेना, थूंकना, मूर्छित होना, मुंह फेरना आदि इसके अनुभाव है। मोह, अपस्मार, आवेग, व्याधि, मरण आदि इसके व्यभिचारीभाव हैं। कवि ने जुगुप्सा के स्थायीभाव का संयोजन कर वीभत्स रस को पूर्णतः अभिव्यक्ति की है।

1. नृपेण मध्यतश्छिन्नैर्भूगताग्रैर्द्विषच्छिरैः।
   रणाङ्गणमभाल्लूनतिलक्षेत्रमिवान्तकम्।। हम्मीर महा0 13/220

करुण रस

करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय वस्तु के नष्ट हो जाने से जो चित्त की व्याकुलता होती है, वही शोक कहलता है।[1] महाकवि भवभूति के मतानुसार करुण रस ही एक मात्र रस है–

एकोरसः करुण एव निमित्तभेदाद, भिन्नः पृथक पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद बुद तरङ्गमयान् विकारानम्भो यथा सलिलमेवतु तत्समस्तम्।।

कवि नयचन्द्र ने भी हम्मीर महाकाव्य के तृतीय, आठवें, ग्यारहवें एवं तेरहवें सर्ग के कुछ श्लोकों में करुण को अभिव्यंजित किया है। तृतीय सर्ग में चौहान राजा हम्मीर–देव को म्लेच्छराज, 'सहाबद्दीन' पकड़कर किले में बन्द कर देता है तो सज्जनों का समूह किस तरह अश्रुप्रवाहित करते है, यह निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है। तब वीर लोग लज्जा के मारे पृथ्वी मे नजर गड़ाये हुये हैं एवं सज्जनों के समूहों के आँसू बहाने एवं शोक करते हुये कह रहे है।

---

1. 'इष्टनाशदिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकशब्दभाक्'। सा0द0 3/177
2. वीरेन्द्रेष्वथ दत्तदृष्टिषु धरापीठे ह्रिया साक् सतां
   सान्द्राश्रुस्रुतिसिक्तशोकलतिकाकन्देषु वृन्देषु च।
   आनीयैष नृपं तमुग्रतररुद् दुर्गान्तरेऽचीचयत्
   कार्याकार्यविचारणान्धबधिरा हा! हाऽधमाः सर्वतः।। ह0 म0 3/71

इस "सहाबद्दीन" म्लेच्छराज नें पृथ्वीराज को दूसरे किले में बन्द कर दिया हाय! हाय! नीच लोग करणीय अथवा अकरणीय कार्य के लिए अंधे व बहरे हो जाते है। नायक हम्मीरदेव के पिता श्री जैत्रसिंह की मृत्यु हो जाती है, जिससे दुखी होकर हम्मीरदेव रुदन करता है। उस समय हम्मीरदेव के कण्ठ के लिये हा! हा! इस प्रकार के वचन आंखों के लिये आंसू, कपोल के लिये हथेंलियों का कोश और चित्त के लिये शोक ही शरंण था।[1] दूसरे दिन युद्ध में शकों के गोले से एक तोप का गोला टकराकर फट गया जिसके निकले हुए टुकड़े से सिर पर आघात पाकर निसुरतखान विनष्ट हो गया। भाई के मृत्यु (विनष्ट) हो जाने पर शकराज उल्लूखान बहुत रोया– "अब अचानक ही इसे मृत देखकर आँखों में आँसू भरकर यह अविदित मध्यम शकराज (उल्लू खाँ) बहुत रोया।[2]" हम्मीरराज के महिमासाहि को यह कहने पर कि तुम विदेशी हो, अतः तुम्हे विपत्ति वाले स्थान में रहना उचित नहीं, तुम जहाँ चाहो चले जाओ। महिमासाहि अपने घर जाकर, अपनी पत्नी बच्चों का सिर काट डालता है, जिसे देखकर हम्मीरदेव विलाप करते है– "वीरम" आदि बन्धुओं के रोने से गिरे आँसुओं के सिञ्चन से होश में आया हुआ राजा हम्मीर महिमासाहि के गले लगकर इस प्रकार विलाप करता है।[3] हाय! काबुल प्रदेश के कुलों के आधार महिमासाहि हाय! यश समूह के आगार! हाय! क्षत्रिय व्रत के पालन करने वाले!

---

1. **कण्ठस्य हा! हेति वचांसि दृष्ट्योरस्रं कपोलस्य कराब्जकोशः।**
   चित्तस्य शोकः शरणं <u>हम्मीरदेवस्य</u> तत्राहनि जायते स्म।। ह0म0 8/123
2. **अथ गतं सहसाऽपि परासुताममुमवेक्ष्य परिस्रवदीक्षणः।**
   अविदितः परिदेवनसेवनं भृशमसौ शकपोऽतत मध्यमः।। ह0म0 11/101
3. **बन्धूनां <u>वीरमादी</u>नां विमूर्च्छोऽथाश्रुसेचनैः।**
   लगित्वा <u>महिमासाहेः</u> कण्ठे व्यलपदित्यसौ।। ह0म0 13/162
4. **हा कम्बोजकुलाधार! हा कीर्तिकुलमन्दिर!।**
   हाऽनन्यजन्यसौजन्य!हा धन्यतमविक्रम!।। ह0म0 13/163

हाय! संसार भर के मनुष्यों के लिये वात्सल्य रस प्रवाहित करने वाले! मैं तुम्हारा प्राण देने वाला राजा होकर भी कैसे तुमसे उऋण हूँगा।[1] नृपति हम्मीरदेव ने अग्नि मे प्रवेश करने से पूर्व अपनी पुत्री देवल्लदेवी का आलिङ्गन कर रुदन किया– और तब अपनी पुत्री देवल्लदेवी को दोनो हाँथो से प्रगाढ़ आलिङ्गन मे लेकर खूब रुदन करते हुए राजा ने बडें कष्ट से उसे अलग किया और कहा कि यदि किसी के पुत्री हो तो वह आपके जैसी हो, जिसने गौरी (पार्वती) की भाँति अपने पिता को यश के शिखर पर पहुँचा दिया गया था।[2,3] नृपति हम्मीरदेव की मृत्यु से दुखित प्रजाजन किस तरह करुण क्रन्दन (विलाप) करते है– हम क्या करें, क्या बोलें, किस स्वामी से अनुरोध करें, अपने असीम दुःख का वर्णन किससे करें अथवा किससे बोलें ? बिना कारण ही निर्दय बने हुये विधाता ने वैसे गुणों के आगार हम्मीर राजा का अपहरण करके हाय! तुरन्त हमारे सर्वस्व को हर लिया। उपर्युक्त वर्णन मे मृतक नृप (योद्धागण) पृथ्वीराज चौहान, हम्मीरदेव के पिता नृप जैत्रसिंह, सहाबद्दीन का भ्राता– निसुरतखान, हम्मीरदेव आदि आलम्बन है उन सबकी दाह आदि क्रिया उद्दीपन है। दैवनिन्दा, रूदन, क्रन्दन, अश्रुप्रवाह आदि अनुभाव है। दैन्यग्लानि विषाद आदि व्यभिचारी भाव है। यहाँ पर सहृदय सामाजिको (पाठकों) मे शोक प्रकृतिक करुण रस अभिव्यक्ति होता है।

---

1. हा क्षत्रैकव्रतागार! हा विश्वजनवत्सल!।
   कथंकारं भविष्यामि प्राणदोऽप्यनृणस्तव।। ह0म0 13/164
2. पुत्रीं देवल्लदेवीं च दोर्भ्यामालिङ्गय निर्भरम्।
   नितरां निःश्वसन् क्रन्दन् कष्टेन महता जहौ।। ह0म0 13/182
3. ऊँचे च चेद् भवत् पुत्री भूयात् तर्हि भवादृशी।
   परां कोटिं ययाऽनायि गौर्येव जनको निजः।
4. किं कुर्वीमहि किं ब्रुवीमहि विभुं कं चानुरन्धीमहि।
   व्याचक्षीमहि किं स्वदुःखमसमं कं वा बभाषेमहि।
   यन्निष्कारणदारूणेन विधिना तादृग्गुणैकाकरं
   हम्मीर हरताऽञ्जसा हृतमहो सर्वस्वमेवावनेः। ह0 म0 14/7

इस प्रकार वीर श्रृङ्गार, रौद्र, वीभत्स, करुण रसों एवं भाव सामग्री का संयोजन इस काव्य मे प्रौढ़ रूप में हुआ है। रस के मूल भाव है और भाव मन के विकार होते हैं। राग, द्वेष, सुख, दुःख, करुणा, भावों के साथ भय, क्रोध, विस्मय, रति, रूप, मनोवेग का भी समावेश हुआ है।

दशम अध्याय

छन्द

छन्दो योजना –

छन्द शास्त्र के व्याख्याता पिंगल मुनि माने जाते हैं। छन्दों में चरण व निर्धारित लय होता हैं। इनका सर्व प्रथम प्रयोग वेदों में किया गया हैं; क्योंकि वेद बिना छन्दों के अंगविहीन से प्रतीत होते हैं। छन्दों को वेद पुरुष के पैर कहा गया है। जिस प्रकार बिना पैर के मनुष्य चल नहीं सकता उसी भांति वेद भी छन्दों के ज्ञान के बिना चल नही सकते। छन्द ज्ञान के बिना वेद पाठ करना असम्भव है। वेदोच्चारण को सुन कर सुधीजनों के लिए तो विशेष आनन्द का विषय था ही। सामान्य मनुष्यों को भी वेद के लय ने अत्यधिक प्रभावित किया। उसकी चारुता बढ़ती गयी, वेदोच्चारण को सुनने से सभी को वह लय–चिर परिचित सी प्रतीत होने लगी। उस निर्धारित लय के अनुरुप उच्चारण न करने पर व्यक्ति स्वयं समझ लेता था कि कोई अकुशल व्यक्ति वेदपाठ कर रहा है। धीरे–धीरे जन सामान्य छन्दो के महत्त्व को समझने लगे। इस चेतन मानव जगत में यदि कोई बात व्यक्त करनी हो तो गद्य के माध्यम से कहने पर उसे अधिक समय तक सुन नही सकते न ही उसे रुचि पूर्वक हृदयंगम ही कर सकते हैं। कुछ देर बाद श्रोता की इच्छा शक्ति समाप्त हो जाती है जो ऊबने लगता हैं; यदि सुना भी गया तो मन को प्रिय न लगने के कारण स्मरण भी नही हो पाता। जो बात स्मरण नही होगी उसे समाज के सम्मुख उदाहरण स्वरुप प्रकट भी नही की जा सकती। किन्तु यदि किसी बात को अधिकाधिक लोग सुने तथा उसके विचारो से लाभन्वित हों; उसे अपने जीवन में उतार सकें और ऐसे उत्तम विचारों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर सकें, इसके लिये गेय विधि सर्वश्रेष्ठ है, जो छन्दः शास्त्र के अनुरुप हो। गेय विधि पशुओं को भी आनन्दित कर देती है। मानव तो ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है; उसे लयबद्ध बात तो अत्यधिक रुचिकर प्रतीत होगी। मनुष्यों को लय पूर्वक कही गई बात समझ मे तो आ ही जाती हैं, छन्दों के लय के माध्यम से आनन्द भी प्राप्त होता हैं। सुनी हुई बाते सदैव के लिये मन में अंकित भी हो जाती हैं। इन्ही छन्दों का श्रेय है जो कि रामायण,महाभारत, तथा गीता के अधिकाधिक उदाहरण लोगो को कण्ठाग्र है। मानव जीवन में अनेको बाधाऐं आती हैं; परिवर्तन होता है।

---

1. **छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते।**
   ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
   शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
   तस्मात्सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।। (पाणिनीय शिक्षा)

परिवर्तन के अनुसार उथल–पुथल भी होता हैं। ऐसे विषादग्रस्त मनुष्यों को लोग गेय विधि से मूल ग्रन्थों के उदाहरण देकर समझा देते है। गीतों के द्वारा उनका दुःख भार तो कम ही हो जाता है दुःख की सार्वकालिक निवृत्ति भी हो जाती हैं।

अतः छन्दः शास्त्र को कवियों व विद्वानों ने उपयुक्त एवं सार्थक समझा और लौकिक साहित्य में भी छन्दो का सर्वथा प्रयोग किया। इसके आस्वाद के लिये भी आवश्यक है कि छन्दों का ज्ञान हो, इसलिये छन्दः शास्त्र का ज्ञान साहित्यानुशीलन करने वाले व्यक्ति के लिये अनिवार्य है। मनुष्य परिवर्तन–प्रिय है; वह अपने जीवन में एक सा काम करते–करते थक जाता है और कुछ परिवर्तन चाहता है। यह परिवर्तन उसे मनोरंजन द्वारा प्राप्त होता है। शारीरिक एवं मानसिक क्लान्ति को दूर करने के लिये मनोरंजन के साधन आवश्यक हैं। मन को प्रसन्न रखने के लिये व सुख देने के लिए मनोरंजन अपनाने की प्रवृत्ति में ईश्वर प्रदत्त है, जो समय–समय में स्वयं उद्भूत होती है। ऐसी इच्छा शक्ति नाटकों, चलचित्रों, कवियों की रचनाओं, कविगोष्ठियों के माध्यम से प्रकट होती है जिससे गेय विधि को सर्वाधिक श्रेय मिलता है; वही मनुष्य को सर्वाधिक सन्तोष प्रदान करती है। कोई भी नाटक, चलचित्र, कविगोष्ठी, गीतों के बिना प्रशंसित नही होते न ही गीतो के अभाव में उसकी चारुता बढती है। मनोरंजन के लिए भी छन्दशास्त्र अत्युत्तम् सार्थक सिद्ध हुआ है। इसलिए छन्दों की योजना मनुष्य जगत के लिये एक अनिवार्य आवश्यकता हो गयी।

महाकवि नयचन्द्र सूरि ने हम्मीर महाकाव्य में केवल (22) छन्दों का प्रयोग किया है। उनमें से अनुष्टुप् उपजाति एवं द्रुत विलम्बित छन्दों का ही बाहुल्येन प्रयोग किया है। अनुष्टुप् के 525, उपजाति 379 एवं द्रुतविलम्बित के 116 श्लोक हैं। इन तीनों छन्दों के अतिरिक्त ललिता, प्रमिताक्षरा, शार्दूलविक्रीडित एवं स्वागता छन्दो का भी कवि ने अत्यधिक प्रयोग किया है। ललिता के 88 प्रमिताक्षरा के 72, शाईलविक्रीड़ित के 62, एवं स्वागता के 53 श्लोक है। वसन्ततिलका छन्द भी कवि को अत्यधिक प्रिय था; क्योंकि उन्होंने इस छन्द को भी अत्यधिक प्रयोग किया है। जिनकी संख्या 29 है। स्रग्धरा के 21 श्लोक, वियोगिनी के 16 एवं शालिनी के 11 श्लोक हैं। मंजुभाषिणी के 6 श्लोक हैं।

इन्द्रवज्रा एवं शिखरिणी के 4–4 श्लोक विरचित है। मन्दाक्रान्ता के 4 श्लोक, मालिनी के 4 श्लोक, आर्या के 3 श्लोक लिखे है । उपेन्द्रवज्रा, रथोद्धता, त्रोटक एवं भुजङ्गप्रयात के क्रमशः 2, 2, 1, 1 है । गीति के भी 5 श्लोक विरचित है । महाकवि नयचन्द्र ने अधिकांशतः छन्दों का प्रयोग वर्णन के अनुरुप किया है , किन्तु विविधता भी यत्र–तत्र उपस्थित की है।

रस एवं वर्णन के अनुरूप वृत्तविनियोगः

महाकाव्य के लक्षणानुसार कहा गया है कि एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करना चाहिए अन्त में छन्द–परिवर्तन करना चाहिये।[1] इस नियम का पालन महाकवि नयचन्द्र ने एक (9 वें)सर्ग में किया है । इनकी छन्द रचना विषय वस्तु के अनुसार विभिन्न छन्दो से परिपूर्ण है। प्रायः महाकवि एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग करतें है, किन्तु आलोच्य ग्रन्थ में एक में एक ही छन्द का प्रयोग कम है। इसमें वर्णन प्रसंग के अनुरुप भी छन्द योजना कम है । ग्रन्थकार का मत है कि काव्य में रस एवं वर्णन के अनुरूप समस्त छन्दों का प्रयोग करना चाहिये।[2] कौन छन्द किस वर्णन में उपयुक्त होता है इसका भी सम्यक् विवेचन आचार्य क्षेमेंन्द्र ने किया है। ग्रन्थकार के अनुसार पुराणों, इतिहास कथाओं में सुखमय वर्णन एवं उपदेश प्रधान प्रसंगो में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग सभी स्थानो में करना चाहिये।[3] इस परिपाटी का पालन कवि ने चतुर्थ सर्ग में किया है; क्योंकि यह सर्ग कथा विस्तार की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त है। यह महाकाव्य का सबसे बड़ा सर्ग है। इसमें श्लोकों की संख्या अधिक है। इस सर्ग में हम्मीर के पूर्वज राजाओं के वीरतापूर्ण कार्यों, उनके ओज एवं उनकी समृद्धता का वर्णन है। नृप प्रह्लादन–अपने पुत्र वीरनारायण को नृप बनाकर उसका संरक्षक अपने अनुज वाग्भट्ट को नियुक्त कर देता है तथा उसे वीरनारायण की शिक्षा हेंतु उपदेश देता है। जब वीरनारायण शक योद्धा जल्लालदीन से मिलने जाना चाहता है, तब उसका चाचा वाग्भट वीरनारायण पर क्रोध करते हुये, उसे मना करते हुये नीतिगत उपदेश देता है। अतः यह उपदेश–प्रधान प्रसङ्ग है; तथा इसी सर्ग में हम्मीर का जन्म वर्णित है। हम्मीर के जन्म के समय सम्पूर्ण (रणथम्भौर) राज्य प्रसन्नता के सागर मे डूब जाता है। हम्मीर के जन्म के समय का सुखमय वर्णन कवि ने किया है। अतः यह सर्ग अनुष्टुप छन्द से परिपूर्ण सर्वथा उपयुक्त ही है।

---

1. एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
2. काव्ये रसानुसारेण वर्णनानु गुणेन च।
   कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोग विभागवत्।। (सुवृत्त तिलक)
3. पुराण प्रति बिम्बेषु प्रसन्नोपाय वर्त्मसु।

उपदेश प्रधानेषु कुर्यात् सर्वेष्वनुष्टुभम्।। (सुवृत्त तिलक)

"आचार्य क्षेमेन्द्र ने वृत्तविनियोग में कहा है कि शौर्यगुण जहाँ प्रकट करना हो वहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग करना चाहिए।[1] इस परिपाटी का पालन कवि ने 9वें एवं 11वें इन दोनों सर्गो को छोड़कर लगभग ग्रन्थ के सभी सर्गों में किया है भले ही कुछ श्लोकों में हो।

कवि ने युद्ध के लिये जाते हुए प्रस्तुत सैनिकों का शौर्य गुण प्रकट किया है। अतः शौर्यगुण वाले ये सभी सर्ग (9 वें एवं 11 वें को छोड़कर) आचार्य क्षेमेन्द्र के वृत्त विवेचन के अनुरूप है। रथोद्धता वृत्त को चन्द्रोदय वर्णन में, उपजाति को बसन्त वर्णन में प्रयोग करना चाहिए किन्तु हम्मीर महाकाव्य में इससे भिन्न अर्थो में छन्दों का प्रयोग किया गया है। यह कविवर नयचन्द्र की एक विलक्षणता है क्योंकि वृत्त विनियोग में कहा गया है कि वृत्तों के प्रयोग में कवि को विद्वान् होना चाहिए। कवि जिस छन्द को उपयुक्त समझता है उसी सन्दर्भ में छन्दों का प्रयोग करता है। छन्दों के पूर्णज्ञान के लिये अभ्यास की आवश्यकता होती है। कवि ने हम्मीर महाकाव्य के एक (9वें) एक छन्द के उपयोग के बाद सर्गान्त का श्लोक बदला है किन्तु सभी सर्गों में ऐसा नहीं किया। उन्होने एक सर्ग में 5, 6 छन्दों का प्राचुर्येण प्रयोग किया है जिसकी अपनी एक विशेषता है। जैसे कि सुवृत्त तिलक में आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा भी है कि जिसने दो–तीन छन्दों का प्रयोग किया है, उसने श्रमपूर्वक काव्य रचना की है; जिसने एक छन्द का प्रयोग किया है उसने कोई परिश्रम नहीं किया; वे छन्द प्रयोग करने में दरिद्र है।[2] किन्तु जिन पूर्व कवियों ने प्रायः एक छन्द का विनियोग एक सर्ग में किया हैं वे निरर्थक या अयोग्य नही है, वे प्रशंसनीय है किन्तु उस परिपाटी को छोड़कर जिन्होने विशेष चमत्कार दिखाना चाहा है, उन्होंने अनेकों विचित्र अलंकारों एवं छन्दों का प्रयोग किया है, जिससे काव्य में विचित्रता दिखायी देती है। इसी विचित्रता को प्रदर्शित करने के लिये कविवर नयचन्द्र ने भी एक ही सर्ग में अनेकों छन्दों का प्रयोग करके विचित्रता ला दी है।

---

1. शौर्यस्तवे नृपादीनां शार्दूलविक्रीडितम्।।
2. एकस्मिन्नेव यैवृतेकृतो द्वित्रेषु वाश्रमः।
   न नाम विनियोगार्हास्ते दरिद्रोंइवोत्सते।। सु०ति०।।

इन्होने वृत्त विनियोग में बताये गये छन्दों के अतिरिक्त छन्दों का वर्णन किया है। छन्दों का किस रस में या किस वर्णन में प्रयोग करना चाहिये इसका निर्धारण नहीं किया है। उन छन्दों का प्रयोग कवि ने वृत्तों के विषय के अतिरिक्त किया है क्योंकि आचार्य क्षेमेन्द्र ने ऐसा सुवृत्ततिलक वृत्तविनियोग में कहा भी है।[1] इस प्रकार कविवर नयचन्द्र सूरि का छन्द प्रयोग सर्वथा उपयुक्त व वैचित्र्यपूर्ण है।

1. शेषाणामप्युनुक्तानां वृत्तानां विषयं बिना।
वैचित्र्यमात्रपात्राणां विनियोगो न दर्शितः।। (सु0 ति0)

हम्मीर महाकाब्य में प्रयुक्त छन्द :–

आलोच्य ग्रन्थ मे किस छन्द का प्रयोग कहाँ–कहाँ हुआ है इसका यहाँ उल्लेख किया जाता है–

1. अनुष्टुप छन्द का लक्षणः–

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।[1]

द्विचतुःपादयो र्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् या श्लोक मे प्रत्येक पाद मे 8 अक्षर होते है। इसमे षष्ठ अक्षर सदा गुरु होता है और पञ्चम अक्षर सदा लघु होता हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण मे सप्तम अक्षर लघु होता है तथा प्रथम और तृतीय चरण में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते है।[1] **यथा–**

कुर्वन् कुवलयोल्लासमसन्तापकरैः करैः।[2]

वेला इव तुषारांशुः स प्रजा अभ्यवीवृधत्।।

वसन्तवर्णनम् पञ्चमः सर्ग 1–153, नवमसर्ग हम्मीरदेवदिग्विजय वर्णनम्, 1–187, द्विनद्वयसंग्रामवर्णनम्, द्वादशसर्गः–88 हम्मीर स्वर्गगमनम् त्रयोदशःसर्गः 1–144, 185, 187–225,

2. उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौयदीयावुपजातयस्ताः।[3]

इत्थं किलान्यास्वपिमिश्रिततासुस्मरन्ति जातिष्विदमेवनाम।।

जिस पद्य का कोई चरण इन्द्रवज्रा के लक्षण द्वारा तथा कोई चरण उपेन्द्रवज्रा लक्षणद्वारा बना हो, उसे उपजाति छन्द कहते है। अन्य जातियों मे इसी प्रकार के दो छन्दों के मेल से जो पद्य बनेगे, उनकी भी प्राचीन आचार्य उपजाति संज्ञा कहते है।

यथा– अथ प्रथीयस्तरसा रसायास्तलं शयालुं स्वशये शकेन।[4]

सहाबदीनेन वितन्वतालमुपद्रुताः पश्चिमभूमिपालाः।।

हम्मीर महाकाव्य मे प्रयुक्त उपजाति छन्द– प्रथम सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम्– 1–83, 85, 86, 89, द्वितीयः सर्गः भीमदेव प्रभृति पूर्वज वर्णनम् 1–80 तृतीयः सर्गः पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनम् 1–64, चतुर्थ सर्गः हम्मीरजन्मवर्णनम् 154, पञ्चमः सर्गःवसन्तवर्णनम्– 73, सप्तमःसर्गः– श्रृङ्गार वर्णनम् 115, अष्टमः सर्गः हम्मीरदेवराज्याप्तिवर्णनम्

---

1. वृत्तरत्नाकर ।। द्वितीयो अध्याय 53 पृ0।।
2. हम्मीर महा0 4/1
3. वृत्तरत्नाकर अ0 3 पृ0 102,
4. हम्मीर महा0 3/1

1–126, 158, 60, 61, 64, दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणोवर्णनम्– 33, 38, 39, 40, 46, 47, 54, 55, 56, 59, 60, 61, 63, 64, 65, 66, 68, 70, एकादश सर्गः निसुरतखानवधवर्णनम् 1–96, 100, उपजाति।

3. इन्द्रबज्रा–

स्यादिन्द्रबज्रा यदि तौ जगौः गः।[1]

जिस पद्य के प्रति चरण मे दो तगण, एक जगण, और दो गुरु हो, उसे "इन्द्रबज्रा" कहते है। इसके पादांत मे यति होती है।

यथा– **सौन्दर्यधन्या अथ सप्त कन्याः पित्रा प्रमोदात् परिणायितोऽसौ।[2]**

चिक्रीडताभिः सह शश्वदस्तव्रीडं यथा दुश्च्यवनः शचीभिः।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त इन्द्रबज्रा छन्द–

चतुर्थः सर्गः हम्मीर जन्मवर्णनम्– 158, दशमः सर्गः दिनद्वयसंग्राम वर्णनम्–43, एकादश सर्गः निसुरतखानवधवर्णनम्– 97, 98,

4. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ ।।[3]

जिस छन्द में क्रमशः जगण, तगण, जगण तथा दो गुरु होते है' उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते है।[1] यथा –

गलद्विचारोल्लसितानि भास्वद्गवां विनाशे रुचिरद्युतानि ।[4]

तमांसि संगन्तुमिवस्वबन्धून् शकान् प्रसस्रुर्भुवनेऽभितोऽपि।।

अलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त उपेन्द्रवज्रा छन्द–

अष्टमः सर्ग हम्मीर देव राज्याप्तिवर्णनम्–159, दशमः सर्ग अल्लावादीनामर्षणो वर्णन 37।

5– शालिनी

शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः।[5]

जिजस पद्य के प्रत्येक चरण में भगण दो तगण, तथा दो गुरु वर्ण हो उसे "शालिनी छन्द कहते है। इसके चार और सात अक्षरों पर यति होती है ।

---

1. वृत्तरनत्नाकर तृतीयो अध्यायः पृ0– 100
2. ह0 म0 – 4/158
3. वृत्तरत्नाकर – अध्याय–3 पृष्ठ 100
4. ह0म0 10/37
5. वृत्तरत्नाकर तृतीयो अध्याय 107 पृष्ठ

यथा–

उल्लूखानः पूरवत् सोऽथ वार्धेवृत्तिं शत्रून् प्रापयन् वैतसीं स्राक्।[1]

क्षत्रोत्तंसान् मान्यमानस्तृणांशान् हिन्दूवाटं प्राप तीव्रप्रतापः।।

अलोच्य ग्रन्थ मे प्रयुक्त शालिनी छन्द–

दशमः सर्गः अल्लाबदीनामर्षणो वर्णनम् 31, 32, 34, 35, 36, 42, 45, 48, 57, 58, 67।

6. रथोद्धता

रान्नराविह रथोद्धतालगौ।।[2]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में रगण, नगण रगण, लघु और गुरु हो , उसे रथोद्धता कहते है। इसके पादान्त में यति होती है। [1] यथा–

क्रोंड़कूर्मभुजगाधिपा भुवं यां कथञ्चिदपि मौलिभिर्दधुः।[3]

लीलयैव भुजयैकया दधत् तामसावतत कं न विस्मयम्।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त रथोद्धता छनद–

प्रथमः सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम् – 87, दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम् 49,।

7– स्वागता–

स्वागतेतिरनभाद्गुरुयुग्मम्।।[3]

जिस पध के प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण और दो गुरु क्रम से हो, उसे स्वागता कहते हैं।[3] इसके पदान्त मे यति होती है। यथा–

प्रेक्ष्य काननविलासवशेन स्वेदिनोऽथ तरुणान् नृपपुत्रः।[4]

वारिकेलिकलनाय जगन्वान् जैत्रसागर सरः सरसश्रि।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त स्वागता छन्द पञ्चमसर्ग बसन्त वर्गनाम् – 74

षष्ठः सर्गः जलक्रीडावर्णनम्– 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, अष्टमः सर्गः हम्मीर देव राज्याप्ति वर्णनम्– 63,।

---

1. हम्मीर महा0 10/32
2. सुवृत्त तिलक पृ0 110,
3. हम्मीर महा0– 1/87
4. वृत्तरत्नाकर तृतीयो अध्याय पृ0 110
5. हम्मीर महा0– 6/1

8. द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बितमाहनभौ भरौ।।[1]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः एक नगण, दो भगण और अन्त में रगण हो उसे द्रुतविलम्बित छन्द कहते है।[1] इसके पदान्त में यति होति है। इस छन्द को सुन्दरी भी कहते है।

यथा– प्रसवचोलवतंसककङ्कणस्तबकराजिविराजितविग्रहाः।[2]
शुशुभिरे सुदृशो धृतकण्टका इव भटाः कुसुमायुधभूपतेः।।

आलोच्यग्रन्थ में प्रयुक्त द्रुतविलम्बित छन्द–

पञ्चमः सर्गः बसन्त वर्णनम्–75, श्रृङ्गार स०जीवनवर्णनम् सप्तमः सर्गः 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, एकादशः सर्गः निसुरतखानवधवर्णनम् 101, द्वादशःसर्गः दिनद्वयसंग्राम वर्णनम्–86

9. ललिता

धीरैरभाणिललिता, तभौ, जरौ।।[3]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण मे क्रम से तगण, भगण, जगण, और रगण हो, उसे ललिता छन्द कहते है।[3] यति पादान्त मे होती है।

यथा– म्लेच्छावनीपमिममेवमन्यदा कश्चिज्जगाद सविषादमानसः।[4]
त्वामेषकोऽमुचदनेकशो रणे त्वं नैकवेलमपि हा! जहास्यमुम्।।

आलोच्य ग्रन्थ मे प्रयुक्त ललिता छन्द–

तृतीयः सर्गः पृथ्वीराजसंग्राम वर्णनम् – 69, 70, दशमः अध्याय अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम् 52, 53, द्वादशः सर्गः दिनद्वय संग्रामवर्णनम्र –

---

1. वृत्तरत्नाकर अ0 3 पृ0 116,
2. ह0 म0 5/75
3. वृर0 3/पृ0 122,
4. ह0 म0, 3/69,

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84।

10. वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः।।[1]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में तगण, भगण, दो जगण, दो गुरु हों, उसे वसन्ततिलका कहते है। इसके पादान्त में यति होती है।[1]

यथा–

पृथ्वीपतेरिति विनाशगतिं निशम्य दूनः स गौडकुलपङ्कजबालसूर्यः।[2]

स्थानं निजं तदुपगम्य बलं स्वयं च युध्वा दिवस्पतिपदं तरसाऽऽससाद।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द–

प्रथमः सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम् – 88, 94, द्वितीय सर्गः भीमदेव प्रभृति पूर्वजवर्णनम्– 81, तृतीयसर्गः पृथ्वीराज संग्राम वर्णनम्, 73, षष्ठः सर्गः जलक्रीड़ा वर्णनम् 52, सप्तमः सर्गः 121, 126, अष्टमः सर्गः हम्मीर देव राज्याप्तिवर्णनम् 157, 162, 165, दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम् 44, द्वादशः सर्गः द्विनद्वय संग्राम वर्णनम् 85, चतुर्दशः सर्गः हम्मीर गुणस्तुतिकाव्यकर्तृः प्रशस्तिः कविवाक्य वर्णनम् –

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17।

11. मालिनी

ननमयययुतेयं मालिनीभोगिलोकैः।[3]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण मे क्रम से दो नगण, एक भगण, और दो यगण, हो उसे मालिनी छन्द कहते है। यति आठ और सात वर्णो पर होती है।

---

1. वृर0 3/पृ0 134,
2. ह0 मा0 3/73,
3. वृर0 3/पृ0 136,

यथा– अथ स धरणिकान्तः सद्गुणालीनिशान्तः[1]

प्रतिहतखलजातः प्रौढ़राढ़ावदातः।

विधिविलसितयोगादाप्तबन्धः शकेन्द्राद्

द्विरपि रतिमहासीद् भोजने जीवने च।।

आलोच्य ग्रन्थ मे प्रयुक्त मालिनी छन्द–

तृतीयः सर्गः पृथ्वीराज संग्रामवर्णनम् 65, 78 पञ्चमः सर्गः वसन्त वर्णनम्– 76, षष्ठ सर्गः जलक्रीड़ा वर्णनम् 54।

12 शिखरिणी–

रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिगी।[2]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु हों उसे शिखरिणी छन्द कहते है।[2] इसके 6 और 11 वर्णो पर यति होती है।

यथा– अगाधं पाथोधिं गुरुगरिमसारं सुरगिरिं [3]

पृथक्कृत्वा वेधा न खलु कृतकृत्यो मम मते।

द्वयं निर्मायास्मिन्पुनरपि किलैकत्र भगवाँ–

स्तथा प्रीतः सृष्टिं व्यधित न यथा तत्प्रणयने।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त शिखरिणी छन्द–

प्रथमः सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम् 95, सप्तमः सर्गः श्रृङ्गार सञ्जीवन वर्णनम् 120, 125, अष्टमः सर्गः हम्मीर देवराज्याप्तिवर्णनम् 128।

13. मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताजलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्।।[4]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से मगण, भगण, नगण, दो तगण् और दो गुरु हो उसे मन्दाक्रन्ता छन्द कहते हैं। यति चार 6 और सात वर्णों पर होती है।

---

1. ह0 म0 3/65
2. वृत्तरत्नाकर 3/पृ0 141,
3. ह0 म0 1/95
4. वृत्तरत्नाकर 3/पृष्ठ 144

यथा – संत्यज्यैनं व्यसनपतितं स्वामिनं चेद् व्रजामि ।[1]

क्रीड़ा व्रीड़ा कलयति तदा गौडगोत्रे सुखं मे।

इत्थं ध्यात्वा शकपतिपुरीं सन्निरुध्याभितोऽसौ

तस्थौ पक्षद्वयमनुदिनं युध्यमानो हठेन।।

आलोच्यग्रन्थ में प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छन्द –

तृतीय सर्गः पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनम्–68, अष्टमः सर्गः हम्मीर देवराज्याप्तिवर्णनम्–129, एकादशः सर्गः निसुरतखानवधवर्णन–102, 103।

14. शार्दूलविक्रीडितम्–

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।।[2]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रम से मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और एक गुरु हो, उसे शार्दूलविक्रीडित कहते है।[3] यति बारह और सात वर्णो पर होती है

यथा– यन्नाम प्रतिवर्णसंश्रुतसुधापूरापतद्यद्यशः[3]

कर्पूरोरूरजोभरप्रसृमराविर्भाविपङ्काकुले।

वाणीनां पथि नाऽभजन्त पथिकीभावं यदीया गुणा

औदार्यप्रमुखाः किमद्भुतमहो! तत्तत्कवीनामपि।।

अलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त शार्दूलविक्रीड़ित छन्द–

प्रथमः सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम् – 84, 90, 92, 93, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103, 104।

द्वितीय सर्गः भीमदेवप्रभृति पूर्वजवर्णनम् – 82, 83, 84, 85, 86, 88, 89, 90।

तृतीय सर्गः पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनम् – 71, 72, 75, 76, 77, 79, 80, 81, 82।

चतुर्थः सर्गः हम्मीर जन्मवर्णनम् –155, 156, 157, 159, 160।

पञ्चमः सर्गः वसन्तवर्णनम् 53 , षष्ठ सर्ग : जलक्रीड़ावर्णनम् – 53

सप्तमः सर्गः श्रृंङ्गारसञ्जीवन वर्णनम् – 116, 117, 118, 124, 127।

अष्टमः सर्गः हम्मीरराज्याप्तिवर्णनम् –127, 130, 131।

दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणों वर्णनम् – 25, 26, 27, 28, 79, 80, 81, 85, 87, 88।

द्वादशः सर्गः दिनद्वयसंग्रामवर्णनम् –87,त्रयोदशः सर्गः हम्मीरस्वर्ग गमनम्–146, 186।

चतुर्दशःसर्गः हम्मीर गुणस्तुति ,काव्यकर्तृः प्रशस्तिः कविवाक्यवर्णनम् – 19, 21।

---

1. ह0म0 3/68
2. वृ0र0 3/पृ0146
3. ह0म0 1/84

15– प्रमिताक्षरा

प्रमिताक्षरा सजससैरूदिता।।[1]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में क्रमशः सगण, जगण और पुनः दो सगण हो, उसे प्रमिताक्षरा छन्द कहते है। इसके पादान्त में यति होती है ।

यथा–

अधिगत्य भूपतिविपत्तिमिति स्रवदश्रुमिश्रनयनस्तदनु। [2]

विहतौर्ध्वदैहिक इलामखिलां स्वकरे चकार हरिराजनृपः।

अलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त प्रमिताक्षरा छन्द –

तृतीयः सर्गः पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनम् – 74 , पंञ्चमः सर्गः वसन्तवर्णनम् 1, 2, 3 4, 5 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 25, 26, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63 ,64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, षष्ठ सर्ग जलक्रीडावर्णनम् –56।

16 आर्या

लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमेजः।[3]

षष्ठोऽयं नलघू वा, प्रथमेंऽर्धे नियतमार्यायाः ।।

षष्ठे द्वितीयलात्परके न्ले, मुखलाच्च सयतिपदनियमः।

चरमेऽर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठोः लः।।

आर्या के पूर्वार्ध– प्रथम द्वितीय चरण का लक्षण निश्चित है कि इसमे सात गण चार–चार मात्रा वाले और एक गुरू होता है इस आर्या के चार मात्रा वाले इन सात गणों मे विषम गणों में अर्थात प्रथमः तृतीय ,पंञ्चम , और सातवें में जगण मध्य गुरू वाला न आना चाहिये । छठा गण जगण हो अथवा नगण और लघु रूप चार लघु वाला हो। यदि छठा गण नगण और लघु रूप अर्थात् चार लघु वाला हो तो उस गण के द्वितीय लघु से पूर्व अर्थात् लघु पर यति होती है, प्रथम् लघु पर पद भी समाप्त होना चाहिये यह नियम है एवं यदि सातवां गण चार लघु वाला हो तो गण के पहले लघु से पूर्व–अर्थात् छठे गण के अन्त मे यति होती है और पद समाप्त हो जाना चाहिये। इतना पूर्वार्ध का नियम है।

---

1. वृ० 3/पृ0123,
2. ह0म0 3/74
3. वृ० 2/पृ023,

उत्तरार्ध– तृतीय और चतुर्थ चरण का यह लक्षण है कि यदि पाँच वगण चार लघु वाला हो तो पहले लघु से पूर्व चतुर्थगण के अन्त मे पद समाप्त होकर यति होनी चाहिये तथा इसमें छठा गण एक लघु का होता है। और सब पूर्वार्ध की भाँति होता है।

यथा– लाभाय यतां पुंसामभाग्यतः क्वापि मूलनाशः स्यात्।[1]

अद्यप्रभृति जनोक्तिर्मदुदाहरणा प्रववृतेऽसौ।।

आलोच्य ग्रन्थ मे प्रयुक्त आर्या छन्द –

दशमः सर्ग अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम्– 75, 77,78 ।

17. स्रग्धरा

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तिकेयम्।।[2]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण के क्रम से मगण, रगण, भगण, नगण, तथा तीन यगण जहाँ हों, और यति सात–सात वर्णो पर हो, उसे स्रग्धरा कहते हैं।

यथा– **चिन्तारत्नाबनद्धेऽनवरतममृतासिक्तकल्पद्रुसान्द्र–[3]**

च्छायाच्छन्ने निषण्णाः श्रमविगमकृते चत्वरे चत्वरेऽपि।

तीरे सिद्धापगायाः सुरसुरभिगणांश्चारयन्त्योऽस्य दानं

जेगीयन्ते स्म देव्यः करकमलमिलद्वेणुवीणाविलासाः।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त स्रग्धरा छन्दः–

प्रथमः सर्गः हम्मीर पूर्वजवर्णनम्– 91, द्वितीयः सर्गः भीमदेवप्रभृति पूर्वज वर्णनम्–87, षष्ठःसर्गः जलक्रीडावर्णनम्–55, सप्तमःसर्गः श्रृड़ार सञ्जीवन वर्णनम्–123, 128,
दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम्– 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24, 83, 84, 86,।
त्रयोदशःसर्गः हम्मीर स्वर्गगमन वर्णनम्–145,226, चतुर्दशःसर्गः हम्मीरगुणस्तुतिः काव्यकर्तुः प्रशस्तिः कविवाक्यवर्णनम्–18,20,।

18– मञ्जुभाषिणी

सजसा जगौ भवाति मञ्जुभाषिणी।।[4]

जिस पद्य के प्रत्यके चरण में क्रम से सगण, जगण, सगण,जगण, और गुरु हों, उसे मञ्जुभाषिणी छन्द कहते हैं। यति पाँच और आठ वर्णो पर होती है।

---

1. **ह० म० 10/75**
2. **वृर० 3/पृ० 149,**
3. **हम्मीर महा० 2/87**
4. **वृर 3/ पृ0 89,**

यथा— मदनोऽरिरस्य मदनारिरित्यसौ मदनेन देह इति साधुरन्वयः।[1]

भुवि कामतत्त्वमधुनेति केवलं कथमन्यथाऽलसदहो! समन्ततः।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त मञ्जुभाषिणीं छन्दः—

सप्तमःसर्गः श्रृङ्गार सञ्जीवन वर्णनम्— 114, दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम्—41, 29, 30, 50, 51।

19. वियोगिनी

विषमे ससजा गुरु समे सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी।।[2]

जिस छन्द के विषम चरणों (प्रथम—तृतीय) में क्रमशः दो सगण, एक जगण, तथा एक गुरु वर्ण आये, सम चरणों (द्वितीय—चतुर्थ) में क्रमशः सगण, भगण, रगण, एक लघु तथा एक गुरु वर्ण आयें, उसे वियोगिनी कहते हैं।

यथा — धरणीरमणापमाननादथ भोजःस शिरोहमागतः।[3]

परिभाव्य मुहुः स्वदुर्दशामभिमानेन हृदीत्यचिन्तयत्।।

आलोच्य ग्रन्थमें प्रयुक्त वियोगिनी छन्दः—

दशमः अध्यायः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम्—1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15, 62,।

20. गीति

आर्या प्रथमदलोक्तं यदि कथमपि लक्षणं भवेदुभयोः।[4]

दलयोः कृतयतिशोभां तां गीतिं गीतवान् भुजङ्गेशः।।

गीति छन्द आर्या का ही एक—भेद विशेष है। इसके प्रथम एवं तृतीय चरण में 12 तथा द्वितीय चरण मे 18 मात्रायें होती हैं।

यथा — निः शेषमिति तदुक्त्वा विरराम न यावदेव शकबन्धुः।[5]

मन्यूत्पीडग्रहिलः समेत्य तावत् स भोजदेवोऽपि।।

आलोच्यग्रन्थ मे प्रयुक्त गीति छन्द —

दशमः सर्गः अल्लावदीनामर्षणो वर्णनम्—71, 72, 73, 74, 76।

---

1. हम्मीर महा0 7/114
2. वृत्तरत्नाकर
3. हम्मीर महा0 10/1
4. वृत्तर0 2/8
5. ह0 म0 10/71

21. भुजङ्गप्रयातः–

भुजङ्ग प्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः।[1]

जिस पद्य के प्रत्येक चरण में चार यगण हो, उसे भुजङ्गप्रयात छन्द कहते हैं।

यथा – स्मरस्मेरलीलासु तल्पादधस्तात् प्रसूनानि बभ्राजिरे निष्पतन्ति।[2]

मृगाक्षावपुर्वल्लिविश्लेषभावाविरासीनदुःखाद् ददन्तीव झम्पाम्।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त भुजङ्गप्रयातं छन्द –

सप्तमःसर्गः श्रृङ्गारसञ्जीवन वर्णनम्–122

22. तोटक

इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।।[3]

जिस छन्द के प्रत्यके चरण मे अम्बुधि अर्थात् समुद्र की संख्यावाले (=4) सगण हो तथा चरणान्त मे यति हो, उसे तोटक कहते हैं।

यथा– यवनाधिपदेशमनुप्रहितं विभुनैव पुरोदयराजभटम्।[4]

समुपेतमवेक्ष्य तदा शकराट् प्रविवेश पुरीमुररीकृतभीः।।

आलोच्य ग्रन्थ में प्रयुक्त तोटक छन्द–

तृतीयःसर्गः पृथ्वीराजसंग्रामवर्णनम्–66,

हम्मीर महाकाव्य मे कविवर नयचन्द्र सूरि ने छन्दों के प्रयोग मे कुशलता दिखाई है। वृत्त रत्नाकर मे बताये गये वृत्त विनियोग के अनुसार कतिपय छन्दों का प्रयोग किया है। अन्य छन्दों का प्रयोग जहाँ जिस रस मे उपयुक्त समझा उसे विषय निर्धारण के बिना ही प्रयोग किया है।[5] जो पात्रो की विचित्रता एवं काव्य सौन्दर्य प्रस्तुत करती है।

---

1. वृर0 3/ पृ0 83
2. हम्मीर म0 7/122
3. वृत्तरत्नाकर 3/48
4. हम्मीर म0 3/66
5. शेषाणामप्यनुक्तानां वृत्तानां विषयं बिना।
   वैचित्र्यमात्रपात्राणां विनियोगो न दर्शितः।।

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत

1. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी — बालमनोरमा टीका
2. व्याकरण महाभाष्य — आचार्य पतञ्जलि
3. काव्य प्रकाश — आचार्य मम्मट्
4. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ
5. ध्वन्यालोक — आनन्द वर्धन लोचनटीका सहित
6. वृत्तरत्नाकर — श्री भट्टकेदार विरचित
7. चन्द्रालोक — जयदेव
8. कुवलयानन्द — अप्यय दीक्षित
9. सुवृत्त तिलक — क्षेमेन्द्र विरचित
10. छन्दो मञ्जरी —
11. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति — वामन
12. भामह काव्यालंकार — भामह
13. रस गंगाधर — पण्डितराज जगन्नाथ
14. विक्रमांक देव चरित — विल्हण
15. संस्कृत साहित्य का इतिहास — बलदेव उपाध्याय
16. राजतरंगिणी — कल्हण
17. अमरकोश — रामाश्रमी टीका
18. शब्द कल्पद्रुम — राजाराधाकान्तदेव
19. संस्कृत हिन्दी कोश — वी0एस0आप्टे
20. राघव पाण्डवीय — धनञ्जय
21. पृथ्वीराज रासो — चन्दबरदाई
22. भारत का मध्यकालीन इतिहास —

23. अभिज्ञान शाकुन्तलम — कालिदास
24. वाल्मीकि रामायण — महर्षिवाल्मीकि
25. अलंकार महोदधि — नरेन्द्रप्रभसूरि
26. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग–6, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैन इन्स्टीट्यूट वाराणसी 1973
27. दशरूपक — धनञ्जय — डॉ0 भोलानाथ व्यास
28. लघु सिद्धान्त कौमुदी — वरदराजकृत
29. रघुवंश महाकाव्य — कालिदास
30. हम्मीर महाकाव्य — नयचन्द्रसूरि
31. हम्मीर मर्दन — जयसिंह सूरि
32. कीर्ति कौमुदी — सोमेश्वरकृत
33. अन्य ग्रन्थ एवं पत्र पत्रिकायें

संकेत सूची

ह0 म0	—	हम्मीर महाकाव्य
वही	—	पूर्व लिखित महाकाव्य का नाम
सा0 द0	—	साहित्य दर्पण
वृ0 र0	—	वृत्तरत्नाकर
सु0 ति0	—	सुवृत्ततिलक
वा0 रा0	—	वाल्मीकि रामायण
का0 प्र0 सू0	—	काव्य प्रकाश सूत्र